

## **BHAVAN'S LIBRARY**

This book is valuable and  
**NOT** to be **ISSUED**  
out of the Library  
without Special Permission

ॐ  
श्रीयोगकल्पद्रुमः

अयं  
श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितः  
स च

भगीरथात्मज हरिप्रसादेन

मुद्रया

"गणपति कृष्णजी" मुद्रणालये मुद्रापित ।

इसग्रन्थका संपादक प्रसिद्धकर्त्तान रजिटरद्वारा अपणे  
अवस्थारमें रखा है

द्वितीयावृत्ति.

शकाब्दाः १८१६.

मूल्यम् १ रुपया.

## पुस्तक मिलनेका ठिकाना.

---

मुंबई—हरिप्रसाद भग्निरथजीका पुस्त-  
कालय कालकादेवीरोड रामवाड़ी.  
मुंबईमें—कालकादेवीरोड पण्डित ज्येष्ठा-  
राम मुकुंदजीके दुकानपर मिलेगा.  
कानपूरमें—हनुमानदास वृजवह्मदास  
ठिकाणा चौकमें कोतवालिकेपास.

ॐ

## ॥ अथश्रीशंकराष्टकम् ॥

( गीतिच्छन्दः )

शीर्षजटागणभारं गरुडाहारंसमस्तसंहारम् ॥  
कैलासाद्रिविहारं पारंभववारिधेरहंवंदे ॥ १ ॥  
चन्द्रकलोज्ज्वलभातं कुण्डल्यालंजगन्धीपाटम् ॥  
कृतमृतमस्तकमातं कालकालस्यकोमलंवंदे ॥ २ ॥  
कोपेक्षणहतकामं स्वात्मारामंनगेन्द्रजावामम् ॥  
संसृतिशोकविरामं श्यामंकंठेनकारणंवंदे ॥ ३ ॥  
कटितटविलसितनागं खंडितयोगमहाद्भुतत्यामम् ॥  
विगतविषयरसरागं भाग्यंज्ञेपुविभ्रतंवंदे ॥ ४ ॥  
त्रिपुरादिकदनुजातं गिरिजाकांतंसदैवसंशातम् ॥  
लीलाविजितकृतांतं भातंस्वांतपुदेहिनांवंदे ॥ ५ ॥  
करतलकलितपिनाकं विगतजराकंसुकर्मणांपाकम् ॥  
परपदनीतवराकं नाकंगमपूगवंदितंवंदे ॥ ६ ॥  
सुरसरिदापुतकेशं त्रिदशकुलेशंहृदाढयावेशम् ॥  
व्यपगतसकलकेशं देशंसर्वदृष्टसंपदांवंदे ॥ ७ ॥  
भूतिविभूषितकायं दुस्तरमायंविवर्जितापायम् ॥  
अमथसमूहसहायं सायंशातनिरंतरंवंदे ॥ ८ ॥  
यस्नुपदाटकमेतद्ब्रह्मानंदेननिर्मितंनित्यम् ॥  
पठतिसमाहितचेताः आमोत्यंतेशैवमेवपदम् ॥ ९ ॥  
इतिश्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानंदविरचितंश्रीशंकराष्टकम् ॥

## प्रस्तावना.



ॐ सर्व महाशय सज्जनोंकें विदिन हो के इस जगत्में मोक्षके अर्थ •  
 अनेक प्रकारके मत प्रसिद्ध हैं। तिन सर्वमेंसे आस्तिकविद्वानोंकें वेदान्त  
 औ योग यह दो मत सादर संमत हैं। तिन दोनोंमेंभी गूढाशय विद्वानोंकें  
 एक योगमतहि अतीव अभिमत है। काहेनं यद्यपि वेदांतशास्त्रोक्त  
 निश्चयसे जोबूझी सर्वबंधनोंसे मुक्ति होतैहै तथापि यावत्पर्यंत केवल  
 शानीका विद्यमान शरीरके साथ संबंध होवेहै तबपर्यंत क्षुधापिपासा  
 श्रोताण्णादिक हर्षोंकी बाधा अनियार्य है यह वार्ता सामवेदकी छांदोग्य-  
 उपब्रिपत्मेंभी कथन करीहै “ न वै सशरीरस्य सतः प्रियाम्रिययोरपहति-  
 रस्ति ” अर्थ० जयपर्यंत जीवात्माका शरीरके साथ संबंध होवेहै तबप-  
 र्यंत छुलदुःखके अनुभवका निवारण नहि होय सकैहै इति ॥ औ जो  
 योगयुक्त पुरष होतैहै तिसकूं तो सशरीर होनेमेंभी उक्त हर्षोंकी बाधा  
 नहि समेतैहै काहेनं योगाभ्याससे प्रारब्धकर्मकाभी जय होवेहै ॥ तथा  
 मायेग योगाभ्यासके बिना अधिकारी पुरुषोंकूं सम्यक् प्रकारसे आत्मत-  
 टका अपरोक्षानुभवभी नहि होवेहै यह धार्ता इस कालके ज्ञानियोंविषे  
 प्रसिद्धहोहै। यद्यपि वह लोक अपनेमुखसे कहतेहैं हमारेकूं अपरोक्षानुभ-  
 वहे तथापि तिनको चरल वृत्ति औ गृहपुत्रादिकोंविषे आसक्ति तथा  
 त्रिपयलंपटतासे उक्त वार्ताकी अनुमानद्वारा सिद्धि होवेहै। काहेनं निमपुद-  
 पने अमृतका पान क्रिया होवेहै तिसकी सत्रिप अन्न भक्षण करनेमें प्र-  
 वृत्ति नहि होतैहै। यातें जीवन्मुक्ति औ अपरोक्षानुभवका असाधारण  
 हेतु ओ योगाभ्यास है तिसके अर्थहि ज्ञानी औ अज्ञानी सर्व पुरुषोंकूं

प्रयत्न करणा योग्य है ॥ सो यद्यपि इस कालविमे योगाभ्यासके अनुष्ठान करणे औ वतस्त्रनेहारे योगीजन बहुत दुर्लभ हैं औ विना गुरुके योगविद्याको सिद्धि होनीभी अत्यंत कठिन है ॥ तथापि यह उक्त कथन इन्द्रियाराम औ आलसी पुरुषोंका है ॥ काहेतें "शरीरनिरपेक्षस्य स्वस्थस्य व्यवसायिनः ॥ बुद्धिप्रारब्धकार्यस्य नास्ति किंचित् दुष्करम्" अर्थ जो पुरुष अपने शरीरसेभी निरपेक्ष औ चतुर तथा दृढनिश्चयवान् औ विचारपूर्वक कार्यका आरंभ करणे द्वारा होवे है तिसकूं इस जगत्में कोई वस्तुभी दुष्कर नहि होवे है अर्थात् सर्वहि सुकर होवे है इति ॥ यातें उक्तलक्षणोंकरके युक्त पुरुषकूं केवल शास्त्रके विचारसेभी प्रयत्नपूर्वक योगकी सिद्धि मंभवे है तथा "नावेदविन्मनुते तं बृहत्, विद्या गुरुणा गुरुः," इत्यादिक भुनिस्मृतिवाक्योंमेंभी परंपरासे शास्त्रकूंहि गुरुपणा प्रतिपादन कीया है यदि आस्तिक विवेकी जानोंकूं शास्त्रकूंहि परम गुरु मानकर तिसके अनुसार योगाभ्यास करणा योग्य है ॥ जो शास्त्र औ गुरु दोनोंकी सहायता होवे तो अत्युत्तम वार्ता है सो योगशास्त्रकूं दुर्विषयसंस्कृतभाषाविषे गुंफित होनेतें सर्व अधिकारी पुरुषोंके उपयोगमें आना कठिन था यातें हमने तिसके सर्व अर्थकूं इस मंथविषे हिंदुस्थानीय भाषामें स्फुट किया है ॥ सो इस मंथमें भाषा वाचनेश्वर पुरुषोंकूं अनुपयोगी होनेतें सूत्रभूत मूलश्लोक केवल पच्चीस २५ रखे हैं औ जो जो तिनमें विशेष उपयोगी वार्ता हैं सो सर्वहि टीकाविषे विस्तारपूर्वक निरूपण करी है ॥ औ अल्पबुद्धी वाले पुरुषोंके हृदयमें शीघ्रहि पद पदार्थके आरूढ होनेके अर्थ मूलग्रन्थक तथा प्रौढांगिक भुनिस्मृतिपुराणवाक्योंका गोल अर्थ कीया है ॥ तथा दुःसाध्य औ शरीरके क्लेशदेनेद्वारा जो हठयोग है तिसका विशेषकरके निरूपण नहि कीया औ सुसाध्य तथा सुखदायक जो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, इसभेदसे अष्ट अंगरूप राजयोग है निम-

काहि विशेषकरके पातञ्जलदर्शन, याज्ञवल्क्यसंहिता, शिवसंहिता, खेच-  
रीपट्टल, योगवीज, अमनस्कखंड, गोरक्षशतकादिक ग्रंथोंके अनुसार-  
वर्णन किया है ॥ सो सर्व विचारणसें मालुम होजावेगा यातें मोक्षविषे  
अत्यंत उपयुक्ती जानकरके विवेकी जनोंकूं अवश्यमेव इस ग्रंथका आ-  
दिसें लेकर अंतपर्यंत विचारद्वारा दुर्लभ लाभ लेना योग्य है यहि हमार  
प्रयासकी सफलता है ॥ सो यह ग्रंथ केचित् महाशंकर गोवर्धना-  
दिक सद्गृहस्थोंकी प्रार्थनासें भावनगरमें नवीन निर्माण कीया गया है ॥  
सो जो परिशोधनकरके छपानेसेंभी इसमें किसीस्थलविषे अक्षर वा  
भाव पड गया है सो ग्रंथके अंतमें शुद्धिपत्रविषे देखकर औ अपनी बुद्धिसे  
विद्वानोंकूं स्वयमेव शोधलेना उचित है ॥ इति विज्ञापनम् ॥

द० स्वामी ब्रह्मानन्दजी.

## सूचीपत्रम् ।

पृष्ठम्. विषयः.

- १ मंगलाचरण.
- ४ योगका कल्पवृक्षरूपसे वर्णन.
- ८ अभ्यास वैराग्यका पक्षरूपसे वर्णन.
- १० संसारका अरण्यरूपसे वर्णन.
- ११ वैराग्यके भेदोंका वर्णन.
- १२ योगके अधिकारीका कथन.
- १४ शरीरादिकोंविषे दोषदृष्टि व०
- १८ सर्वत्यागवर्णन.
- १९ अभ्यास योग्यदेशका वर्णन.
- २१ मउप्रकारनिरूपण.
- २६ ब्राह्मणका इतिहास वर्णन.
- ३० शंकापूर्वक योगका मंडन.
- ४३ योगीकूं अनेक शरीरनिर्माणशक्ति.
- ४८ चतुर्विधयोगवर्णन.
- ४८ हठयोगवर्णन.
- ४९ लययोगवर्णन. ,
- ५० मंत्रयोगवर्णन.
- ५१ षट्चक्रवर्णन..
- ५३ जपन्निवेदनविधिवर्णन.
- ५४ दशविधनादभरण.

पृष्ठम् विषयः.

- ५५ दशविधनाशके फल.
- ५६ राजयोगका लक्षण.
- ५९ राजयोगकी श्रेष्ठतावर्णन
- ६१ अष्टांगयोगका वर्णन.
- ६३ दशप्रकारके यमवर्णन.
- ८३ दशप्रकारके नियम.
- ९७ नकुलका इतिहासवर्णन.
- ११७ यमनियमोंके फलवर्णन.
- १२४ आसनभेदवर्णन.
- १२९ आसनफलवर्णन.
- १३१ प्राणायामलक्षण.
- १३४ अष्टविध प्राणायामवर्णन.
- १४१ प्राण और मनकी एकताका वर्णन.
- १४४ गुरुअपेक्षावर्णन.
- १५० अभ्यासमें वर्जित वस्तु व०
- १५१ धौनि आदि. पद्धतिया-वर्णन.
- १५६ प्राणायामफलवर्णन..
- १५८ नाडीभेदवर्णन.
- १५९ नाडियोंकी उत्पत्तिव०
- १६१ कंदस्यानवर्णन.



पृष्ठम्. विषयः •

- १६२ सुषुप्तास्थानवर्णन.  
 १६६ कुंडलिनीस्थानवर्णन.  
 १६७ त्रिविधैवंधनिरूपण.  
 १६८ कुंडलिनीबोधनविधि.  
 १६८ प्राणोक्ता ब्रह्मरंध्रमें गमन.  
 १७० प्रत्याहारलक्षणव०  
 १८० प्रत्याहारफलवर्णन.  
 १८७ धारणालक्षणवर्णन  
 १८८ टिट्ठिभाष्यानवर्णन.  
 १९२ पचमहाभूतस्थानवर्णन  
 १९३ पचमहाभूतधारणाव०  
 १९६ मनोनिग्रहयुक्तियां०  
 १९९ ईश्वरलक्षण.  
 २०२ ईश्वराराधनविधि.  
 २०९ ध्यानलक्षणवर्णन.  
 २११ त्रिष्णुध्यानवर्णन.  
 २१३ अप्रिध्यानवर्णन.  
 २१४ सूर्यध्यानवर्णन.  
 २१८ भूध्यानवर्णन.  
 २१६ पुरुषध्यानवर्णन.  
 २१७ निर्गुणध्यानवर्णन.  
 २१८ ध्यानमहिमावर्णन.  
 २२१ समाधिभक्षण.

पृष्ठम्. विषयः.

- २२३ समयलक्षणवर्णन.  
 २२४ संयमदुर्लभतावर्णन.  
 २२५ संयमजन्यसिद्धियोंका व०  
 २५३ सिद्धियोंकू प्रिन्नरूपता.  
 २५५ संप्रज्ञातसमाधिलक्षण.  
 २५७ असंप्रज्ञातसमाधिलक्षण.  
 २६३ असंप्रज्ञातफलवर्णन.  
 २६७ शिखिध्वजारयानवर्णन.  
 २६८ योगीके सर्व कर्मोंकी नि-  
 वृत्ति.  
 २७१ योगीका स्वतंत्र विहारव०  
 २७१ चूडालाहितिहासवर्णन.  
 २७३ योगीका ब्रह्मादिकोंमें प्रवेश.  
 २७४ योगीकी ब्रह्मांडसे वास्त-  
 गति.  
 २७५ कालबंधनविधि०  
 २७६ योगीकी विदेहमुक्तिय०  
 २८२ योगीका ब्रह्मलोकगमन.  
 २८३ योगीको अनापृत्ति०  
 २८६ योगीसेवाफलवर्णन.  
 २८६ योगीकी श्रेष्ठतावर्णन.  
 २८७ प्रयाध्ययनफल.  
 २८९ श्रीमदानंदगिर्यटक.  
 २९२ भाषापदवर्णनम्.

ॐ गं गणपतये नमः ।

# अथ श्रीयोगकल्पद्रुमप्रारम्भः।



मङ्गलम् ।

॥ वंशस्थं वृत्तम् ॥

प्रणम्य योगीन्द्रहृदंघ्रिपंकजं

महेश्वरं शेषमुखानृपीस्तथा ॥

ब्रवीमि योगागमसारमद्भुतं ..

सुसाधकाक्लेशविवोधसिद्धये ॥ १ ॥

ॐ तत् सत्परमात्मने नमः ॥ सर्व मुमुक्षु जनोंके हितार्थ निर्विकल्पसमाधिकी प्राप्तिद्वारा कैवल्य ( मोक्ष ) पदके देनेहारे सर्व योगशास्त्रका सारभूत ' योगकल्पद्रुम ' नामक ग्रंथकी निष्पत्त्युह परिसमाप्तिके अर्थ तथा वृद्धव्यवहारसें औ वेदकी आज्ञासें कर्तव्यताकूं प्राप्त भय जो मंगलाचरण-तिसैंकूं प्रथम अपने हृदयमें आचरण करके पुनः शिष्यशिक्षाके अर्थ ग्रंथके आदिमें कथन करेहै ॥ यह बातें श्रुतिमें भी कथन करीहै " समाप्तिकामो मंगलमाचरेत् " अर्थ यह ॥ ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्तिकी कामनावान् पुरुष आदिमें मंगलाचरण करे

इति ॥ तथा सांख्यसूत्रोंमें कपिल देवजीने भी कहा है “ मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ” अर्थ० ‘शिष्ट पुरुषोंकरके आचरण करनेसें तथा ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्तिरूप फलके देखनेसें औ उक्त श्रुतिकी आज्ञासें ग्रंथके आदिमें मंगलाचरण करणा योग्य है इति ॥ सो मंगल आशीर्वादरूप वस्तुनिर्देशरूप नमस्काररूप इस भेदसें तीन प्रकारका होवेहै, तिनमेंसें इस स्थलविषे नमस्काररूप मंगलाचरण करेहैं ॥ ध्रुम्येति ॥ सनत् सनन्दन नारदादिक योगीन्द्रोंके हृदयमें चरणफलहैं जिनके ऐसे जो “महेश्वर” कहिये महादेव अथवा विष्णु भगवान्हें तथा योगशास्त्रके आचार्य जो शेष भगवान्का अवतार पतंजलि ऋषिहैं औ तिसके अनुसार जो योगके प्रतिपादन करणेहारे याज्ञवल्क्य ‘व्यास’ वसिष्ठ ‘शुकदेव’ मरस्येन्द्र गोरक्षादिक ऋषि तथा योगी जनहैं तिन सर्वोंकूं नम्रतापूर्वक नमस्कार करके विवेक वैराग्यादिक साधनसंपन्न औ दुर्विज्ञेय-गीर्वाण भाषामें अकुशल जो साधकजनहैं तिनकूं अनायाससेंहि योगरहस्यके बोधकी सिद्धिके अर्थ ‘पातंजलदर्शन’ याज्ञवल्क्यसंहिता शिवसंहिता योगवासिष्ठ योगबीज ‘अमर्नस्कखंड’ खेचरीपटल इठयोगप्रदीपिका गोरक्ष-शतक इत्यादिक जो योगके प्रतिपादक ग्रंथ हैं तिन सर्वोंका अनि अद्भुत जो रहस्य है तिसकूं अपना बुद्धिके अनुसार आकर्षण करके इस ग्रंथविषे ग्रंथकार प्रतिपादन करेहैं इति ॥ तथा

मूल श्लोकविषे जो 'योगागमसारं' यह पद है तिसकरके सर्व योगशास्त्रका सारभूत जो निर्विकल्प समाधिकी प्राप्तिद्वारा जीवब्रह्मकी एकता है सो इस ग्रंथका विषय कथन किया है ॥ तथा 'विवोधसिद्धये' यह जो पद है तिसकरके निर्विकल्प-समाधिकी प्राप्ति होनेतें अविद्या आदिक सर्व क्लेशोंकी निवृत्तिद्वारा जो परमानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्ति है सो इस ग्रंथका प्रयोजन कथन किया है ॥ तथा 'सुसाधक' यह जो पद है तिसकरके विवेक वैराग्य अपरिग्रह श्रद्धानिरोध उत्साह धैर्य इत्यादिक योगके साधनोंकरके संपन्न जो साधक पुरुष है सो इस ग्रंथका अधिकारी कथन किया है ॥ तथा विषय औ ग्रंथका जो परस्पर संबंध है सो प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसंबंध है ॥ तथा योग औ अधिकांरीका जो संबंध है सो प्राप्यप्रापकभावसंबंध है ॥ औ योगधर्याके ज्ञानका औ ग्रंथका जो संबंध है सो जन्यजनकभावसंबंध है ॥ इनतें आदिदेकर अन्यभी संबंध जान लेने इस प्रकार विवेकी जन्योंकी ग्रंथ-विषे प्रवृत्तिके अर्थ ग्रंथकारने यह चारि अनुबंध सूचन किये हैं काहेतें बिना अनुबंधोंके जाननेसँ विवेकी पुरुषकी ग्रंथविषे प्रवृत्ति संभवे नहि इति ॥ १ ॥ इस प्रकार मंगलाचरण औ ग्रंथके अनुबंधोंकें निरूपण करके अब साधक पुरुषकी श्रद्धा उत्पादन करनेके अर्थ योगकें कल्पवृक्षरूपसँ वर्णन करेहैं ॥

वसंतनिटका वृत्तम् ॥

हृद्भवो निगमबोधसुमूलको द्वि-

स्कन्धः पटुन्नतलतश्च यमादिपर्णः॥

ध्यानादिपुष्पललितश्च विमोक्षसंयः

सर्वार्थदो जयति योगसुरद्रुमोयम्॥ २॥

हृदिति ॥ योगरूप एक कल्पवृक्ष है सो जैसे कल्पवृक्ष पृथिवीविषे आविर्भावकं प्राप्त होवे है तैसेहि योगरूप कल्पवृक्ष चित्तरूप पृथिवीविषे आविर्भावकं प्राप्त होवे है औ जैसे कल्पवृक्षके विस्तारका हेतु मूठ होवे है तैसेहि ' ब्रह्मविन्दु उपनिषत् ' ' अमृतविन्दु उपनिषत् ' ध्यानविन्दु उपनिषत् ' ' योगशिखा उपनिषत् ' ' योगतत्त्व उपनिषत् ' ' क्षुरिका उपनिषत् ' ' श्वेताश्वतर उपनिषत् ' इत्यादिक जो योगके प्रतिपादन करणेहारा वेदका भाग है तथा तिसके अनुसार जो ' पारंजटदर्शन ' याज्ञवल्क्यसंहिता आदिक ग्रंथ हैं तिनके रहस्यका पठन अथवा गुरुमुखद्वारा श्रवण करणेतें जो सम्यक् प्रकारसे बोध है सोई योगरूप कल्पवृक्षके विस्तारका हेतुमूठ है ॥ कोहेतें योगरहस्यके सम्यक् बोधसे बिना निमके अनुष्ठानमें प्रवृत्ति संभवे नहि ॥ औ जैसे कल्पवृक्षके

शाखा पत्रादिकोंके आश्रयभूत स्कंध होवेहैं तैसेही योग-  
 रूप कल्पवृक्षके वैराग्य औ अभ्यास यह दो स्कंध हैं ॥ औ  
 जैसे कल्पवृक्षकी शाखा होवेहैं तैसेही योगरूप कल्पवृक्षकी उ-  
 त्साह साहस धैर्य तत्त्वज्ञान निश्चय जनसंगपरित्याग यह षट्  
 • विस्तृत शाखा हैं काहेतें जैसे शाखाविना वृक्षकी सिद्धि नहीं हो-  
 वेहै तैसेही इन षट्केविना योगकी सिद्धि नहीं होवेहैं तिनमें  
 विषयप्रवाहपतितचित्तके निरोध करनेविषे जो उद्यम है तिसका  
 नाम उत्साह है ॥ तथा आयुषकूं विजलीके चमत्कारकी न्याई क्ष-  
 णभंगुर जानकरके शीघ्रहि योगके अंगोंके अनुष्ठानविषे जो प्र-  
 वृत्ति है तिसका नाम साहस है ॥ तथा विघ्नोकरके पुना पुना च-  
 लायमान करनेतेंभी “ शरीरं पातयामि कार्यं साधयामि ” ।  
 इस प्रकारके दृढ निश्चयपूर्वक जो सिद्धिपर्यंत अभ्यासका  
 परित्याग नहि करणा है तिसका नाम धैर्य है ॥ तथा यह  
 वार्ता मेरे करके साध्य है औ यह असाध्य है इस प्रकारका  
 जो योगविषयक यथार्थज्ञान है तिसका नाम तत्त्वज्ञान है ॥  
 तथा शास्त्र औ गुरुके वाक्यविषे जो दृढ विश्वास है ति-  
 सका नाम निश्चय है ॥ तथा योगाभ्यासके विरोधि विषयी  
 पुरुषोंके संसर्गके परित्याग करनेका नाम जनसंगपरित्याग  
 है इति ॥ यह सर्व वार्ता हठयोगमदीपिकाविषेभी कथन  
 करी है “ उत्साहात्साहसाद्धैर्यात्तत्त्वज्ञानाच्च निश्चयात् । जन-  
 संगपरित्यागात् षड्विभक्त्यैः प्रसिद्ध्यति ” ॥ अर्थ० उत्साह,

साहस, धैर्य, तत्त्वज्ञान, निश्चय, जनसंगपरित्याग, इन पद साधनोंकरकेहि योगकी सिद्धि होवे है इति ॥ तथा योगवासिष्ठमेंभी कहाहै—

“ उद्यमः साहसं धैर्यं बलं बुद्धिः पराक्रमम् ”

“ पट्टिमे यस्य तिष्ठन्ति स सर्वं प्राप्नुयात् पुमान् ”

अर्थ० उत्साह, साहस, धैर्य, बल बुद्धि, पराक्रम, यह पद जिस पुरुषके दृढ होवें सो पुरुष सर्व कार्योंके सिद्ध करसके है इति ॥ तथा जैसे कल्पवृक्षके पत्र होवेहैं तैसेहि योगरूप कल्पवृक्षके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहाररूप पत्र हैं काहेतें जैसे पत्रोंकरके वृक्षकी रक्षा होवे है तैसेहि यम-नियमादिकोंकरके योगकी रक्षा होवेहै ॥ औ जैसे कल्पवृक्ष पुष्पोंकरके शोभायमान होवेहै तैसेहि योगरूप कल्पवृक्षके ध्यानधारणा समाधिरूप पुष्प हैं औ जैसे कल्पवृक्षविषे फल होवेहैं तैसेहि योगरूप कल्पवृक्षका सर्व क्लेशोंकी निवृत्तिद्वारा परमानन्दकी प्राप्तिरूप केवल्यमोक्षरूप फल है काहेतें जैसे वृक्षारोपण जलसिंचनादिक प्रयास फलकी प्राप्तिके अर्थ होवेहै तैसेहि प्राणायामप्रत्याहारादिकरूप योगाभ्यासका परिश्रम परमानन्दकी प्राप्तिके निमित्तहि होवेहै ॥ औ जैसे कल्पवृक्ष स्वाश्रित-पुरुषोंके सर्व वांछित पदार्थोंकी प्राप्ति करेहै तैसेहि योगरूप कल्पवृक्ष योगीजनोंके आकाशगमन परकायप्रवेशादिक सर्व वांछितसिद्धियोंकी प्राप्ति करेहै ॥ औ जैसे कल्पवृक्ष घटपी-

पलादिक सर्व वृक्षोंसे उत्कृष्टतासें वर्ततहि तैसेहि योगरूप कल्पवृक्ष न्याय मीमांसा सांख्यादिक सर्वमत रूप अन्यवृक्षोंसे उत्कृष्टतासें वर्तता है इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकामें भी योगकू कल्पलतारूपता कथन करीहै

“सत्त्वं बीजं हठः क्षेत्रमैदासीन्यं जलं त्रिभिः”

“उन्मनी कल्पलतिका सद्य एव प्रवर्तते”

अर्थ ० योगाभ्यासकरके वशीभूत किया हुआ चित्त तो बीजस्थानीय है काहेतें चित्तहि बीजकी न्याईं समाधिरूप अंकुरसें परिणामकूं प्राप्त होवेहै ॥ तथा हठयोग क्षेत्ररूप है काहेतें जैसे क्षेत्रमें बीज स्थित किया हुआ अंकुरभावकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि हठयोगमें स्थित किया हुआ चित्त राजयोगरूप अंकुरभावकूं प्राप्त होवेहै ॥ तथा पर वैराग्यरूप जल है काहेतें जैसे जलके सिंचन करणेतें लताकी पुष्टी होवेहै तैसेहि पर वैराग्यसें योगाभ्यासकी पुष्टि होवेहै ॥ इन तीनोंकरके समाधिरूप कल्पलताकी शीघ्रहि वृद्धि होवेहै इति ॥ २ ॥ पूर्वश्लोकविषे योगरूप कल्पवृक्षके जो वैराग्य औ अभ्यासरूप दो स्कंध कथन कियेहैं तिनके बिना योगकी सिद्धि नहि होवेहै यह वार्ता कथन करेहैं ॥

इन्द्रवंशा वृत्तम् ॥

आवृत्त्य रागौ पुरुषांडजन्मनः  
पक्षौ वदन्तीह सभाधिवित्तमाः ॥



## योगातताकाशसुखाधिरोहणं नूनं तयोर्नान्यतरेण सिद्ध्यति ॥ ३ ॥

आवृत्तीति ॥ अर्थ० समाधिके जाननेहारे योगीलोक सा-  
धक पुरुषरूप पक्षीके अभ्यास औ वैराग्य यह दोनों पक्ष  
कथन करते हैं काहेतें जैसे विस्तृत आकाशविषे एक पक्षक-  
रके पक्षीकी सुखपूर्वक गति नहि होवेहै तैसेहि योगरूप जो  
विस्तृत आकाश है तिसविषे केवल अभ्यास औ केवल वैरा-  
ग्यकरके साधकरूप पक्षीकी सुखपूर्वक गति नहि होवेहै किंतु  
जैसे पक्षीका दोनों पक्षोंकरके आकाशविषे सुखपूर्वक आ-  
रोहण होवेहै तैसेहि साधकपुरुषका अभ्यास औ वैराग्य इन  
दोनोंकरकेहि योगविषे सुखपूर्वक आरोहण होवेहै काहेतें  
जैसे घिरकाठसँ चलेहुये नदीके वेग निरोध करणेविषे  
एक तो मृत्तिकाआदिक क्षेपणकरके अग्रभागसँ निरोध  
करणा औ पुंनः पीछले भागसँ एक नहर निकासकर अग्नि-  
मत देशविषे प्राप्त करणा यह दो उपाय होवे हैं तैसेहि चित्त-  
रूप नदीका अनादिकाठसँ जो संसारके सन्मुख भयाह चल  
रहाहै तिसके निरोध करणेविषेभी एक तो मृत्तिकाआदिक

क्षेपणरूप दृढ वैराग्यकरके अग्रभागसे निरोध करण और पुनः नहररूप अभ्यासकरके अभिमतदेशरूप आत्मपदविषे प्राप्त करण यह दो उपाय होवें हैं ॥ यह बातें न्योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करी है ॥ “ अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ” अर्थ० चित्तकी वृत्तियोंका अभ्यास और वैराग्यकरकेहि निरोध होवे है इति ॥ तथा गीतामें भगवान् नेभी कहा है “ अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ” अर्थ० हे अर्जुन अभ्यास और वैराग्य करकेहि अत्यन्त चपट मनका निरोध होवे है ॥ इति ॥ तथा सांख्यसूत्रोंमें कपिलदेवजीनेभी कहा है “ वैराग्यादभ्यासाच्च ” अर्थ० वैराग्य और अभ्यासकरकेहि योगकी सिद्धि होवे है इति ॥ ३ ॥ इस प्रकार वैराग्य और अभ्यासकें योगकी सिद्धिविषे मुख्य हेतुता कथन करके अब तिनमेंसे प्रथम वैराग्यका लक्षण कथन करें हैं ॥

दुतविदं वितं वृत्तम् ॥

जनननाशजरोग्रवनेचरं

त्रिविधतोपकुंकटकसंकुलम् ॥

उपरमेत तृपोग्रदवानलं

जगदरप्यमवेक्ष्य सुधीरधीः ॥ ४ ॥

जननेति ॥ संसाररूप एक गहन वन है सो जैसे वनविषे  
 क्षुद्र जीवोंके भक्षण करणेहारे सिंहव्याघ्रादिक भयंकर वन-  
 चर निवास करते हैं तैसेहि संसाररूप वनविषे योगाभ्यास-  
 करके शून्य जो क्षुद्र जीव हैं तिनके भक्षण करणेहारे जन्म-  
 मरणजरारूप भयंकर वनचर निवास करते हैं यहाँ जन्म-  
 मरण जरा यह शीत उष्ण क्षुधा तृषा हर्ष शोकरूप घट ऊ-  
 र्मियोंकेभी उपलक्षण हैं ॥ औ जैसे वनविषे ऋजुमार्गसे  
 भ्रष्ट हुये पुरुषके पादादिक अवयवोंकं वेधन करणेहारे  
 अति तीक्ष्णकंटक होवेहैं तैसेहि संसाररूप वनविषे योगा-  
 भ्यासरूप ऋजुमार्गसे भ्रष्ट हुये पुरुषके अवयवोंकं वेधन क-  
 रणेहारे तापरूप तोक्ष्ण कंटक हैं ॥ सो ताप आध्यात्मिक,  
 आधिदैविक, आधिभौतिक इस भेदसे तीन प्रकारके हैं ॥  
 तिनमें कफ पित्त वातके विकारकरके जो शरीरविषे व्यथा  
 होवेहै तिसका नाम आध्यात्मिक ताप है औ अतिशीत वात  
 घर्म वृष्टि ग्रह आदिकोंकरके जो शरीरमें पीडा होवेहै ति-  
 सका नाम आधिदैविक ताप है ॥ तथा सिंह व्याघ्र सर्पा-  
 दिकोंकरके जो शरीरविषे दुःखा होवेहै तिसका नाम आधि-  
 भौतिक ताप है ॥ तथा जैसे वनविषे वृक्षोंके जटानेहारा वे-  
 णुओंके परस्पर संघर्षणसे उत्पन्न भया दावानल होवेहै तैसेहि  
 संसाररूप वनविषे मनुष्य दैत्य देवता आदिक जीवरूप वृ-  
 क्षोंके जटानेहारा निपय औ इंद्रियोंके परस्पर संसर्गरूप संघ-

षणसे उत्पन्न भया तृष्णारूप दावानल है ॥ सो जैसे ऋजुमा-  
 र्गद्वारा अपने ग्रामकूँ जानेहारा कुशल पथिक जन उत्कृष्टका-  
 रके भयानक वनकूँ देखकर वैराग्यकूँ प्राप्त होवेहै अर्थात् दूर-  
 सेहि तिसका परिवर्जन करेहै तैसेहि योगाभ्यासरूप ऋजुमा-  
 र्गद्वारा कैवल्यमोक्षरूप अपने ग्रामकूँ जानेहारे मुमुक्षु पुरुष-  
 रूप पथिककूँ संसाररूप भयंकर वनकूँ विचारदृष्टिसे देखकर  
 वैराग्यकूँ प्राप्त होना योग्य है ॥ सो वैराग्य पर औ अपर  
 इस भेदसे दो प्रकारका है ॥ तिनमें पुना अपर, वैराग्य  
 यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय, वशीकार, इस भेदसे च्या-  
 रि प्रकारका है ॥ तिनमें इस जगत्विषे क्या वस्तु सार है  
 औ क्या असार है यह वार्ता गुरु औ शास्त्रद्वारा जाननी चा-  
 हिये इस प्रकारका जो चित्तविषे उद्योग होनाहै तिसका नाम  
 यतमानवैराग्य है ॥ औ अपने चित्तमें प्रथम जो कामक्रोधा-  
 दिक दोष थे तिनमेंसे कितनेक निवृत्त भयेहैं औ कितनेक  
 अवशेष रहेहैं इस प्रकार विवेचन करके अवशेष रहे दोषों-  
 की निवृत्तिके अर्थ जो प्रयत्न करणा है तिसका नाम व्यति-  
 रेक वैराग्य है ॥ तथा इसदोक औ परदोकके विषयोंके  
 अर्थ जो प्रवृत्ति है तिसकूँ दुःखरूप जानकर व्यस्यसे परित्याग  
 करणसे अनंतर हृदयमें जो विषयोंकी सूक्ष्म अभिटापाका  
 सद्भाव होताहै तिसका नाम एकेन्द्रिय वैराग्य है ॥ तथा  
 इस दोक औ परदोकके विषयोंकी अभिटापाकाभी जो ह-

द्वयसं. परित्याग करणा है तिसका नाम वशीकारवैराग्य है ॥  
 औ संप्रज्ञातसमाधिके अभ्यासकरके विवेकख्यातिके प्राप्त  
 भयेतें त्रिगुणात्मक सर्वप्रपंचके व्यवहारोंसँ जो उपरामता है  
 तिसका नाम परवैराग्य है ॥ तिनमेंसँ अपरवैराग्य तो संप्र-  
 ज्ञातसमाधिका अंतरंग साधन है औ परवैराग्य असंप्र-  
 ज्ञातका अंतरंग साधन है ॥ इस प्रकारके वैराग्यक-  
 रके युक्त पुरुषकाहि योगाभ्यासविषे अधिकार है अन्य  
 पुरुषका नहि यह वार्ता वायुसंहितामेंभी कथन करीहै  
 “दृष्टे तथानुश्रविके विरक्तं विषयं मनः ॥ यस्य तस्याधिकारो-  
 स्मिन्योगे नान्यस्य कस्यचित्” अर्थ० स्रक् चंदन वनिता पुत्र  
 गृह क्षेत्रादिक जो दृष्ट विषय हैं औ वेदोक्त जो स्वर्गादिक  
 विषय हैं तिन सर्वसँहि जिस पुरुषका वित्त विरागकूं प्राप्त  
 भयाहै तिसकाहि इस योगाभ्यासमें अधिकार है दूसरेका  
 नहि इति “ तथा सुरेश्वराचार्यनेभी कहाहै ”

“इहामुत्र विरक्तस्य संसारं प्रजिहासतः”

“जिज्ञासोरेव कस्यापि योगेस्मिन्नधिकारिता”

अर्थ० इस लोक औ परलोकके विषयोंसँ विरक्त औ  
 जन्ममरणरूप संसारकी निवृत्तिकी इच्छावान् जो जिज्ञासु  
 पुरुष हैं सो चाहे किसी वर्णत्रिपेभी होवे तो तिसका यो-

१ पुरुष औ मरुतिका जो भिन्न भिन्न ज्ञान है तिसका नाम  
 विवेकख्याति है ॥

गाभ्यासमें अधिकार है इति ॥ तथा इठयोगप्रदीपिकाकी टीकाविषेभी कहाहै “ जिताक्षाय शांताय सक्ताय मुक्तौ विहीनाय दोषैरसक्ताय भुक्तौ ॥ अहीनाय दोषैतरैरुक्तकर्त्रे प्रदेयो न देयो हठश्चेतरस्मै ” ॥ अर्थ० जो पुरुष जितेन्द्रिय औ शांतचित्त तथा मोक्षकी उत्कट इच्छावान् औ कामक्रोधादिक दोषोंकरके रहित तथा भोगोंसे विरक्त औ यमनियमादिक गुणोंकरके युक्त तथा यथोक्तकारी होवे तिसकुंहि योगका उपदेश करणा योग्य है अन्य पुरुषकुं नहि इति ॥ तथा सामवेदके छांदोग्य ब्राह्मणमेंभी कहाहै “ विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम शेवधिस्तेहमस्मि त्वं मां पाठय अनहंते मानिने नृवं मां दा गोपाय मां श्रेयसी तथाहमस्मीति ” अर्थ० एक समय-विषे विद्या स्त्रीकारूप धारण करके किसी विद्वान् ब्राह्मणके

री है : “विरक्तस्य तत्सिद्धिः ” अर्थ० वैराग्यवान् पुरुषकूंहि योगकी सिद्धि होवे है इति ॥ तथा योगसूत्रोंमें पतंजलिने भी कहा है “तीव्रवेगानामासन्नः ” अर्थ० तीव्रवैराग्यकरके युक्त पुरुषोंकूंहि शीघ्र योगकी सिद्धि होवे है इति ॥ सो वैराग्य शरीर, स्त्री, धन, पुत्र, गृह आदिकोंविषे दोषदृष्टिके हुयेविना यथार्थ उत्पन्न नहि होवे है काहेतें जिस कालविषे जिस वस्तुविषे पुरुषकी दोषदृष्टि होवे है तिसहि कालविषे तिसतें वैराग्यकूं प्राप्त होवे है यातें मुमुक्षु पुरुषकूं प्रथम उक्त पदार्थोंविषे दोषदृष्टिहि संपाद्वन करणी योग्य है ॥ सो जिनमें शरीरके दोष तो विष्णुपुराणमें कथन किये हैं “ मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्त्रायुमज्जास्थिसंहतौ ॥ देहे चेत् प्रीतिमान्मूढो भविता नरकेपि सा ” अर्थ० हे मूढ पुरुष मांस, रुधिर, पूय, विष्ठा, मूत्र नाडी, मज्जा, अस्थि, इत्यादिक मलिन पदार्थोंके समूहरूप शरीरविषे जो तूं प्रीति करता है तो उक्त पदार्थोंकरके युक्त जो नरक है तिसमें भी तेरी प्रीति होनी चाहिये इति ॥ तथा यजुर्वेदकी मैत्रायणी शाखाविषे भी कहा है “भगवन्नस्थिचर्मस्त्रायुमज्जामांसशुक्रशोणितश्लेष्माश्रुदृषिकादूषिते विण्मूत्रवातपित्तसंघाते दुर्गन्धे निःसारेस्मिन् शरीरे किं कामोपभोगैरिति ” अर्थ० हे भगवन् अस्थि, चर्म, स्त्रायु, मज्जा, मांस, शुक्र, शोणित, श्लेष्मादिक दूषणोंकरके दूषित औ विष्ठा, मूत्र, वात, पित्तादिकोंके

समूहभूत तथा . निःसार दुर्गंधियुक्त इस शरीरमें हमारेकूं भोगोंसे क्या प्रयोजन है इति ॥ तथा स्त्रीके दोष योगवासिष्ठविषे वैराग्यप्रकरणमें रामचंद्रजीनें निरूपण कियेहैं “ मांस-पांचालिकायास्तु यंत्रलोठेंगपंजरे ॥ स्नाय्वस्थिग्रन्थिशालिन्यः स्त्रियः किमिव शोभनम् ॥ त्वङ्मांसरक्तवाष्पावु पृथक्कृत्वा वि-लोचने ॥ समालोकय रम्यं चेत् किं मुधा परिमुहसि” अर्थ० स्नायु मज्जा अस्थि आदिकोंके संचयरूप स्तनादिक ग्रंथियों-करके युक्त जो मांसकी पुतलीरूप स्त्री है तिसके यंत्रकी न्याई चंचल अवयवोंके समूहरूप शरीरविषे क्या पदार्थ र-मणीय है अर्थात् कोईभी रमणीय नहि ” तथा हे मूढपु-रुष तूं स्त्रीके शरीरमें त्वचा, मांस, रुधिर, अश्रु, नेत्रादिक पदार्थोंकूं पृथक् पृथक् करके अवलोकन कर जो तिनमें क्या वस्तु सुंदर है नहि तो काहेको व्यर्थहि मोहकूं प्राप्त तोताहैं इति ॥ तथा धनके दोष पंचदशमें विद्यारण्यस्वामीने कथन कियेहैं “अर्थानामर्जने क्लेशस्तथैव परिपालने ॥ नटे दुःखं व्य-ये दुःखं धिगर्थान् क्लेशकारिणः” अर्थ० प्रथम तो धनके संचय करनेमेंहि पराधीनताआदिक अनेक क्लेशोंकी प्राप्ति होवेहे पुना तिसके रक्षण करनेविषेभी रात्रीजागरणादिक अनेक दुःख होवेहैं तथा तिसके व्यय अथवा नाश होनेसे तो अत्यंतही क्लेश होवेहैं इसप्रकार सर्वदाहि दुःख देनेहारे धनकूं धिक्कार



हैं और तिसके संग्रह करणेहारे पुरुषोंकूँभी धिक्कार है इति”  
तथा पुत्रके दोषभी पंचदशीमेंहि निरूपण कियेहैं

“ अलभ्यमानस्तनयः पितरौ क्लेशयेच्चिरम् ॥

लब्धोपि गर्भपातेन प्रसवेन च बाधते ॥

जातस्य ग्रहरोगादि कुमारस्य च मूर्खता ॥

उपनीतेष्वविद्यत्वमनुदाहश्च पंडिते ॥

पुनश्च परदारादि दारिद्र्यं च कुटुंबिनः ॥

विप्रोर्दुःखस्य नास्त्यंतो धनी चेन्म्रियते तदा ॥”

अर्थ० ‘प्रथम तो पुत्रकी अमातिकालविषे मंत्र, यंत्र, पी  
रत्नपूजनादिक मयज्ञोंकरके मातापिताकूँ अनेकहि क्लेश होवेहैं  
औ मातिके अनंतर जो गर्भपात होयजावे तौभी क्लेश होवेहैं  
औ पुना तिसके जन्मकालविषेभी अत्यंत पीडा होवेहैं तथा  
जन्मके पश्चात् शनैश्चरादिक ग्रहोंकी बाधा औ दंतपतन शी-  
तला आदिक रोगोंकरके दुःख होवेहैं पुना कुमारअवस्थाविषे  
मूर्खतासें दुःख होवेहैं पुना उपनयन करणेतें पश्चात् अवि-  
द्यावान् होनेसें दुःख होवेहैं औ विद्वान्के हुयेभी पुना वि-  
वाहसेंविना क्लेश होवेहैं तथा विवाहके हुयेभी पुना पर-  
स्त्रीगमनादिकोंकरके दुःख होवेहैं औ पुना कुटुंबवान् होनेतें  
दारिद्र्यपणसें क्लेश होवेहैं औ जो धनवान् होवे तो तिसके  
मरणसें दुःख होवेहैं इस प्रकारसें मातापिताकूँ मरणपर्यंत-  
भी दुःखका अंत नहि होवेहैं इति ॥ तथा गृहके दोष भागव-

तके एकादशस्कंधमें राजा यदुकेप्रति दत्तात्रेयजीने कथन कि-  
 येहें "गृहारंभो हि दुःखाय न सुखाय कदाचन ॥ सर्पः पर-  
 कृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते" अर्थ० हे राजन् गृहका आरंभ  
 करणा केवल दुःखकाहि हेतु है, काहेतें जो पुरुष गृह बनाता  
 है सोई तिसके वृद्धिहासादिकजन्य क्लेशका अनुभव करेहै  
 औ जो गृहका आरंभ नहि करणा है सोई परम सुखका  
 हेतु है, काहेतें जैसे सर्प अन्यरचित गृहविषे निवास करके सु-  
 खकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि विरक्त पुरुषभी अन्यरचित गुहा-  
 आदिक स्थानोंमें निवास करके सुखकूं प्राप्त होवेहै इति ॥  
 इसहि प्रकार अनुक्त मित्र क्षेप्रादिक पदार्थोंविषेभी यथा-  
 योग्य दोष जानटेने इति ॥ ४ ॥ इस प्रकार योगरूप कल्प-  
 वृक्षके एक स्कंधका निरूपण करके अब दूसरा स्कंधरूप जो  
 अभ्यासहै तिसकूं वर्णन करेहैं ॥

द्वुतविटं वितं वृत्तम् ॥.

समपहाय तु दोषदृशाखिलं  
 विजनदेशंगतो गतसाध्वसः॥  
 समुपकल्प्य शुभासनमात्मनो  
 दृढमतिः क्रमशस्तु समभ्यसेत् ॥ ५ ॥

समपहायेति ॥ “समपहाय तु दोषदशाखिलं” कहिये पूर्वश्लोकोक्त रीतिसँ सर्व स्त्रीधनादिकोंविषे दोष देखकर मृ-  
 मुक्षु पुरुषकूं सर्वकाहि परित्याग करणा योग्य है, यह वार्ता  
 पंचदशीमेंभी कथन करीहै “संगी हि बाधते लोके निःसंगः  
 सुखमश्नुते ॥ तस्मात्संगः परित्याज्यः सर्वदा सुखमिच्छता”  
 अर्थ० जो पुरुष स्त्रीपुत्रादिकोंविषे आसक्त हुया तिनका प-  
 रित्याग नहि करेहै सोई तिनके हानिवृद्धि औ उत्पत्तिनाश-  
 दिकजन्य श्लेशकूं प्राप्त होवेहै औ जो आसक्तिकरके रहित  
 भया तिन सर्वका परित्याग करेहै सो समाधिजन्य परम सु-  
 खका अनुभव करेहै यातें जिस पुरुषकूं परमसुखकी इच्छा  
 है तिसकूं सर्वदाहि सर्वके संगका परित्याग करणा चाहिये  
 इति ॥ तथा श्रुतिमेंभी कहाहै “न कर्मणा न प्रजया धनेन  
 त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः” अर्थः० यज्ञादिक कर्मकरके औ  
 प्रजाकरके तथा विपुल धनकरकेभी मोक्षकी प्राप्ति नहि होवेहै  
 किंनु एक त्यागकरकेहि केचित् ऋषिलोक मोक्षकूं प्राप्त होते  
 भयेहैं इति ॥ औ जो सर्वके त्याग करणेंसँ बिना परिधा-  
 रयुक्त यहविषेहि योगसिद्धिकी यांछा करेहै सो मूर्ख है, यह  
 वार्ता अन्य ग्रंथमेंभी कथन करीहै “मातुरंकगतो बालो गृहीतुं  
 चंद्रमिच्छति ॥ यथा योगं तथा योगी संत्यागेन विनाऽबुधः”  
 अर्थ० जैसे माताके अंकमें स्थितभया मूढ बालक चंद्रमाके

पकडनेकी वांछा करेहै तैसेहि जो साधक पुरुष सर्वके परि-  
त्याग कियेतेंविना योगसिद्धिकी वांछा करेहै सोभी वाटककी  
न्याई मुखंहि है इति ॥ यातें “विजनदेशगतः” कहिये  
साधककें सर्व स्त्रीपुत्रादिकोंका पछियाग करके निर्जन औ  
पवित्र देशविषे जायकर निवास करणा चाहिये, यह बात  
कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतर उपनिषत्मेंभी कथन करीहै “समे  
शुचौ शक्रेवावह्निवातुकाविर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ॥  
मनोनुकूले न तु घक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्” ॥

अर्थ० सर्वतरफसे समान औ पवित्र तथा कंकर अग्नि  
वातुका शब्द जलाश्रयादिकोंकरके वर्जित औ अत्यंत वा-  
युकरके रहित जो गुहाआदिक सुंदर औ मनके अनुकूल  
स्थान होये तहांहि जायकर साधक पुरुषकें योगाभ्यास क-  
रणा योग्य है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै ॥

“तपोवनं सुसंप्राप्य फलमूलोदकान्वितम्”

तत्र रम्ये शुचौ देशे ब्रह्मचोपसमन्विते ॥

स्वधर्मनिरतैः शान्तैर्ब्रह्मचिद्भिः समाश्रिते ॥

वारिभिश्च सुसंपन्नैः पुष्पैर्नानाविधैर्भुते ॥

फलमूलैश्च संपूर्णैः सर्वकामफलप्रदे ॥

देवाश्रमं वा नद्यां वा ग्रामे वा नगरेऽथवा ॥

सुरोभनं यद्वै लब्धं सर्वं तत्क्षान्तिमवाप्नुयान् ॥

त्रिकालस्नानसंयुक्तः स्वधर्मनिरतः सदा ॥

वेदांतश्रवणं कुर्वन् तस्मिन् योगं समभ्यसेत् ॥

अर्थ० नानाप्रकारके कंद मूल फल औ विमल जलाशय औ घेदध्वनिकरके युक्त तथा स्वधर्मविषे तत्पर ब्रह्मवेत्ता तपस्वियोंकरके अधिष्ठित औ सरोवरोंविषे नानाप्रकारके पुष्पोंकरके शोभायमान तथा सर्व जंतुवोंके फलमूलोंकरके संपूर्ण तपोवन अथवा गंगादिक नदीके तीर वा देवाढ्यादिक जो रमणीय औ पवित्र देश हैं तहांहि साधक पुरुषकूं जायकर सर्वप्रकारकी रक्षाकरके युक्त सुंदर मठ बनायकर त्रिकाल स्नानकरके युक्त होयकर औ वेदांतशास्त्रका श्रवण करते हुये योगाभ्यास करणा योग्य है इति ॥ सो योगाभ्यासके योग्य मठका लक्षण इठयोगमदीपिकाविषे कथन किया है “अल्पद्वारमरंभ्रगतंविघरं नात्युच्चनीचायतं सम्यग्गोमयसांद्र-  
लितममलं निःशेषजंतूज्जितम् ॥ बाह्ये मंडपवेदिकूपरुचिरं प्राकारसंवेष्टितं मौक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्या-  
सिभिः ॥” अर्थ अल्पद्वारवान् औ गतंविघरादिकोंकरके वर्जित तथा न अतिक्रुचा औ न अतिनीचे तथा सम्यक्प्रकारसे गोवरादिकोंकरके लिपायमान औ स्वच्छ तथा सर्व मृषकादिक जंतुवोंकरके रहित औ बाह्यमें मंडपवेदिकूपादिकोंकरके रमणीय तथा चारि तरफमें भित्तिकरके घे-

दित जो स्थान है तिसकूंहि योगीलोंकोंने योगाभ्यसके  
योग्य कथन किया है इति॥ तथा नन्दिकेश्वरपुराणमें भी कहा है॥

मंदिरं रम्यविन्यासं मनोज्ञं गंधवासितम् ॥

धूमामोदादिसुरभि कुसुमोत्करमंडितम् ॥

मुनितीर्थनदीवृक्षपद्मिनीशैलशोभितम् ॥

चित्रकर्मनिचङ्गं च चित्रभेदविचित्रितम् ॥

कुर्याद्योगगृहं धीमान् सुरम्यं शुभवर्त्मना ॥

दृष्ट्वा चित्रगतान् शांतान् मुनीन् याति मनःक्षीणम् ॥

सिद्धान् दृष्ट्वा चित्रगतान् मतिरभ्युद्यमे भवेत् ॥

मध्ये योगगृहस्याथ लिखेत् संसारमंडलम् ॥

श्मशानं च महाघोरं नरकांश्च लिखेत् क्वचित् ॥

तान् दृष्ट्वा भोषणाकारान् संसारे सारयार्जिते ॥

अनवसादो भवति योगी सिद्धयभिलाषुकः ॥

अर्थ० मनोहर औ सुंदर विन्यासकरके युक्त औ धूपा-  
दिकसुगंधियोंकरके सुगंधित तथा नानाप्रकारके पुष्पोंकरके  
युक्त वृक्षोंसे शोभायमान औ मुनियोंके निवास, नदी वृक्ष  
पर्वतादिकोंके समीप तथा स्वच्छ मार्गोंकरके युक्त औ मध्यमें  
योगीजनोंकी शांत मूर्तियोंकरके चित्रित होवे जिनकुं देख-  
करके साधक पुरुषकुं योगविषे विश्वास औ उत्साह उत्पन्न

होवे, तथा तिस मठमें किसी स्थलविषे संसारमंडल औ  
 श्मशान तथा घोर नरकोंके चित्रभी लिखेहोवें जिन भयं-  
 कराकारोंके देखनेसे योगसिद्धिकी अभिलाषावान् योगी इस-  
 निःसार संसारचक्रसे उपरामताकूं प्राप्त भया योगाभ्यासविषे  
 अग्रमत्त होवेइ इति ॥ इस प्रकारके मठविषे “गनसाध्वसः”  
 कहिये साधक पुरुषकूं संपंख्याद्यादिकोंके भयतें रहित होयकर  
 निवास करणा चाहिये, काहेतें अपने प्रारब्धकर्मसे बिना  
 संपंख्याध्मदिक कोईभी इस पुरुषकूं किंचित्मात्रभी दुःख  
 नहि देसकैहै, यह वार्ता भागवतके सप्तम स्कंधमेंभी कथन क-  
 रीहै “पथि द्युतं तिष्ठति दिष्ठरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विन-  
 श्यति ॥ जीवत्यनाथोपि तदोक्षितो वने गृहेपि गुप्तोऽस्य  
 हतो न जीवति”

अर्थ० मार्गविषे पतितमईभी वस्तु प्रारब्धकर्मकरके रक्षि-  
 त रहती है औ जो प्रारब्धमें नहि हो तो अतियत्नसे घरमें  
 रखी हुईभी नाशकूं प्राप्त होवे है तथा प्रारब्ध कर्मकर-  
 के रक्षण किया हुआ अनाथ पुरुषभी संपंख्याद्यादिकोंकर-  
 के संकुल गद्गर वनविषेभी जीवता रहताहै औ प्रार-  
 ष्ठकर्मकरके इनन किया हुआ तो सर्व तरफसे रक्षाकरके  
 युक्त स्थानविषे स्थितभयाभी मृत्युकूं प्राप्त होवेइ इति ॥  
 तथा भर्तृहरिनेभी नीनिशतकमें कहाहै “घने रणे शत्रुजटाग्नि-

मध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा ॥ सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा-  
 रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि” अर्थ० गहन वनं औ  
 शत्रुवाँके मध्यमें तथा गंभीर जल औ भज्वलित अग्नि-  
 विषे तथा महासमुद्र औ पर्वतके शिखरमें तथा रात्रिविषे  
 शयनकाल औ विषमक्षणादिकजन्य प्रमादकालविषे तथा  
 विकट मार्गमेंभी पूर्व अनुष्ठान कियेहुये अपने सुकृत-  
 कर्महि इस जीवकी रक्षा करतेहैं इति ॥ तथा महाभार-  
 तके मोक्षपर्वमेंभी कहाहै “ नाकाले घियते जंतुर्विद्धः  
 शरशैतैरपि ॥ तूणाद्येणापि संस्पृष्टः प्रातःकालो न जीवति”  
 अर्थ० अनेक तीक्ष्ण बाणोंकरके वेधन कियाहुयाभी पुरुष  
 विना कालसे मृत्युकुं नहि प्राप्त होवेहै औ कालके प्रातः भये  
 तो शुष्क तृणके अग्रभागकरके हनन कियाहुयाभी नाह  
 जीवेहै इति ॥ किंच साधनपुरुषकुं निर्जनदेशमें भोजना-  
 छटादनादिकोंकी चिंताभी नहि करणी चाहिये, काहेतें  
 शरीरका पोषण तो प्रारब्धकर्महि करणेहारा है, यह वार्ता  
 विवेकचूडामणिमें शंकराचार्यनेभी कथन करीहै “प्रारब्धं  
 पुण्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलः ॥ धैर्यमात्मन्य यत्नेन तत्त्वा-  
 भ्यासं समाचरेत्” अर्थ० प्रारब्धकर्महि इस शरीरका पो-  
 षण करेगा इस प्रकारका दृढ निश्चय करके औ परम धैर्यका  
 अवलंबन करके शास्त्रोक्त प्रयत्नसे आत्मतत्त्वका अभ्यास करणा



योग्य है इति ॥ तथा भागवतके सप्तमस्कंधविषेभी कहा है “स रक्षितां रक्षति यो हि गर्भे” अर्थ० जिस ईश्वरने कृमि-आदिकोंकरके युक्त माताके उदरमें अंधोमुख इस शरीरका रक्षण किया है सोई अबभी करेगा इति ॥ तथा गीताके नवमाध्यायविषे भगवान्नेभी कहा है “अनन्याश्रितयंतो मां ये जनाः पर्युपासते ॥ तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यम्” अर्थ० हे अर्जुन जो पुरुष मेरेहि आश्रय होय-कर योगस्थ्यासद्वारा मेरी निरंतर उपासना औ चिंतन कर-तैं तिन नित्ययुक्त पुरुषोंका मैं स्वयमेव योगक्षेम वहन कर-नाहूँ इति ॥ इस प्रकार भय तथा चिंतादिकोंका परित्याग करके “समुपकल्प्य शुभासनं” कहिये पूर्वोक्तलक्षणमठ-विषे दर्भ मृगचर्मादिकोंकरके कोमल आसन बनाना चाहिये, यह वार्ता गीताके पष्ठाध्यायविषेभी कथन करी है—

“नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्”

अर्थ० प्रथम तो दर्भ बिछावे तिसपर मृगचर्म पुना ति-सके ऊपर निर्मल वस्त्र बिछावे इस प्रकारसें न तो अतिऊंचा औ न अतिनीचा आसन बनाना चाहिये इति ॥ सो यह आ-गन “आत्मनः” कहिये अपना होना चाहिये दूसरेका नहि,

१. अपामवस्तुकी प्राप्ति करणेका नाम योग है औ मामवस्तुकी रक्षा करणेका नाम क्षेम है.

काहेतें दूसरेके आसनपर यथेष्ट अभ्यास नहि संभवेहै किंतु  
 तिसके अधीन रहना पडताहै, यह वार्ताभी गीताके षष्ठाध्याय-  
 मेंहि कथन करीहै “शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः”  
 अर्थ० साधकपुरुषकूं पूर्वोक्त पवित्रदेशविषे अपना स्थिर आ-  
 सन करणा चाहिये दूसरेके आसनपर योगाभ्यास नहि करणा  
 चाहिये इति ॥ तथा मनुस्मृतिमेंभी कहाहै “सर्वं परवशं दुःखं  
 सर्वमात्मवशं सुखम् ॥ एतद्दिद्यार्त्तमासेन लक्षणं सुखदुःखयोः”  
 अर्थ० यावत्मात्र पराधीनता है सो सर्वहि दुःखका हेतु है  
 औ यावत्मात्र स्वतंत्रता है सो सर्वहि सुखका हेतु है विवेकी-  
 पुरुषकूं संक्षेपसँ यहि सुखदुःखका लक्षण जानना चाहिये इति  
 ॥ तथा “दृढमतिः” कहिये मरणपर्यंतका निश्चयकरके  
 योगाभ्यास करणा चाहिये दिवस औ भासोंकरके योगसिद्धि-  
 की वांछा नहि करणा चाहिये इस वार्तापर जीवन्मुक्तिप्रकरण-  
 विषे विद्यारण्यस्वामीने एक दृष्टांत लिखाहै । सो जैसे किसी  
 एक ब्राह्मणने आपणे पुत्रकूं वेदाध्ययन करणेके अर्थ किसी  
 अन्य ग्राममें भेजा सो जब तिसकूं गये हुये षट् दिवस व्यं-  
 तीत भये तो सो ब्राह्मण अपनी स्त्रीकेप्रति कहने लगा हे  
 प्रिये वेद तो लोकविषे च्यारिहि प्रसिद्ध हैं औ हमारे पुत्रकूं  
 गमन किये तो आज षट् दिवस व्यतीत होगयेहैं इतना वि-  
 लंब किस कारणसँ हुया इति ॥ सो जैसे इस प्रकारकी इ-

छात्रान् ब्राह्मणं मूर्खं था तेसेहि जो साधक कितनेक दि-  
 वसे अथवा मासोंविषे योगसिद्धिकी वांछा करैहै सोभी मू-  
 खंहि है इति ॥ तथा पतंजलिनेभी योगसूत्रोंमें कहाहै  
 “सुतु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः” अर्थ०  
 सो अभ्यास दीर्घकाल औ निरन्तर तथा आदरपूर्वक सेवन  
 किया हुआहि दृढ अवस्थाकुं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा योगवा-  
 सिष्ठके उपशमप्रकरणमें वसिष्ठजीनेभी कहाहै “जन्मांतरवि-  
 राभ्यस्तावाम संसारसंस्थितिः ॥ सा विराभ्यासयोगेन वि-  
 ना न क्षीयते कचिन्” अर्थ० हे रामचंद्र जन्मजन्मांतरोंविषे  
 दीर्घकालसे जो संसारकी वासनाका अभ्यास होय रहाहै  
 सो दीर्घकालपर्यंत योगाभ्यास कियेतें विना अन्य किसी  
 उपायकरके क्षीण नहिं होवेहै इति ॥ इस स्थलविषे एक ठौ-  
 किक इतिहास है सो संक्षेपसें यही लिखेहैं ॥ जैसे कोई एक  
 ब्राह्मण रामचंद्रजीका अत्यंत भक्त था सो एक समयविषे दु-  
 र्भिक्षकरके पीड़ित भया एकाकी परदेशकुं गमन करता भया तो  
 मार्गमें एक भटेच्छोंका ग्राम आया सो जिस कालविषे भिक्षा-  
 के अर्थ तिस ग्राममें ब्राह्मणने प्रवेश किया तो तिन भटेच्छोंने  
 पकड़कर बलात्कारसें तिसकी शिखा औ यज्ञोपवीत उतारक-  
 रके अपनी जातिमें मिलाय दिया औ अपनी जातिके सर्व  
 कर्म तिसकुं पढाय दिये परंतु जिस कालविषे सो ब्राह्मण

तिन म्लेच्छोंके साथ मिलकर निमाज पढ़कर दोनों हाथ खु-  
 लेकरके दवा मांगे तो तिसके मुखसे या खुदाके स्थलमें या  
 रामजी ऐसा शब्द निकसे तो एक दिवस तिन म्लेच्छोंने क्रो-  
 धकरके कहा हे दुष्ट अब तो तूं हमारे मतमें मिलगयाहै पुना  
 काहेको रामका नाम लेताहै तो तिस ब्राह्मण म्लेच्छने कहा,  
 हे मित्रो चालीस वर्षपर्यंत मैं ब्राह्मण रहाहुं औ अब तीन  
 द्यारि मासमें तुमारी जातिविषे मिलाहुं सो चालीस वर्षसे  
 रामशब्दने मेरे हृदयमें प्रवेश किया हुआहै यातें—किसप्रका-  
 रसें सो शीघ्रहि निकस सकैहै इति ॥ तैसेहि अनेक जन्मज-  
 न्मांतरोंसे संसारकी घासनाओंका जो हृदयविषे प्रवेश होय-  
 रहाहै सो किस प्रकारसे तिनकी अल्पकालके योगाभ्यासक-  
 रके निवृत्ति होयसकैहै ॥ यातें साधकं पुरुषकूं चिरकालपर्यं-  
 तहि अभ्यास करना योग्यहै ॥ तथा “क्रमशः” कहिये  
 प्रथम यम पश्चात् नियम तदनंतर आसन तिसके पीछे प्राणा-  
 याम पश्चात् प्रत्याहार तदनंतर धारणा तिसके पश्चात् ध्यान  
 तदनंतर समाधि इस क्रमसे “समभ्यसेत्” कहिये वक्ष्यमाण  
 रीतिसें उक्त योगके अष्ट अंगोंका अभ्यास करना चाहिये क्र-  
 मसेविना नहि, काहेतें जैसे सीढ़ीकेविना पुरुष गृहके ऊपरभा-  
 गविषे आरोहणं नहि करसकैहै तैसेहि साधक पुरुष यमनि-  
 यमादिकरूप सीढ़ीकेविना निर्विकल्पसमाधिरूप गृहके ऊपरभा-

गविषे आरोहण करणिकूं समर्थ नहि होवेहै ॥ तथा योगभा-  
व्यविषे व्यासजीनेभी कहाहै—

“योगेन योगो ज्ञातव्यो योगायोगः प्रवर्तते ॥

योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगी रमते चिरम् ॥”

अर्थ० योगकी प्रथम भूमिकासे दूसरी भूमिका जाननी चाहिये अर्थात् प्रथम भूमिकाके जय हुये पश्चात् दूसरीका आरंभ करना चाहिये काहेतें प्रथम भूमिकाके जय हुयेत अनंतरहि दूसरीभूमिकाविषे साधककी प्रवृत्ति होवेहै इस प्रकार भूमिका जय क्रमसे जो योगमें अप्रमत्त होवेहै सोई योगी चिरकालपर्यंत पृथिवीविषे रमण करेहै अर्थात् योग-सिद्धिकी प्राप्तिद्वारा चिरंजीवी होयकर विचरेहै इति ॥ यातें साधक पुरुषकूं उक्तक्रमसेहि योगाभ्यास करणा योग्य है सो अभ्यासका उक्षण योगसूत्रोंमें पतंजलिने कथन कियाहै “तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः” अर्थ० निर्विकल्पसमाधि की स्थितिके अर्थ जो योगके अंगोका बारंबार आवर्तन करणाहै जिसका नाम अभ्यास है इति ॥ ५ ॥

शंका ॥ पूर्वोक्त श्लोकविषे तुमने कहा जो मुमुक्षु पुरुषकूं पक्षा-  
तदेशविषे मठ बनायकर तिसमें आसन जमायकरके यमनिय-  
मादिक क्रमसे योगाभ्यासकरणा योग्यहै सो घांता अन्यथा-  
सिद्ध है, काहेतें रुग्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वनर उपनिषत्में कहाहै

“तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय” अर्थ० तिस ब्रह्मके जाननेसे हि यह अधिकारी पुरुष मोक्षकृं प्राप्त होवेहे ब्रह्मज्ञानकेविना मोक्षके अर्थ कोई दूसरा उपाय नहिहै इति ॥ तथा तदाहि पृष्ठाध्यायविषेभी कहाहै “यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ॥ तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यानो भविष्यति” अर्थ० जिस कालविषे मनुष्य आकाशकूं चर्मकी न्याई आवेष्टन करलेवेंगे तिस कालमें विना ब्रह्मज्ञानसे जन्ममरणरूप संसारदुःखकीभी निवृत्ति होजावेगी अर्थात् जैसे मनुष्य आकाशकूं कदाचित्भी आवेष्टन नहि करसकैहैं तैसेहि ब्रह्मज्ञानसे विना कदाचित्भी/संसारदुःखकी निवृत्ति नहि होवेहे इति ॥ तथा अन्यस्मृतिमेंभी कहाहै “ज्ञानादेव तु कैवल्यं प्राप्यते येन मुच्यते” अर्थ० ब्रह्मज्ञानसेहि कैवल्यमोक्षकी प्राप्ति होवेहे जिसकरके मुमुक्षु पुरुष सर्वबंधनोंसे मुक्त होवेहे इति ॥ तथा विवेकचूडामणिविषे शंकराचार्यनेभी कथन कियाहै “नान्योस्ति पंथा भूषयन्धमुक्तेर्विना स्वतत्त्वावगमं मुमुक्षोः ” अर्थ० मुमुक्षुपुरुषकूं आत्मतत्त्वके बोधविना मोक्षके अर्थ दूसरा कोई मार्ग नहिहै इति ॥ तथा गीताके पनुर्याध्यायविषे भगवान्नेभी कहाहै “न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥ सर्वं ब्रह्मातिष्ठं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते” अर्थ० हे अर्जुन ब्रह्मज्ञानके समान

इस जगत्विषे दूसरा कोई पदार्थ पवित्र नहीं है ॥ तथा श्रुति स्मृतिविहित जो यज्ञादिक कर्म हैं तिन सर्वकाहि ज्ञानके-  
विषे अंतर्भाव होवेहै इति ॥ इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृति-  
योविषे केवल ब्रह्मज्ञानकूहि मोक्षकी हेतुता कथन करीहै  
सो ज्ञान उपनिषदादिक वेदांतवाक्योंके श्रवणकरणेतें होवेहै  
अन्यथा नहीं, यह वार्ता यजुर्वेदकी बृहदारण्यक उपनिषत्में  
याज्ञवल्क्यनेभी कथन करीहै “तं त्वोपनिषदं पुरुषं पृच्छामि”  
अर्थ० हे शतकल्य में तेरेसें उपनिषद्विषे प्रतिपादन किया जो  
पुरुष है निसकू पूछताहूं इति ॥ तो तुम चिरकाल औ अ-  
त्यंत प्रयासकरके साध्य तथा अनेक विघ्नोकरके युक्त जो  
योगाभ्यास है निसकू काहेतें विधान करतेहो ॥ किंच “एते  
न योगः प्रत्युक्तः” इस शारीरकसूत्रविषे महर्षि व्यास  
औ निसके ऊपर भाष्यकरणेहारे शंकराचार्यने योगका  
खंडन कियाहै यातेंभी तुमारा कथन अयुक्त है ॥ इस प्र-  
कारकी शंकाके भयेंतें समाधान कहेहैं ॥

इन्द्रवंशा धृतम् ॥

ज्ञानं वदन्तीह विमोक्षकारणं  
तज्जायते नैव विलोलचेतसि ॥

लौल्यं न योगेन विना प्रशाम्यति .

तस्मात्तदर्थं हि यतेत साधकः ॥६॥

ज्ञानमिति ॥ यद्यपि ब्रह्मज्ञानहि मोक्षकी प्राप्तिमें कारण है अन्य साधन नहि यह जो पूर्वोक्त श्रुतिस्मृतियोंका कथन है सो यथार्थ है तथापि चित्तकी एकाग्रताके हुयेविना केवल वेदांत श्रवणकरणेतें तिस ज्ञानकी प्राप्ति होवे नहि काहेतें जैसे जिस कालविषे जल वायुकरके चलायमन होवेहै तो तिसविषे मुखका आभास स्पष्ट नहि प्रतीत होवेहै तैसेहि जिस कालविषे नानाप्रकारके संकल्पविकल्परूप वायुकरके बुद्धिरूप जल क्षोभायमान अर्थात् चंचल होवेहै ती आत्मारूप मुखका संशय औ विपरीत भावनासैं रहित स्पष्टबोध नहि होवेहै ॥ यह यातां यजुर्वेदकी कठउपनिषद्मेंभी निरूपण करीहे “दृश्यते त्वय्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः” अर्थ० यह आत्मा सूक्ष्मदर्शी विद्वान् पुरुषोंकरके सूक्ष्मबुद्धिके अग्रभागमेंहि देखा जावेहै स्थूलबुद्धिकरके नहि काहेतें जैसे सुचिकेके छिद्रविषे सूक्ष्म तामाकाहि प्रवेश संभवेहै जट निकासनेकी स्थूलरज्जुका नहि औ जैसे अतल-मादिक सूक्ष्मवस्त्रके सीवनेमें सूक्ष्म सुचिकाहि उपयोगी होवेहै क्षेत्रके स्वरूपण करनेहाग फाटा नहि तैमेहि आत्मत-



स्वके प्रतिविम्ब ग्रहण करणेविषे सूक्ष्मबुद्धिहि समर्थ होवेहे स्थूल नहि ॥ तिनमें नानाप्रकारके संकल्पविकल्पोकरके चंचल जो बुद्धि है सो स्थूल कहियेहे औ जो एकाग्र बुद्धि है निसका नाम सूक्ष्म है ॥ सो बुद्धिकी चंचलताका अभाव बिना योगाभ्यासके नहि होवेहे किंतु योगाभ्यासकरकेहि होवेहे, यह बातों ध्यानदीपमें पंचदशीकारनेभी कथन करीहे “योगो मुख्यस्ततस्तेषां धीदर्पस्तेन नश्यति” अर्थ० जिन मुमुक्षुपुरुषोंका चित्त नानाप्रकारके संकल्पविकल्पोकरके चंचल है तिनकूं योगाभ्यासहि चित्तकी एकाग्रताविषे मुख्य साधन है काहेतें योगाभ्यासकरकेहि बुद्धिकी चंचलताका नाश होवेहे इति ॥ शंका ॥ योगाभ्यासके बिना जप, तप, यज्ञ, उपवास, उपासना आदिक अन्य उपायोंकरकेभी शुद्धिद्वारा बुद्धिकी एकाग्रता संभवेहे तो योगाभ्यासका क्या प्रयोजन है ॥ समाधान ॥ यद्यपि जप, तप, उपासना आदिकोंकरकेभी बुद्धिकी एकाग्रता संभवेहे तथापि जिस प्रकारसे योगाभ्यासकरके बुद्धिकी शीघ्र एकाग्रता होवेहे तैसे अन्य उपायोंकरके नहि होवेहे काहेतें सर्व जप, तप, यज्ञादिकोंमें योगाभ्यासकूं अधिक फटकी हेतुता है, यह बातों अथर्ववेदके अथर्वशिखा-उपनिषद्मेंभी कथन करीहे “क्षणमेकमास्याय क्रतुशत-

स्यापि फलमवाप्नोति ” अर्थ० एकक्षणमात्रभी समाधिविषे  
स्थित भया योगी भी अश्वमेधयज्ञके फलकं प्राप्त होवेहै  
इति ॥ तथा अत्रिसंहितामेंभी कहाहै “योगात्संप्राप्यते ज्ञानं  
योगाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ योगः परंतपो ज्ञेयस्तस्माद्युक्तः समभ्य-  
सेत् ॥ न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्यया ॥ गतिं गंतुं  
दिजाः शक्ता योगात्संप्राप्नुवन्ति याम्” अर्थ० योगकरके-  
हि ज्ञानकी प्राप्ति होवेहै औ योगसंहि धर्मकी प्राप्ति होवेहै  
तथा योगहि परम तप है यातें सर्वदाहि योगका अभ्यास  
करणा योग्य है ॥ तथा योगाभ्यासकरके जिस गतिकी  
प्राप्ति होवेहै सो तीव्र तपकरके औ मंत्रोंके जप करके तथा  
यज्ञोंके अनुष्ठान करनेसेंभी तिस गतिकुं दिजलोक प्राप्त  
होनेमें समर्थ नहि होवेहै इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामें-  
भी कहाहै “इज्याचारदमाहिंसातपःस्वाध्यायकर्मणाम् ॥  
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्” अर्थ० इज्या,  
आचार, इन्द्रियोंका दमन, अहिंसा, तप, वेदाध्ययन, इ-  
त्यादिक सर्व कर्मोंसे योगाभ्यासकरके जो आत्माका साक्षा-  
त्कार करणा है सो परमधर्म है इति ॥ किं च योगाभ्यासके  
बिना केवल वेदांतवाक्योंके श्रवण करनेतें ज्ञानकी भी प्राप्ति  
नहि होवेहै यह याता दसस्मृतिविषे भी कथन करीहै ॥

“स्वसवद्यहि तद्रह्य कुमारीस्त्रीसुखं यथा ॥ अयोगी नैव जानति जात्यंधो हि घटं यथा” अर्थ० जैसे ‘यौवनावस्थाकी स्त्री पतिके संभोगजन्य सुखकूं आपहि अनुभव करेहै तैसेहि सो ब्रह्मानन्दका स्वयमेव योगीलोकहि अनुभव करतेहैं ॥ औ जैसे जन्मसँ अंध पुरुषकूं घटकें स्वरूपका ज्ञान नहि होवेहै तैसेहि अयोगी लोक तिस ब्रह्मकूं नहि जानसकैहैं इति ॥ तथा कपिलदेवजीनेभी सांख्यसूत्रोंमें कहाहै “नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्षादते विरोचनवत्” अर्थ० विना अभ्यासके केवल उपदेशश्रवणमात्रकरके हि कृतकृत्यताकी प्राप्ति नहि होरहे कहेंतें दैत्योंके पति विरोचनकूं ब्रह्मासँ उपदेश श्रवणकरणेतँभी ज्ञानकी प्राप्ति नहि होती भयीहै इति ॥ तथा श्रुतिमेंभी कहाहै “अयं तद्दर्शनाभ्युपाये योगः” “अध्यात्मयोगाविगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति” अर्थ० निस आत्माके साक्षात्करणमें एक योगहि उपाय है दृढमरा नहि ॥ तथा योगाभ्यासद्वाराहि तिस आत्मादेवकूं जानकर धीर पुरुष हर्षशोककरके उपलक्षित जन्ममरणरूप संसारका परित्याग करेहै इति ॥ किंच ज्ञानका फलभूत जो मोक्ष है निसकीभी योगाभ्यासकेबिना प्राप्ति नहि होवेहै किंतु योगाभ्यासकरकेहि होवेहै, यह बातें रुष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषद्मेंभी कहीहै “त्रिरुन्मत्तं स्याप्य समं श-

रीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य ॥ ब्रह्मोदुपेन प्रतरेत्-वि-  
द्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि” अर्थ० शिर ग्रीवा औ  
कटी इन तीनोंकूं स्तब्ध करके औ शरीरकूं अचल धारण क-  
रके तथा चक्षु आदिक इन्द्रियोंकूं मनसं नियमन करके ॐ-  
काररूप नौकाद्वारा योगीपुरुष हर्ष शोक जन्ममरणादिक  
भयरूप सर्व नदियोंकूं तरजावेहै इति ॥ तथा स्कंदपुराण-  
मेंभी कहाहै—

“आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृते नहि ॥

स च योगश्चिरं काळमभ्यासादेव सिद्ध्यति”

अर्थ० यद्यपि आत्मज्ञानकरकेहि मोक्षकी प्राप्ति होवेहै  
परंतु सो ज्ञान बिना योगके नहि उत्पन्न होवेहै औ तिस  
योगकी चिरकाटपर्यंत अभ्यास करणिसंहि सिद्धि होवेहै  
इति ॥ तथा कूर्मपुराणमें महादेवजीनेभी कहाहै “योगाग्नि-  
र्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम् ॥ प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानाग्नि-  
र्वाणमृच्छति” अर्थ० प्रथम योगरूप अग्नि सर्व पापोंके समूहकूं  
भस्म करेहै पश्चात् शुद्ध भये, अंतःकरणमें ज्ञानकी उत्पत्ति  
होवेहै तदनंतर कैवल्यमोक्षकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ तथा यो-  
गवासिष्ठमें भी कहाहै “दुःसहा राम संसारविषवेगां विपू-  
चिका ॥ योगगारुडमंत्रेण पावनेनोपशाम्यति” अर्थ० हे राम  
चंद्रजी यह संसाररूप विषविपूचिकाका वेग बड़ा दुःसह है सो

योगरूप गरुडके मंत्र करके शांतिकुं प्राप्त होवेहै अन्यथा नहि  
इति ॥ तथा गरुडपुराणमेंभी कहाहै “भवतापेन तप्तानां  
योगो हि परमौषधम्” अर्थ० जन्ममरणरूप संसारके तापक-  
रके तप्त भये पुरुषोंकूं योगाभ्यासहि परम औषधरूप है इति॥  
तथा विवेकचूडामणिविषे शंकराचार्यनेभी कहाहै—

“समाहिता ये प्रविष्टाऽप्य ब्राह्मं श्रोत्रादि चेतस्त्वमहं चिदा-  
त्मनि ॥ त एक मुक्ता भवपाशबंधनैर्नान्ये तु पारोक्ष्यकथाभिधा-  
यिनः” अर्थ० जो पुरुष घटपटादिक बाह्य प्रपंच तथा  
श्रोत्रादिक इंद्रिय वित्त त्वं अहं आदिक आंतर प्रपंचकूं  
चिदात्महि साक्षीविषे विठयकरके समाधिस्थ होवेहै सोई  
पुरुष जन्ममरणरूप संसारके बंधनोंसैं मोक्षकूं प्राप्त होवेहैं औ  
जो केवल परोक्ष आत्मतत्त्वके वक्ता औ श्रोता हैं सो नहि  
प्राप्त होवेहैं इति ॥ तथा पंचदशीमें विद्यारण्यस्वामीनेभी क-  
हाहै “वाक्यमप्रतिबंधं सत्प्राक् परोक्षावभासते ॥ करामटक-  
पद्मोपमपरोक्षं प्रसूयते” अर्थ० समाधिकाठविषे मठविक्षेप  
प्रारब्धादिक दोषोंकरके अप्रतिबंधित भया तत्त्वमस्यादिक  
महावाक्य समाधिसैं पूर्वपरोक्ष प्रतीत भये आत्मतत्त्वविषे  
करामटककी न्याई अपरोक्ष ज्ञानका जनक होवेहै इति ॥  
इस प्रसंगपर योगवीजनामा ग्रंथमें महादेव औ पार्वतीजीका  
संवाद लिखाहै सो संक्षेपसैं यहां दिखावेहैं

## पार्वत्युवाच

“ज्ञानादेव हि मोक्षं च वदन्ति ज्ञानिनः सदा ॥

न कथं सिद्धयोगेन योगः किं मोक्षदो भवेत्”

अर्थ० पार्वतीने प्रश्न किया हे ईश्वर केवल ज्ञानकरकेहि मोक्षकी प्राप्ति होवेहे अन्य साधनकरके नहि ऐसे सर्वहि ज्ञानी लोक कथन करतेहैं तो तुम सिद्ध भये योगकूंहि किस प्रकारसे मोक्षका देनेहारा कथन करतेहो इति ॥

## ईश्वरउवाच

“ज्ञानेनैव हि मोक्षं च तेषां वाक्यं तु नान्यथा ॥

सर्वे वदन्ति खड्गेन जयो भवति तर्हि किम् ॥

विना युद्धेन वीर्येण कथं जयमवाप्नुयात् ॥

तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय नो भवेत् ॥

अर्थ० हे प्रिये केवल ज्ञानसेहि मोक्षकी प्राप्ति होवेहे अन्य साधनसे नहि, यद्यपि यह तिनका कथन यथार्थ है तथापि जैसे सर्व लोक कहतेहैं जो खड्गसे शत्रुका पराजय होवेहे तो इतना कहनेसे क्या हुया सो जैसे युद्ध औ वलसे विना केवल खड्गकरके शत्रुका पराजय नहि होवेहे तैसेहि योगके विना केवल ज्ञानकरके मोक्षकी प्राप्ति नहि होवेहे इति ॥ तथा अन्य श्लोककरकेभी तहाँहि कहाहे “ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मक्षोपि जितेन्द्रियः । विनायोगेन देवोपि न मोक्षं दमते प्रिये

अर्थ० हे प्रिये ज्ञाननिष्ठ होवे अथवा विरक्त होवे चाहे सर्व धर्मोंके जाननेहारा होवे अथवा सर्व इन्द्रियोंके जीतनेहारा होवे किंच देवताभी होवे तो बिना योगाभ्यासके मोक्ष-पदकूं नहि प्राप्त होवेहै इति ॥ शंका ॥ तुमने कहा जो योगाभ्यासके बिना अपरोक्षज्ञानकी औ तिसके फलभूत कैवल्यमोक्षकी प्राप्ति नहि होवेहै सो बात असंभव है काहेन जनक मतदर्शनियोंकूं बिनाहि योगाभ्यासके केवल वेदांत-वाक्योंके श्रवणमात्रसेहि अपरोक्षज्ञानकी प्राप्ति पुराणादिकों-विषे श्रवणमें आवेहै ॥ समाधान ॥ जनकादिकोंकूंभी पूर्वजन्मविषे अनुष्ठान किये हुये योगाभ्यासके संस्कारोंसेहि ज्ञानकी प्राप्ति होती भयीहै केवल वेदांतश्रवणसें नहि यह वार्ता पुराणोंमेंभी निरूपण करीहै—

“जैगीपव्यो यथा विशो यथा चैवासितादयः ॥

क्षत्रिया जनकाद्यास्तु तुलाधारादयो विशः ॥

धर्मव्याधादयः सप्तशूद्राः पैलवकादयः ॥

मैत्रेयी सुलभा मार्गी शंडिली च तपस्विनी ॥

पते चाज्ये च यहवो नीचयोनिगतो अपि ॥

‘ज्ञाननिष्ठां परां माताः पूर्वाभ्यस्तस्ययोगतः ॥’

अर्थ० जैगीपव्य औ अक्षित इत्यादिकें ब्राह्मण तथा जनकादिक क्षत्रिय औ तुलाधारादिक वैश्य तथा धर्मव्याध

औ पैलवकादिक सप्तशूद्र तथा मैत्रेयी सुलभा गार्गी शां-  
डिली आदिक स्त्रियां इनमें आदिटेकर अन्यभी अनेकहि  
नीचयोनियोंमें स्थित भये हनुमान् जांववानादिक जो परम-  
ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त होते भयेहैं सो सर्वहि पूर्वजन्मविषे अनुष्ठान  
कियेहुये अपणो योगाभ्यासके संस्कारोंकरकेहि प्राप्त होते  
भयेहैं इति ॥ किंच यजुर्वेदकी बृहदारण्यकउपनिषत्में लि-  
खाहै “तदेव सक्तः सहकर्मणैति लिंगं मनो यत्र निपक्तमस्य”  
अर्थ० अंतकालविषे इस पुरुषका मन जिस वस्तुविषे आसक्त  
होवेहै तिसही वस्तुकूं सहित कर्मोंके प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा  
गीताके अष्टमाध्यायविषेभी कहा है—

“यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेधरम् ॥

न तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥”

अर्थ० हे अर्जुन देहके अवसानकालविषे यह पुरुष जिस-  
जिसपदार्थका स्मरण करता हुआ शरीरका परित्याग करेहै  
तिस तिस पदार्थकूंहि सर्वदा तिसकी भावनाकरके युक्त  
भया प्राप्त होवेहै इति यातें मृत्युकालकी अत्यंत व्यथाकरके  
मूर्छित भये योगहीन केवल ज्ञानी पुरुषकूं अहं ब्रह्मास्मि  
इस प्रकारकी स्मृति नहि संभवेहै यह वार्ता योगबोजमें महा-  
देवजीनेभी कथन करीहै—



“पिपीलिका यदा लग्ना देहे ध्यानादिमुच्यते ॥  
असौ किं वृश्चिकैदंष्ट्रो देहांते वा कथं स्मरेत्”

अर्थ० हे देवि योगहीन पुरुषके शरीरसाथ जिस कालविषे एक पिपीलिकाकाभी स्पर्श होवेहै तो तिसही कालविषे सो ध्यानसे व्युत्थानकूं प्राप्त होवेहै तो देहके अंतकालविषे जब अनेक वृश्चिकोंके काटनेसमान व्यथाकूं प्राप्त हेवेगा तो तिस कालविषे कैसे स्मरण करेगा इति ॥ औ योगयुक्त पुरुषको तो स्वेच्छो मृत्यु होवेहै यातें तिसकूं अंतकालविषेभी स्मृति संभवेहै ॥ तथा योगवासिष्ठमेंभी उदात्तक वीतहव्य शुक्देवादिर्कोषे स्वेच्छानुसार शरीरके परित्याग करनेसेही मोक्षपदकी प्राप्ति कथन करीहै ॥ तथा यजुर्वेदकी कठउपनिषत्मेंभी कहाहै “शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्ध्ना नमः प्रिनिःसृतैका ॥ तयोर्ध्वमायन्मृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति” अर्थ० एकसौ औ एक हृदयकी मुख्य नाडी हैं तिनमेंसें सुषुम्नानामक एक नाडी मस्तकमें ब्रह्मरंध्रपर्यंत गईहै तिस नाडीद्वारा जो पुरुष प्राणोंकूं ब्रह्मरंध्र भेदन करके परित्याग करेहै सोई मोक्षकूं प्राप्त होवेहै औ जिस पुरुषके प्राण मुख नासिका आदिक दारोंसे निगमन करेहैं सो संप

पशु मनुष्य पक्षी आदिक योनियोंकूं प्राप्त होवेहै इति ॥  
तथा गीताके अष्टमाध्यायमेंभी कहाहै—

“प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्यायुक्तो योगबलेन चैव ।  
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्”  
अर्थ० हे अर्जुन जो पुरुष मरणकालविषे मेरी भक्ति औ म-  
नकी एकाग्रता करके युक्त भया योगबलकरके भ्रुवोंके मध्यम-  
वेशद्वारा ब्रह्मरंध्रकूं भेदन करके प्राणोंका परित्याग करेहै सो  
परम दिव्य पुरुष जो परब्रह्म है तिसकूं प्राप्त होवेहै अर्थात्  
मोक्षकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वविषे  
भीष्मपितामहने युधिष्ठिरकेमतिभी कहाहै—

“यथा चानिमिषाः स्थूठा जातं भित्त्वा पुनर्जलम् ॥

प्रविशन्ति यथा योगास्तत्पदं धीतकल्मषाः ॥

यथैव वागुरां छित्त्वा बटवन्तो यथा मृगाः ॥

प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः ॥

अवलाभ्य मृगा राजन् वागुरासु तथा परे ॥

विनश्यन्ति न संदेहस्तद्दयोगवलादते” ॥

अर्थ० हे राजन् जिस प्रकारसे स्थूठ भग्न मच्छ बटसें  
जाटकूं भेदन करके पुनः अपने निवासस्थान जलविषे प्रवेश  
करतेहैं तैसेहि योगी ठोक प्रारब्धकर्मरूप जाटकूं योगरूप  
बटसें भेदन करके सर्व पापोंसे रहित भये पुनः अपने निवा-

सुस्थान ब्रह्मविषे एकीभावकूं प्राप्त होवेहैं ॥ तथा जैसे बल-  
वान् मृग जालकूं भेदन करके सर्व बंधनोंसे मुक्त हुए अभि-  
मत विमल मार्गकूं प्राप्त होवेहैं औ जो बलसे हीन होवेहैं  
सो जालविषेहि बंधनकूं प्राप्त भये मृत्युकूं प्राप्त होवेहैं तैसेहि  
जो पुरुष तो योगरूप बलकरके युक्त हैं सो प्रारब्धकर्मरूप  
जालकूं भेदन करके देहादिक सर्व बंधनोंसे रहित भये ब्रह्म-  
भावरूप अभिमत विमल मार्गकूं प्राप्त होवेहैं औ जो योगरू-  
प बलकरके हीन हैं सो कर्मरूप जालमेंहि पड़ित भये नानाप्र-  
कारकी योनियोंविषे भ्रमणरूप मृत्युकूं प्राप्त होवेहैं इति ॥  
किंच ज्ञानसेभी प्रबल जो प्रारब्धकर्म है तिससेभी योगा-  
भ्यास प्रबल है, काहेतें योगाभ्यास करके प्रारब्धकर्मका  
निरोध होवेहै, यह वातां विष्णुधर्मविषेभी कथन करीहै—

“स्वदेहारंभकस्यापि कर्मणः संक्षयावरः ॥

यो योगः पृथिवीपाठ शृणु तस्यापि लक्षणम्”

. अर्थ० हे राजन् अपने शरीरके आरंभण करनेहारे प्रा-  
रब्धकर्मकेभी क्षय करनेहारा जो योग है तिसका लक्षण  
तूं श्रवण कर इति ॥ तथा गीताके आरंभविषे मधुसूदनस्वा-  
मीनेभी कहाहै “ सा बलवती सर्वतः संयमेनोपशाम्यति”  
अर्थ० सो प्रारब्धकर्मकी वासना सर्वसे प्रबल है परंतु धारणा

ध्यान समाधिरूप जो संयम है तिसकरके शांतिकुं प्राप्त हो-  
वेहै इति ॥ इसहि कारणसँ योगी एक शरीरसँ अनेक शरी-  
रोंकुं एक काठविषेहि निर्माण करणमें समर्थ होवेहै, यह बातें  
महाभारतके मोक्षपर्वविषे भीष्मपितामहनेभी निरूपण करीहै

“आत्मनां च सहस्राणि बहूनि भरतर्षभ ॥

योगः कुर्याद्वलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् ॥

प्रामुद्याद्विषयान् कैश्चित् कैश्चिदुग्रं तपश्चरेत् ॥

संहरेच्च पुनस्तात सूर्यस्तेजो गुणानिव ॥”

अर्थ० हे राजन् योगबलकुं प्राप्त भया योगी अपने एक  
शरीरसँ हजारों शरीरोंकुं निर्माण करेहै औ तिनँ सर्वसँहि  
पृथिवीविषे विचरेहै तिनमेसँ केचित् शरीरोंकरके तो नाना-  
प्रकारके भोगोंकुं भोगेहै औ केचित् शरीरोंकरके उग्र तपका  
आचरण करेहै पुनः अपनी इच्छाके अनुसार जैसे अस्त  
होनेके काठविषे सूर्य भगवान् अपनी सर्व रश्मियोंका संहार  
करेहै तैसेहि अपने सर्व शरीरोंका योगीष्टोक संहार करके  
एकाकीहि स्थित होवेहै इति ॥ औ जो तुमने पूर्व कहा “ए-  
तेन योगः प्रत्युक्तः” इस शारीरकसूत्रविषे महर्षि व्यास  
तथा भाष्यकारने योगका खंडन कियाहै सो बातोंभी वि-  
चारसँ विनाहि तुमने कथन करीहै काहेतें इस सूत्रविषे जो

योगका खंडन किया है सो ईश्वर तटस्थ है औ प्रकृति स्वतंत्र जगत् का कारण होवे है तथा जीवसे ईश्वर भिन्न है इत्यादिक जो वेदांतमतके विरुद्ध योगशास्त्रका सिद्धांत है तिसकाहि खंडन किया है यम नियमादिकरूप अष्टांगयोगका नहि यह वार्ता नारायणतीर्थनेभी निरूपण करी है “स्वातंत्र्यस्य त्वत्त्वमुखं प्रधानं सत्यं च चिद्रेदगतं च वाक्यैः ॥ व्यासो निरावष्टतभाष्यनाख्यं योगं स्वयं निर्मितब्रह्मसूत्रैः”

“अपि चात्मप्रदं योगं व्याकरोन्मतिमान् स्वयम्” ॥

भाष्यादिषु ततस्तत्र आचार्यप्रमुखैर्मतः ॥

मत्तो, योगो भगवता गीतायामधिकोन्यतः ॥

कृतः शुक्रादिभिस्तस्मादत्र संतोतिसादराः ॥

अर्थ० योगशास्त्रविषे जो प्रकृतिका सत्यपणा औ स्वतंत्रपणा तथा जीवका ईश्वरसे पृथक्पणा औ नानापणा माना है तिसकाहि अपने निर्माण कीयेहुये शारीरकसूत्रोंविषे व्यासजीने खंडन किया है भावनारूप जो यम नियमादिपूर्वसमाधियोग है तिसका नहि” किंच योगभाष्यादिक स्थलोंविषे आत्मपदके देनेद्वारे योगकी तो स्वयमेवहि व्यासजीने व्याख्या करी है ताने शंकराचार्यादिकोंनेभी योगका अंगीकार किया है तथा गीताविषे भगवान् नेभी “तपस्विभ्यो-

'विको योगी' इत्यादिक वाक्योंमें योगकूंहि सर्वसं अधिक  
 मानाहै, तथा शुकदेव याज्ञवल्क्यादिक महा ज्ञानियोंनेभी  
 योगका अनुष्ठान कियाहै यातें सर्व महात्मा पुरुषोंकूभी स-  
 दित आदरके योगाभ्यासविषे प्रवृत्त होना योग्य है इति ॥  
 किंच यह वार्ता लोकविषे प्रसिद्ध है कि जिस वस्तुका जो  
 श्रेष्ठ पुरुष प्रीतिपूर्वक सेवन करताहै सो तिस वस्तुकी निंदामें  
 प्रवृत्त नहीं होवेहै सो सूत्रकार औ भाष्यकार यह दोनोंहि  
 महायोगी हुयेहैं तिनमें व्यासजीका योगोपणा तो सर्वलोक-  
 विषे प्रसिद्धही है औ शंकराचार्यका योगोपणा दिग्विजय-  
 विषे मंडनमिश्रके संवादादिक स्थलोंमें प्रसिद्ध है कहेतें आ-  
 काशमार्गसँ मंडनमिश्रके गृहविषे प्रवेश करना औ राजाअम-  
 रकके शरीरमें प्रवेश करना इत्यादिक अद्भुत कर्म योगश-  
 क्तिसँ विना कैसे संभवहँ ॥ तथा योगतारावलीनामा ग्रंथविषे  
 स्वयमेवहि शंकराचार्यने कथन कियाहै "सिद्धि तथा विध-  
 मनोविठये समर्था श्रीशैलशृंगकुहरेषु कदोपंतभ्ये॥गात्रं तथा,  
 वनलताः परिवेष्टयन्ति कर्णे तथा विरचयन्ति स्वगाश्च नीडम्"  
 अर्थ० श्रीशैलकी कंदराँविषे मनके विठय करणेहारी समाधि-  
 रूप सिद्धिकूँ मैं कब प्राप्त होऊंगा औ समाधिविषे स्थित  
 भये मेरे शरीरकं वनकी लता कब वेष्टन करेगी तथा मेरे  
 कानविषे वृक्षका छिद्र जानकरके वनके पक्षी कब आलय

करेंगे इति ॥ किंच च्यारि वेदोंमें कौनसी ऐसी उपनिषत् है, जिसविषे योगका प्रतिपादन नहि कीयाहै किंतु सर्व उपनिषदोंमें कहि संक्षेप कहि विस्तारकरके योगका निरूपण कियाहै सो विस्तारके भयसे यहां तिन उपनिषदोंके उदाहरण नहि दिखायेहैं जिसकी इच्छा हो सो तहां देखलेवे ॥ तथा जगत् विषे कौनसा ऐसा मत है जो अष्टांगयोगकूं नहि अंगीकार करेहै किंतु सर्वहि अर्हत कापाठ बौद्ध वैशेषिक नैयायिक शैव वैष्णव शाक्त सांख्य योगादिक मत अंगीकार करेहैं यद्यपि तिनके मतोंविषे प्रमेयपदार्थ भिन्नभिन्न निरूपण कियेहैं तथापि मोक्षकार्त्ता साधनभूत जो यम नियमादिकरूप अष्टांगयोग है सो तो सर्वके मतमें एकहि प्रकारका मानाहै ॥ तथा कौनसा ऐसा पूर्वऋषि अथवा मुनि हुवाहै जो योगाभ्यासकेविना सिद्धिकूं प्राप्त होता भयाहै किंतु जितनेक सनत्कुमार नारद पराशर याज्ञवल्क्य वसिष्ठादिक सिद्धिकूं प्राप्त भयेहैं सो सर्वहि योगाभ्यासकरके प्राप्त भयेहैं औ जो कोई वर्तमानजन्मविषे योगसेविना सिद्धिकूं प्राप्त हुयेहैं सो भी पूर्वजन्मविषे अनुष्ठान किये हुए योगाभ्यासके प्रतापकरकेहि हुयेहैं यह बातें पूर्वहि कथन करि आयेहैं यातें व्यासजी औ शंकराचार्यने योगका खंडन कियाहै यह तुमारा कथन केवल साहसमात्रहि है ॥ किंच “न निन्दा निधं

निन्दन्तुं प्रवर्तते अपि तु विधेयस्तोनुम् ” अर्थ० एक दूसरेके मतमें जो एक दूसरेके मतकी निंदा है तिसका दूसरे मतके खंडन करणमें तात्पर्य नहीं है किंतु प्रसंगपतित जो वार्ता है तिसकी स्तुति करणेविषेहि तात्पर्य है यार्ते मुमुक्षु पुरुषकूं सर्व अन्य क्रियाका परित्याग करके परम पुरुषार्थरूप जो योग है तिसके अर्थहि प्रयत्न करणा योग्य है यह वार्ता मार्तंगनामा ऋषिनेभी कथन करी है “अग्निष्टोमादिकान् गयान् विहाय द्विजसत्तमः ॥ योगाभ्यासरतः शान्तः परं ब्रह्माधिगच्छति” अर्थ० अग्निष्टोमप्रदिक सर्वकामोंका परित्याग करके केवल योगाभ्यासविषे निरंतर आसक्त भया शान्त मुमुक्षु पुरुष परम ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है अर्थात् मोक्षपदकूं प्राप्त होवे है इति ॥ ६ ॥ इस प्रकारसे योगकूं परमपदप्राप्तिकी हेतुता निरूपण करके अब तिस योगके जो अवांतर भेद हैं सो कथन करे हैं ।

वंशस्थ वृषम् ॥

हठो लयो मांत्रिकराजसंज्ञितौ  
चतुर्विधं योगमबालिशो विदुः ॥  
त्रयोपि राजोपगता भवन्त्यत-  
स्तदर्थमेवेह यतेत कोविदः ॥ ७ ॥



हठ इति ॥ सौ योग हठयोग, लययोग, मंत्रयोग, राज-  
योग इसभेदसे चारिप्रकारका है यह वार्ता योगवीजमें  
महादेवजीनेभी कथन करी है “मंत्रो हठो लयो राजा योगोयं  
भूमिकाक्रमात् ॥ एक एव महादेवि चतुर्धा संप्रकीर्यते ॥”  
• अर्थ० हे महादेवि एकहि योग हठयोग, लययोग, मंत्रयोग  
राजयोग इसप्रकार अवांतरभेदसे चारिप्रकारका कहियेहै  
इति ॥ तिनमें प्रथम हठयोगका लक्षण गोरक्षनाथने कथन  
कियाहै—

“हकारः कीर्तितः सूर्यठकारश्चन्द्र उच्यते ॥

सूर्यचन्द्रमसो योगात् हठयोगो निगद्यते” ॥

अर्थ० हकार सूर्यका नाम है औ ठकार चन्द्रमाकी संज्ञा  
है तिन दोनोंका जो योग अर्थात् एकीभाव है तिसका नाम  
हठयोग है इति ॥ तात्पर्य यह हृदयदेशमें सूर्यका निवास है  
औ नासिकाके अग्र द्वादश अंगुष्ठपर चंद्रमाका स्थान है का-  
हेते जब हृदयसे स्पर्शकरके प्राणवायु बाह्यनिर्गमन करताहै तो  
उष्ण होवेहै औ जब चन्द्रमाके स्थानसे स्पर्शकरके अभ्यंतर  
आताहै तो शीतल होवेहै, याते हृदय औ नासिकाके बाह्यदेशमें  
सूर्य औ चंद्रमाका अनुमान होवेहै तथा योगवासिष्ठके निर्वा-  
णप्रकरणमें काकभृशुंडनेभी कहाहै “द्वादशांगुष्ठपर्यं नासाग्रे  
संस्थितं विधुम् ॥ हृदये भास्करं देवं यः पश्यति स पश्यति”

अर्थ० नासिकाके बाह्य द्वादश अंगुलपर्यंत देशविषे चंद्र-  
माकी स्थिति है औ हृदयदेशविषे सूर्यका स्थान है सो जो  
योगीपुरुष तिन दोनोंकुं योगकलासैं देखताहै सोई सम्यक्  
प्रकारसैं देखताहै इति ॥ इस प्रकारसैं प्राण औ अपानके  
साथ सूर्य औ चंद्रमाका संबंध होनेतें प्राण औ अपा-  
नकीभी क्रमसैं सूर्य औ चंद्रमासंज्ञा होवेहै सो जिसकालविषे  
प्राणायामके अभ्यासकरके प्राण औ अपानकी यतिका नि-  
रोध होवेहै तो सूर्य औ चंद्रमाकी एकता होवेहै निसका नाम  
हठयोग है औ जो नाडी शुद्धि, मुद्राभ्यास, कुंडलिनीबोध, पद-  
पञ्चमेदन इत्यादिक हठयोगके अवांतर भेदहैं तिनकी आगे  
उपयोगी स्थलोंविषे व्याख्या करेंगे ॥ तथा प्राणायामादिक  
क्रमसैं विनाहि शान्मधीमुद्राके अभ्यासपूर्वक शून्यकी भाव-  
नासैं एकवारहि जो संकल्पसैं रहित होयकर मनका विटय  
करणाहै तिसका नाम उद्योगहै । यह वार्ता अमनस्कखंडविषे  
वामदेवके प्रति महादेवजीनेभी कथन करीहै ।

“दृष्टिः स्थिरा यस्य विनीव, दृश्यात् वायुः स्थिरो यस्य  
विना निरोधात् ॥ चित्तं स्थिरं यस्य विना वृत्तं वात् स एव  
योगी स गुरुः स सेव्यः” अर्थ० नासाके अग्रभागोंदिक  
देशोंविषे उगलनेसैं विनाहि जिसकी दृष्टि स्थिरहै औ  
रेचकादिक प्राणायामके अभ्याससैं विनाहि जिसके प्राणों-

वायुका निरोधहै तथा षट्चक्रादिक अवलंबनोसंचिना-  
हि जिसका चित्त एकाग्र है सोई पुरुष योगी औ सर्वका  
गुरु तथा सेवनेयोग्य है इति ॥ तथा तिस शांभवीमुद्राका  
लक्षणभी तहांहि महादेवजीने कथन किया है “अंतर्लक्ष्यं  
बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता ॥ सा भवेच्छांभवी मुद्रा सर्व-  
तंत्रेषु गोपिता”

अर्थ० चित्तवृत्तिके लक्ष्यकूं शरीरके अभ्यंतरकरके अर्द्ध-  
खुलेहुये नेत्रोंकी दृष्टिकूं जो नासिकाके अग्रभागविषे एकटक  
स्थापतकरके स्थित होना है तिसका नाम शांभवीमुद्रा है सो  
यह मुद्रा सर्वशास्त्रोंमें गुप्त है इति ॥ तथा मंत्रयोगका लक्ष-  
णभी योगबीजविषे महादेवजीनेहि कथन किया है,

“हकारेण बहिर्याति सकारेण पुनर्यिशेत्” ।

हंसहंसेति मंत्रोयं जीवो जपति सर्वदा ॥

गुरुवाक्यात्सुपुद्गायां विपरीतो श्रयेज्जपः ।

सोहंसोहमिति प्रामो मंत्रयोगः स उच्यते ॥

अर्थ० हे प्रार्थन्ति हकारकरके यह श्वासबहिर्निर्गमन करे  
है औं सकारकरके पुनः अभ्यंतर श्रवेश करे है इसप्रकारसैं  
हंसहंस इसमंत्रका सर्वदाहि यह जीव जप करे है परंतु जानता-  
नहि सो गुरुमुखद्वारा तिसकी विधिके जाननेसैं सुपुद्गानाडी-

विषे हंसहंसके उटटानेसें सोहंसोहं जप होवे है तिसका नाम मंत्रयोग है इति ॥ सो जपकी संख्याभी महादेवजीनेहि कथन करीहै,

“एकविंशतिसहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि ।

प्रत्यहं जपते प्राणी हंस इत्यक्षरद्वयम्” ॥

अर्थ० हे ईश्वरि एकविंशतिसहस्र औ षट्सौ अधिक हंस-मंत्रका नित्यं प्रति सर्वप्राणी जप करते हैं इति० ॥ सो तिस जपका आधारादिकचक्रोंमें स्थित जो गणेशादिक देवता हैं तिनकुं नित्यप्रति क्रमसें अर्पण करणा चाहिये ॥ सो अर्पणकी विधि गरुडपुराणमें विष्णुभगवान् ने गरुडके प्रति कथन करी है सो संक्षेपसें यहां दिखावे हैं,

“आधारं तु चतुर्दशानलसमं वासांतवर्णाश्रयं ।

स्वाधिष्ठानमपि प्रभाकरसमं बालांतपद्मपत्रकम् ॥

रक्ताभं मणिपूरकं दशदलं डायं फक्कारांतकं ।

पत्रैर्द्वादशभिस्त्वनाहतपुरं हैमं कठांतावृतम् ॥

पत्रैः सस्पर्षोडशैः शशधरज्योतिर्विशुद्धांयुजं ।

हंसैत्यक्षरयुग्मकं द्वयदलं रक्ताभमात्रांयुजम् ॥

तस्मादूर्ध्वगतं प्रभासितमिदं पद्मं सहस्रच्छदं ।

सत्यानन्दमयं सदाचिन्मयं ज्योतिर्मयं शाश्वतम् ॥  
 गणेशं च विधिं विष्णुं शिवं जीवं गुरुं ततः ।  
 व्यापकं च परं ब्रह्म क्रमाचक्रेषु चिंतयेत् ॥  
 षट्शतं गणनाथाय पदसहस्रं नु वेधसे ।  
 पदसहस्रं च हरये षट्सहस्रं हराय च ॥  
 जीवात्मने सहस्रं च सहस्रं गुरवे तथा ।  
 चिदात्मने सहस्रं च जपसंख्यां निवेदयेत् ॥”

अर्थ० प्रथम गुदा औ लिङ्गके मध्यदेशमें बंकारसे लेकर सकारपर्यंत च्यारि अक्षरोंकरके अंकितभये च्यारि दलोंकरके युक्त औ अग्निके वर्णसमान आधारचक्र है ॥ तथा दूसरा लिङ्गके उपर गुह्यदेशविषे बंकारसे लेकर सकारपर्यंत षट् अक्षरोंकरके अंकितभये षट् दलोंकरके युक्त औ सूर्यके वर्णसमान स्वाधिष्ठानचक्र है ॥ तथा तीसरा नाभिदेशविषे डंकारसे लेकर फकारपर्यंत दश अक्षरोंकरके अंकितभये दशदलोंकरके युक्त औ रक्तवर्ण मणिपूरचक्र है तथा हृदयदेशविषे कंकारसे लेकर उकारपर्यंत द्वादश अक्षरोंकरके अंकितभये द्वादशदलोंकरके युक्त औ सुवर्णके वर्णसमान अनाहतचक्र है ॥

१ वं शं पं सं. २ बं भं मं यं रं लं. ३ ङं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं.  
 ४ कं खं गं घं ङं चं छं जं झं अं टं ठं.

तथा कंठदेशमें असें लेकर अः पर्यंत षोडशस्वरोंकरके अंकित-  
 तमये षोडशदलोंकरके युक्त औ चंद्रमाके वर्णसमान विशुद्ध-  
 चक्र है ॥ तथा भ्रुवोंके मध्यदेशविषे । हंकार औ क्षकार इ-  
 न दोनों अक्षरोंकरके अंकितमये दोदलोंकरके युक्त औ रक्त-  
 वर्ण आज्ञाचक्र है ॥ तथा निसके ऊपर दशमद्वारविषे निरंत-  
 रहि सच्चिदानंद ज्योतिःस्वरूप सहस्रदलोंकरके युक्त शुद्धरक्त-  
 दिकवर्णकेसमान ब्रह्मरंध्रचक्र है ॥ सो तिनमें प्रथमचक्रमें  
 गणेश औ दूसरेविषे ब्रह्मा तथा तीसरेमें विष्णु औ चतुर्थविषे  
 महादेव तथा पंचममें जीवात्मा औ षष्ठेविषे गुरु तथा सप्तममें  
 व्यापकपरब्रह्म इसक्रमसें सहित शक्ति औ बाहनोंके सप्तच-  
 क्रोंविषे सप्तदेवताका पुष्पचंदनादि समर्पणपूर्वक एकैकचित्त-  
 होयके ध्यानकरके पश्चात् पूर्वोक्त एकविंशतिसहस्र औ पदसौ  
 जपसें प्रथम पदसौ ६०० गणेशजीकूं समर्पण करणा चाहिये  
 औ पुना पदसहस्र ६००० ब्रह्माकूं अर्पण करणा चाहिये पुना  
 पदसहस्र ६००० विष्णूकूं अर्पण करणा चाहिये तथा पदसहस्र  
 ६००० महादेवजीकूं अर्पण करणा चाहिये तथा एकसहस्र  
 १००० जीवात्माकूं अर्पण करणा चाहिये पुना एकसहस्र १०००  
 गुरुकूं समर्पण करणा चाहिये तथा एकसहस्र १००० परब्रह्माकूं

१ अं आं इं ईं उं ऊं कं कं लं लं एं ऐं ओं औं अं  
 अः २ हं क्षं,

समर्पण करणा चाहिये इसप्रकारसे नित्यं प्रति एकाग्रचित्तसे, समर्पण करणेहारे ब्रह्मचर्यादिक साधनसंपन्न सार्धकपुरुषकूं एक-कोटी १००००००० निर्विघ्न जपके संपूर्ण भयेते अनंतर ईश्वरके अनुग्रहसे दशप्रकारका नाद श्रवणमें आवेहै यह वार्ता अथ-र्ववेदकी हंसउपनिषत्मेंभी कथन करीहै “स एव जपकोट्या नादमनुभवति” अर्थ० सो साधक पुरुष हंसमंत्रके कोटी जप समर्पण करणेतें अनंतर नादका अनुभव करेहै इति ॥ सो तिस नादके लक्षणभी तहांहि कथन कियेहैं “नादो दशविधो जायते विणिति प्रथमः विंविणोति द्वितीयः घंटानादस्तृतीयः शंखनादश्चतुर्थः पंचमस्तंत्रीनादः षष्ठस्तालनादः सप्तमो वेणुनादः अष्टमो मृदङ्गनादः नवमो भेरीनादः दशमो मेघनादः नवमं परित्यज्य दशममेवाभ्यसेत्” अर्थ० प्रथम तो विणी दूसरा विंविणी तीसरा घंटावत् चतुर्थ शंखवत् पंचम वीणावत् षष्ठ तालवत् सप्तम वंसीवत् अष्टम मृदंगवत् नवम भेरीवत् दशम मेघवत् इस प्रकारसे हंसमंत्रके साधक पुरुषकूं उक्त संख्याके पूर्ण होतेतें अनंतर दश प्रकारका नाद श्रवणमें आवेहै तिनमेंसे नव प्रकारके नादका परित्याग करके ब्रह्मभावकी प्रातिका साधनभूत जो दशम मेघनाद है तिसकाहि सर्वदा मुमुक्षुपुरुषकूं अभ्यास करणा योग्यहै इति ॥ तथा तिस दशप्रकारके नादके फलभी तहांहि कथन कियेहैं ॥

“प्रथमे चिचिणीगात्रं द्वितीये गात्रभंजनम् ।  
 तृतीये स्वेदनं याति चतुर्थे कंपते शिरः ॥  
 पंचमे स्रवते तालु पष्ठेऽमृतनिषेवणम् ।  
 सप्तमे गृढविज्ञानं परा वाचा तथाष्टमे ॥  
 अदृश्यं नवमे देहं दिव्यं नभस्तथा मलम् ।  
 दशमे परमं ब्रह्म भवेद्ब्रह्मात्मसन्निधी ॥

तस्मिन् मनो विलीयते मनसि संकल्पविकल्पे दग्धे पुण्यपा-  
 पे सदाशिवः शक्त्यात्मा सर्वत्रावस्थितः स्वयंज्योतिः शुद्धो-  
 शुद्धो नित्यो निरंजनः प्रकाशत इति”

अर्थ० प्रथम नादके श्रवणकालमें सर्व अंगोंविषे, चिचि-  
 णीको न्याई शब्दकी प्रतीति होवेहै औ दूसरेमें शरीरके अंग  
 टूटनेकी न्याई होवेहै तथा तीसरेविषे चित्तमें खिन्नता होवेहै औ  
 चतुर्थमें शिर कंपताहै तथा पंचमविषे तालु श्रवताहै औ पष्ठमें  
 अमृतका पान होवेहै तथा सप्तममें गृह्यपदार्थोंका ज्ञान होवेहै  
 औ अष्टमविषे परावाचाकी प्राप्ति होवेहै तथा नवममें दिव्यद-  
 टि औ अंतर्ज्ञानकी शक्ति होवेहै औ दशममें तो परब्रह्मस्वरूप-  
 हि होवेहै ॥ इस प्रकार ब्रह्मके साथ एकीभाय होनेतें मनका  
 प्रित्य होवेहै मनके तीन भयेनं सर्व संकल्पविकल्पोंका क्षय  
 होवेहै संकल्पविरूपोंके क्षय होनेनं जन्मजन्मान्तरोंविषे मं-  
 चित्त किये हुये पुण्यपापोंका नाश होवेहै पुण्यपापोंके नाश



होनेतें अनंतर साधक पुरुष शिवशक्तिस्वरूप भया सर्वव्यापक स्वयंज्योति शुद्ध बुद्ध नित्य निरंजन ब्रह्मरूप होयकरके प्रकाशताहै अर्थात् कैवल्यमोक्षपदविषे स्थित होवेहै इति ॥ सो यह मंत्रयोग गुरुमुखसँ ग्रहण कियेविना सिद्धिका हेतु नहि होवेहै यातें साधक पुरुषोंकूं गुरुमुखद्वाराहि इसका अभ्यास करणा योग्य है इति ॥ तथा राजयोगका लक्षण योगसूत्रोंमें पतंजलिने कथन कियाहै “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः” अर्थ० पांच प्रकारकी चित्तवृत्तियोंका जो निरोध करणा है तिसका नाम राजयोग है इति ॥ सो तिन वृत्तियोंके नाम औ लक्षणभी पतंजलिनेहि कथन कियेहै “प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः” अर्थ० प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति, इस भेदसँ पांच प्रकारकी चित्तकी वृत्तियाँ हैं इति ॥ तिनमें “प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि” अर्थ० प्रत्यक्षप्रमाण, अनुमानप्रमाण, आगमप्रमाण, इस भेदसँ प्रमाण तीन प्रकारके हैं ॥ तिनमें विषय औ इन्द्रियोंके क्षणिकपसँ घटपटादिक विषयोंका जो विशेषरूपकरके ज्ञान है तिसकूं प्रत्यक्षप्रमाण कहतेहैं ॥ औ धूमादिक टिंगकरके दूरदेशस्व वद्वि आदिक पदार्थोंका सामान्यसँ जो ज्ञान है तिसका नाम अनुमान प्रमाण है ॥ तथा यथार्थवक्ता पुरुषका जो वाक्य है सो आगमप्रमाण कहियेहै ॥ औ अन्य नेया-

विकादिक शास्त्रोंमें जो कहि अधिक वा न्यून प्रमाण मानेहैं सो इन तीनोंके अंतर्भूतहि जान लेने इति ॥ तथा “विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम्” अर्थ० रजतादिकोंसे भिन्न शुक्ति आदिक पदार्थोंमें जो रजतादिकोंका ज्ञान है तिसका नाम विपर्यय है इति ॥ तथा “शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः” अर्थ० शब्दजन्य ज्ञानका अनुपाती होवे औ वस्तुसँ शून्य होवे तिसका नाम विकल्प है अर्थात् अविद्यमान भेदबाले पदार्थविषे जो भेदका आरोपण करके कथनहै सो विकल्प कहियेहै ॥ जैसे “पुरुषका चेतनपणा स्वरूप है” तो यहाँ जब चेतनपणाहि पुरुष हुया तो पुरुषका चेतनपणा स्वरूप है यह कथन कैसे संभवहै परंतु इस प्रकारके कथनसँ पुरुष औ चेतनपणेका भेदसँ ज्ञान होवेहै जैसे देवदत्तकी गौ इस कथनसँ देवदत्त औ गौका भेदसँ ज्ञान होवेहै इति ॥ तथा “अभावप्रत्ययालंबनावृत्तिर्निद्रा” अर्थ० सर्व बाह्य विषयोंके आकरोंसँ रहित होयकर तमोगुण करके युक्त जो चित्तवृत्तिकी स्थिति है तिसका नाम निद्रा है ॥ निद्रासँ जागृकरके पुरुष कहताहैं आज मैं बहुत सुखसँ शयन करता भयाहुं सो इस प्रकारकी स्मृति विनासुखके अनुभवसँ संभव नहि यातें निद्राभी एक प्रकारकी चित्तकी वृत्तिहि है ॥ तथा “अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः” अर्थ० प्रत्यक्षादिक

प्रमाणकरके अनुभव किये हुये पदार्थका जो अन्यकालविषे संस्कारद्वारा स्मरण होवेहै तिसका नाम स्मृति है ॥ सो इन पांच वृत्तियोंविषेहि सर्व चित्तकी वृत्तियोंका अंतर्भाव है इति ॥ सो “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः” इस पूर्वोक्त सूत्रविषे सर्व वृत्तियोंका ग्रहण नहि कियाहै किंतु सामान्यसँ चित्तवृत्तियोंके निरोधकं योगरूपता कथन करीहै यातँ एकाग्रवृत्तिकरके युक्त जो संप्रज्ञातसमाधि है सोभी योगहि कहियेहै औ जिसमें सर्व वृत्तियोंका निरोध होवेहै सो असंप्रज्ञात कहियेहै इस प्रकारसँ संप्रज्ञात औ असंप्रज्ञात जो दो प्रकारकी समाधि है तिसका नाम राजयोग है । यह वार्ता सिद्ध भयी औ जो प्रत्याहार धारणा ध्यानादिक राजयोगके अवांतर भेद हैं सो आगे निरूपण करेंगे ॥ सो पूर्वोक्त “हठयोग” लययोग “मंत्रयोग” इन तीनोंका इस राजयोगकेविषेहि अंतर्भाव होवेहै ॥ काहेतँ तिनमें प्राण औ अपानकी एकतारूप जो हठ योग है सो राजयोगसँभी चित्तकी वृत्तियोंके निरोध होनेतँ प्राणोंका स्वतेहि निरोध होय जावेहै जिस प्रकारसँ मनके निरोध होनेतँ स्वतेहि प्राणोंका निरोध होवेहै सो वार्ता आगे पतुर्दश श्लोककी टीकाविषे विस्तारसँ कथन करेंगे ॥ औ जो आसनादिक हठयोगके अवांतर भेद हैं सो तो प्रत्यक्षहि राजयोगके साथ मिलते हैं यातँ हठयोगका राज-

योगविषेहि अंतर्भाव है इति ॥ तथा स्वात्मा राम्यो-  
 गीनेभी हठयोगप्रदीपिकाविषे कहाहै “पीठानि कुंभका-  
 श्रित्रा दिव्यानि करणानि च ॥ सर्वाण्यपि हठाभ्यासे रा-  
 जयोगफलावधि” अर्थ० यावत्मात्र हठयोगके पद्मादिक आ-  
 सेन औ सूर्यभेदनादिक विचित्र कुंभक तथा नानाप्रकारकी  
 खेचरी आदिक दिव्य मुद्रा हैं तिन सर्वका राजयोगकी  
 प्राप्तिहि फल है इति ॥ तथा शांभवी मुद्राके अभ्यासपूर्वक  
 एकवारहि चित्तका निरोधरूप जो लय योग है तिसकाभी  
 राजयोगकेविषे अंतर्भाव है । काहेतें राजयोगरूप असंप्रज्ञात-  
 समाधिकालविषे सर्व वृत्तियोंके निरोध होनेतें स्वतेहि चित्तका  
 लय होवेहै इति ॥ तथा हंसमंत्रके चिरकाल अनुष्ठान करनेसें  
 नादके श्रवणद्वारा चित्तके विलयका हेतुभूत जो मंत्रयोग है  
 तिसकाभी राजयोगविषेहि समावेश है काहेतें संप्रज्ञातसमा-  
 धिविषेभी प्राणकेचिरकाल निरोध होनेतें नादका श्रवण  
 होवेहै यातें तिसके श्रवणद्वारा तहांभी चित्तका विलय हो-  
 वेहै ॥ तथा अन्य जो क्रियायोग, उत्पत्तियोग, औषधि-  
 योग, इत्यादिक योग हैं तिन सर्वकाभी राजयोगविषेहि अं-  
 तर्भाव है काहेतें तिनमें “तपःस्वाध्यायेश्वरभणियानानि  
 क्रियायोगः” अर्थ० अनशनादिक तप करणा वेदाध्ययन  
 करणा ईश्वरका आराधन करणा यह क्रियायोग है सो इस

कातो वक्ष्यमाण राजयोगके यमनियमरूप अंगोंमेंहि अंतर्भाव है ॥ औ उत्पत्तियोग व्यास, वसिष्ठ, सनत्कुमार, वामदेव, नारद, कपिलदेव, दत्तात्रेयादिकोंकं हुयाहै अर्थात् सो जन्मसँहि योगी हुयेहैं सो तिस उत्पत्तियोगकीभी पूर्वजन्मविषे अनुष्ठान किये राजयोगके प्रभावसँहि प्राप्ति होवे है यातें तिसकाभी राजयोगविषेहि अंतर्भाव है ॥ तथा सिद्ध भये पारदादिक दिव्य औपधिके भक्षण करनेतेंभी योग सिद्धिकी प्राप्ति होवेहै सोभी पूर्वजन्मकृत राजयोगकाहि फल है यातें तिसकाभी राजयोगविषेहि समावेश है ॥ इस प्रकारसें सर्व योगोंका राजा जो राजयोग है तिसके अर्थहि साधक पुरुषकं प्रयत्न करणा योग्यहै । यह वार्ता अमनस्कखंडमें महादेवजीनेभी कथन करीहै—

“राजत्वात् सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः”

राजंतं क्षिप्यमानं तं परमात्मानमव्ययम् ।

प्रापयेदेहिनां यस्तु राजयोगः स कीर्तितः ॥

अर्थ ० हठयोग लययोगादिक सर्व योगोंका राजा होनेतें इसका नाम राजयोग है तथा “राजंतं” कहिये स्वयंप्रकाश औ अग्निनाशी परमात्माकी साधक पुरुषकं प्राप्ति करेहै यातेंभी इसकं राजयोग कहतेहैं इति ॥ ७ ॥ इस प्रकार सर्व योगों-

सैं राजयोगकी अधिकता निरूपण करके 'अव जो तिसके यम नियमादिक अवांतर भेदहैं तिनका निरूपण करेहैं ॥

वंशस्थं वृत्तम्.

जगुस्तदङ्गाष्टकमुत्तमाशया  
यमादिसंज्ञं यमिवर्यसेवितम् ॥  
समासतस्तस्य फलं च लक्षणं.  
वदामि वृद्धर्षिमतानुरोधतः ॥ ८. ॥

जगुरिति ॥ तिस राजयोगके परंपरासैं योगी जनोकरके अनुष्ठित किये हुये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान, समाधि, इस भेदसैं अष्ट अंग कपि-लोकोंने कथन कियेहैं ॥ तथा पतंजलिनेभी योगसूत्रोंमें कहाहै "यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टा-  
वंगानि" इस सूत्रका अर्थ ऊपर कहे अर्थके अंतर्भूतहि है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै "यमश्च निष्प्रश्नश्च आसनं च तथैव च ॥ प्राणायामस्तथा गार्गि प्रत्याहारश्च धारणा ॥ ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि वरानने" अर्थ० हे सुंदर मुखवाठी गार्गि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, इस भेदसैं योगके अष्ट

मंग हैं इति ॥ औ “प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ  
धारणा ॥ तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते”

अर्थ० प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क समा-  
धि, इस भेदसे योगके षड् अंग हैं इति ॥ इस अमृतविंदुउप-  
निषत्के वाक्यमें जो योगके षड् अंग कथन किये हैं सो दूसरे  
अंगोंकेभी उपलक्षण जान लेने नहि तो उक्त सूत्र औ याज्ञ-  
वल्क्यके वाक्यसाथ विरोध होवेगा ॥ सो तिन अष्टप्रकारके  
अंगोंके जो स्वरूप हैं औ जो तिनके अनुष्ठान करनेमें फल  
होवे हैं औ चकारसें जो तिनके अनुष्ठानमें हेतु हैं सो पतंजलि,  
याज्ञवल्क्यदिक वृद्ध ऋषियोंके मतके अनुसार ग्रंथकार सं-  
क्षेपसें यही निरूपण करे हैं इति ॥८॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा करके  
अब योगका प्रथम अंग जो यम है तिसका लक्षण कथन करें हैं ॥

वंशस्थं वृत्तम्.

अहिंसनं सत्यमचौर्यमार्जवं

दममायृतिश्शौचंमुपस्थनिग्रहः ॥

१ यद्यपि मूलश्लोकोंमें हेतु स्पष्टकरके नहि दिखाये हैं तथापि  
पूर्वयोगके अंगोंके उत्तरउत्तर अंगोंमें हेतुता जानलेनी, औ टीकामें  
तो कचिन् कचिन् दिखायेभी है,

मिताशनं दीनजनानुकंपनं

यमा दशैते मुनिवर्यसंमताः ॥ ९ ॥

अहिंसनमिति ॥ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, आर्जव, क्षमा, धैर्य, शौच, ब्रह्मचर्य, मिताहार, दीनजनोपर दया, इस भेदसे श्रेष्ठ मुनिलोकोंने दश प्रकारके यम माने हैं ॥ तिनमें मन वाणी और शरीरकरके कदाचित् किसी प्रकारसे जो किसी प्राणीकुंभी क्लेश नहि उपजावना है तिसका नाम अहिंसा है ॥ यह धार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करी है "कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ अक्लेशजननं प्रोक्तं न हिंसास्वेतुः श्लोभिः"

अर्थ० सर्वदाहि सर्व प्राणियोंकुं जो मन चचन और शरीरकरके क्लेशकी उत्पत्ति नहि करणी है तिसका नाम अहिंसा है इति ॥ सर्व योगके अंगोंके अनुष्ठानमें मूढभूत होनेमें यहां अहिंसाका प्रथम ग्रहण किया है ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कहा है "यथा नागपदेन्यानि पदानि पद्मा-मिनाम् ॥ सर्वाण्येवापि धीयन्ते पदजातानि काञ्चरे ॥ एवं सर्वमहिंसायां धर्माधर्मपि धीयते" अर्थ० जिस प्रकार हस्तीके पादविषे पाद करके घटनेहारे सर्व प्राणियोंके पाद अंतर्भूत होये हैं तैसेहि यज्ञ तप दानादिक सर्वहि धर्म और अधर्म अ-



अंग हैं इति ॥ औ "प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा ॥ तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते"

अर्थ० प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क समाधि, इस भेदसे योगके षट् अंग हैं इति ॥ इस अमृतविंदुउपनिषत्के वाक्यमें जो योगके षट् अंग कथन किये हैं सो दूसरे अंगोंकेभी उपलक्षण जान लेने नहि तो उक्त सूत्र औ याज्ञवल्क्यके वाक्यसाथ विरोध होवेगा ॥ सो तिन अष्टप्रकारके अंगोंके जो स्वरूप हैं औ जो तिनके अनुष्ठान करनेमें फल होवे हैं औ चकारसे जो तिनके अनुष्ठानमें हेतु हैं सो पतंजलि, याज्ञवल्क्यदिक वृद्ध ऋषियोंके मतके अनुसार ग्रंथकार संक्षेपसे यही निरूपण करे हैं इति ॥८॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा करके अब योगका प्रथम अंग जो यम है तिसका लक्षण कथन करे हैं ॥

वंशस्थं वृत्तम्.

अहिंसनं सत्यमचौर्यमार्जवं

दममाधृतिश्शौचंमुपस्थनिग्रहः ॥

१ यद्यपि मूलश्लोकोंमें हेतु स्पष्टकरके नहि दिखाये हैं तथापि पूर्वयोगके अंगोंके उत्तरउत्तर अंगोंमें हेतुता जानलेनी, औ टीकामें तो कचित् कचित् दिखाये भी है,

मिताशनं दीनजनानुकंपनं

यमा दशैते मुनिवर्यसंमताः ॥ ९ ॥

अहिंसनमिति ॥ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, आर्जव, क्षमा, धैर्य, शौच, ब्रह्मचर्य, मिताहार, दीनजनोपर दया, इस भेदसे श्रेष्ठ. मुनिछोकोने दश प्रकारके मम माने हैं ॥ तिनमें मन वाणी औ शरीरकरके कदाचित् किसी प्रकारसे जो किसी प्राणीकुं-भी क्लेश नहि उपजावना है तिसका नाम अहिंसा है ॥ यह बात पाञ्चवल्क्यसंहितामेंभी कथन करी है “कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ अक्लेशजननं प्रोक्तं न हिंसात्वेन. योगिभिः”

अर्थ० सर्वदाहि सर्व प्राणियोंकुं जो मन वचन औ शरीरकरके क्लेशकी उत्पत्ति नहि करणी है तिसका नाम अहिंसा है इति ॥ सर्व योगके अंगोंके अनुष्ठानमें मूलभूत होनेसे यहां अहिंसाका प्रथम ग्रहण किया है ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्यविषेभी कहा है “यथा नागपदेन्यानि पदानि पदगामिनाम् ॥ सर्वाण्येवापि धीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे ॥ एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्यमपि धीयते” अर्थ० जिस प्रकार हस्तीके पादविषे पाद करके चलनेहारे सर्व प्राणियोंके पाद अंतर्भूत होवैहैं तैसेहि यज्ञ तप दानादिक सर्वहि धर्म औ अर्थ अ-

हिंसाकेविषे अंतर्भूत होवेहैं इति ॥ तथा जैसे देखा होवे अथवा अनुमानसे निश्चय किया होवे तथा आप्त पुरुषके मुखसे श्रवण किया होवे औ सर्व भूतोंके हितका कारण होवे ते साहि जो भाषण करना है तिसका नाम सत्य है ॥ यह ज्ञाता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै ॥ “सत्यं भूतहितं प्रोक्तं नायथार्थाभिभाषणम्” अर्थ० सर्व भूतोंका हितकारी औ यथार्थ जो भाषण करना है तिसका नाम सत्य है इति ॥ तथा मनुस्मृतिके चतुर्थाध्यायविषेभी कहाहै “ सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान् ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ॥ प्रियं च नानृतं ब्रूयादिति धर्मः सनातनः” अर्थ० सत्य होवे औ प्रिय होवे सो वाक्य भाषण करेना चाहिये जो सत्य होवे औ प्रिय नहि होवे सो नहि करना चाहिये अर्थात् तहां मौनहि करना उचित है औ जो सत्य होवे औ प्रियभी होवे सोई वाक्य भाषण करना चाहिये यह पुरातन धर्म है इति ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कहाहै “ अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेत् व्याहृतं तद्वितीयम् ॥ धर्मं वदेत् व्याहृतं तत्तृतीयं प्रियं वदेत् व्याहृतं तच्चतुर्थम् ” अर्थ० प्रथम तो भाषण करणेते मौन धारण करना उत्तम है औ मौनसे सत्य भाषण करना श्रेष्ठ है तथा केवल सत्य भाषण करणेसे धर्मसहित सत्य भाषण करना उत्तम है तिसतेभी सत्य औ प्रिय भा-

पण करणा अति श्रेष्ठ है इति ॥ किंच यह सत्य भाषण-क-  
 रणाहि परम धर्म है यह वार्ताभी तहांहि देवतोंकेमति हंसप-  
 क्षीने कथन करीहै “ सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौ-  
 रिव ॥ न पावनतमं किंचित् सत्यादुध्यगमं क्वचित् ” अर्थ०  
 हैं देवता सत्यहि स्वर्गविषे आरोहण करणेकी सीढ़ी है औ  
 जैसे घोर समुद्रके पार करणेहारि नौका होवेहै तैसेहि सं-  
 साररूप घोर समुद्रके पार करणेमें सत्यरूप नौका है तथा  
 मैंने सर्वहि धर्मोंका मंथन किया परंतु सत्यसे परे दूसरा कोई  
 पवित्र नहि देखनेमें आया इति ॥ तथा तहांहि अन्य-स्थल-  
 विषेभी कहाहै “अश्वमेधसहस्राणि सत्यं च तुलया धृताम् ॥ अ-  
 श्वमेधसहस्राणां सत्यमेव विशिष्यते” अर्थ० सहस्र अश्वमेधयज्ञ  
 औ सत्य यह दोनों तुलामें धरकर देखे तो सहस्रअश्वमेधोंसें स-  
 त्यहि विशेष होता भया इति ॥ तथा अथर्ववेदकी मुंडकउपनिष-  
 दमेंभी कहाहै “सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पंथा विततो दे-  
 वयानः” अर्थ० सर्वत्र सत्यकाहि जय होवंहै असत्यका नहि  
 औ सत्यकरकेहि उपासक लोक, देवयानमार्गविषे गमन कर-  
 तेहैं इति ॥ तथा सत्यविना आत्माका साक्षात्कारभी नहि  
 होवेहै, यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै “ सत्येन लभ्यस्त-  
 पसा ह्येष आत्मा ”

अर्थ० सत्यरूप तपकरकेहि इस आत्माकी प्राप्ति होवेहै

इति॥ किंच सत्यहि परम तप है, यह वातां महाभारतक भा-  
 क्षपर्वविषेभी कथन करीहै “ नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति  
 सत्यसमं तपः ” अर्थ० विद्याके समान दूसरा नेत्र नहि  
 है औ सत्यके समान दूसरा तप नहिहै इति ॥ तथा भर्तृ  
 हरिनेभी कहाहै “ सत्यं चेत्तपसा च किं ” अर्थ० हे  
 पुरुष जो तू सर्वदाहि सत्य भाषण करताहै तो तप कर-  
 णेसे क्या मंथोजन है अर्थात् सत्यहि परमतप है इति ॥ सो  
 यह सत्य भाषण किया हुआ जो किसी प्राणीके क्लेशका हेतु  
 होवे तो असत्यके समानहि होवेहै, यह वातां योगभाष्यविषे  
 व्यासजीनेभी कथन करीहै “ यदि चैवमप्यभिधीयमाना  
 भूतोपघातपरैव स्यान् सत्यं भवेत् पापमेव भवेत्तेन तस्मात् प-  
 रीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात् ”

अर्थ० जो वाणी सत्य भाषण करी हुयीभी किसी प्राणी-  
 के क्लेशका हेतु होवे तो सो सत्य नहि होवेहै किंतु तिसके  
 भाषण करनेसे वक्ता पुरुषकूं पापकीहि उत्पत्ति होवेहै यातें  
 विवेकी पुरुषकूं सर्वत्र विचार करके सर्व प्राणियोंके हित क-  
 रणेहारी औ सत्य वाणीहि भाषण करणी योग्य है इति ॥  
 तथा कपट करके औ स्वामीकी अनुज्ञासे विना जो किसीके  
 पदार्थका ग्रहण नहि करणाहै तिसका नाम अस्तेय है यह  
 वातां याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै

“कर्मणा मनसा वाचा परद्रव्येषु निस्पृहा ।

अस्तेयमिति संप्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः”

अर्थ० मन वाणी और शरीर करके पराये द्रव्योंविषे जो निस्पृह है तिसकुं तत्त्वदर्शि ऋषि लोक अस्तेय कहतेहैं इति ॥  
तथा सर्व भूतोंमें जो मन वाणी और शरीरकरके नम्रभाव है तिसका नाम आर्जव है, यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै

“विहितेषु तदन्येषु मनोवाक्कायकर्मणाम् ।

प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा एकरूपत्वमार्जवम्” ॥

अर्थ० उक्त जो अहिंसा आदिक कर्म हैं और वक्ष्यमाण जो ब्रह्मचर्यादिक कर्म हैं तिनकी सिद्धि असिद्धिमें मन वाणी शरीर करके जो एकरूपता है अर्थात् सत्य भाषणादिजन्य सिद्धिविषे अभिमानकुं नहि प्राप्त होना और असिद्धिविषे खेदकुं नहि प्राप्त होना तिसका नाम आर्जव है ॥ तथा दुष्ट पुरुषोंके ताड़न अपमान और कटु वचनोंका जो सहन करना है तिसका नाम क्षमा है, यह वार्ताभी तहांहि कथन करतेहैं

“श्रियाश्रियेषु सर्वेषु समत्वं यच्छरीरिणाम् ।

क्षमा सेवेति विद्वद्भिर्गदिता वेदवादिभिः” ॥

अर्थ० मित्र तथा अप्रिय भाषण करणेहारे सर्व पुरुषोंमें जो राग द्वेषतें रहितपणा है तिसकुं वेदवादी मुनिलोक क्षमा कथन

करते हैं इति ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वविषे भी कहा है “पर-  
 रश्चेदेनमतिवादवाणैर्भृशं विद्वचेच्छम एवेह कार्यः ॥ संरोष्य-  
 माणः प्रतिहृष्यते यः स आदत्ते सुकृतं वै परस्य” अर्थ० इस  
 साधककूं जो कोई पुरुष दुर्वचनरूप बाणोंकरके अत्यंतभी  
 वेधन करे तो क्षमाहि करणा चाहिये काहेतें जो पुरुष अन्य  
 पुरुषोंकरके पीडन किया हुआ उलटा हर्षकूं प्राप्त होवेहै सो  
 तिन पीडन करनेहारे जनोके सर्व सुकृतोंका ग्रहण करलेवेहै  
 इति ॥ तथा मनुस्मृतिमें भी कहा है “सुखं ह्यधमतः शोते सुखं  
 च प्रतिबुद्धयते ॥ सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमंता विनश्यति”  
 अर्थ० अद्विष्टमानकूं प्राप्त भया पुरुष सुखसे शयन करेहै औ सु-  
 खसेहि जागताहै औ सुखसेहि पृथिवीविषे विचरता है परंतु  
 तिसके अपमान करनेहारा पुरुष धनपुत्रादिकोंके सहित  
 विनाशकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ यातें सर्वदा क्षमाहि करणी चा-  
 हिये । तथा सुभाषितरत्नभांडागारमें भी कहा है “क्षमाशस्त्रं  
 करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ॥ अतृणे पतितो बन्धिः स्व-  
 यमेवोपश्याम्यति” अर्थ० जिस पुरुषके हाथमें क्षमारूप शस्त्र  
 है निसका शत्रु-कथा करसकै हैं काहेतें जैसे तृणोंकरके रहित  
 देशविषे पतित भया अग्नि स्वतेहि शांत होवेहै तैसेहि क्षमा-  
 वान् पुरुषके शत्रुओंका क्रोध आपहि शांत होय जावेहै इति,  
 तथा बुद्धगौतमसंहितामें भी कहा है

“क्षमाहिंसा क्षमा धर्मः क्षमा चेन्द्रियनिग्रहः ।.

क्षमा दया क्षमा यज्ञः क्षमा धैर्यमुदाहृतम् ॥

क्षमावान् भामुयान् स्वर्गं क्षमावान् भामुयाद्यशः ।

क्षमावान् भामुयान्मोक्षं क्षमावांस्तीर्थमुच्यते” ॥

अर्थ० क्षमाहि अहिंसारूप है औ क्षमाहि परम धर्म है  
 तथा क्षमाहि इन्द्रियोंका निग्रहरूप है औ क्षमाहि दयारूप है  
 तथा क्षमाहि यज्ञ औ धैर्यरूप है तथा क्षमावान् पुरुषहि  
 स्वर्ग औ यशकूं प्राप्त होवेहै तथा क्षमावान्हि मोक्षकूं प्राप्त  
 होवेहै औ क्षमावान्हि तीर्थस्वरूप होवेहै इति ॥ किंच योगी  
 पुरुषकूं तो जानकरकेभी अपना अपमान करावना चाहिये  
 काहेतें लोकविषे बहुत सन्मान होनेतें योगका विनाश हो-  
 वेहै यह घाता अन्यस्मृतिमेंभी कहीहै “असन्मानाक्षपोवृद्धिः  
 सन्मानाक्षु तपःक्षयः ॥ अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौ-  
 रिव सीदति” अर्थ० योगी पुरुषका लोकविषे अपमान  
 होनेतें योगरूप तपकी वृद्धि होवेहै औ सन्मान पूजा होनेतें  
 तपका क्षय होवेहै काहेतें जैसे गोपाल घास तुणादिक देकर-  
 के गौका दुग्ध दोहन करतेवेहै तैसेहि संसारीलोकरूप गो-  
 पाळ तपस्वीरूप गौकूं अन्नवस्त्रादिकरूप घास तुण देकरके  
 तिसके तपरूप दुग्धका दोहन करतेवेहै इति ॥ यातें योगी



पुरुषकूं इस प्रकारसे विचरणा चाहिये जिसकरके ठाक सन्मान नहि करें, यह वार्ता अन्यस्मृतिमेंभी कथन करीहै

“तथाचेरत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ।

जना यथावमन्यरेन् गच्छेयुर्नैव संगतिम्” ॥

अर्थ० योगी पुरुषकूं मदिरापान परस्त्रीगमनादिकोंका परित्यागरूप जो सत्पुरुषोंका धर्म है तिसका अनतिक्रमण करके ऐसे कुवेपादिक धारण करके विचरणा चाहिये • जिससे कोई पुरुषभी तिसका सन्मान नहिं करे किंतु उलटा अपमान करें औ कोई तिसके समीप नहि आवे इति ॥ औ जो अपमान करणेहारे पुरुषोंपर क्रोध करेहै तिसके सर्वहि जपतपादिकोंका नाश होवेहै यह वार्ता महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कथन करीहै “यत्क्रोधनो यजति च यददाति यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति ॥ वैवस्वतस्तद्धरतेऽस्य सर्व मोघः श्रमो भवतिहि क्रोधनस्य” ॥ अर्थ० क्रोध करणेहारा पुरुष जो यज्ञ औ दान तथा तप अथवा होमादिक कर्म करेहै तिन सर्वके फलका यमराजा हरण करलेवेहै यातें क्रोधी पुरुषका यज्ञ तप आदिक सर्व परिश्रम व्यर्थहि होवेहै इति ॥ तथा अन्य स्मृतिमेंभी कहाहै “अपकारिणि कोपश्चेत् कोपे कोपः कथं न ते ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसह्य परिपंथिनि” अर्थ० हे मूढ़ पुरुष जो तुं थोड़ेसे अपकार करणेहारे पुरुषपर क्रोध करताहै

तो धर्म अर्थ काम मोक्ष इन च्यारि पुरुषार्थोंकी सिद्धिविषे  
 'महा' प्रतिबंधकरूप जो तेरा महान् अपकारी क्रोध है तिसपर  
 तुं काहेको क्रोध नहि करता इति ॥ यातें विवेकी पुरुषकूं सर्व-  
 वा क्षमाहि करणी योग्यहै ॥ तथा अनेकप्रकारके विघ्नोंके  
 होनेतेंभी जो अभ्यासका परित्याग नहि करणाहै तिसका  
 नाम धैर्य है यह बातों भर्तृहरिने नीतिशतकमेंभी कथन करी  
 है "आरभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता  
 विरमन्ति मध्याः ॥ विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यामानाः प्रारब्ध-  
 मुत्तमजना न परित्यजन्ति" अर्थ० जो पुरुष विघ्नोंके भयकरके  
 भयमसेहि अभ्यासका आरंभ नहि करेहैं सो अधम कहिये  
 है औ जो अभ्यासका आरंभकरके पुनः विघ्नोंकरके पीडित  
 भये परित्याग करेहैं सो मध्यम हैं तथा जो बारंवार विघ्नों-  
 करके परिपीडन किये हुयेभी अभ्यासका परित्याग नहि  
 करते सोई पुरुष उत्तम हैं इति ॥ तथा सुभाषितरत्नभांडा-  
 गारमेंभी कहाहै

“घटं घटं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं ।

छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवैशुकांडम् ॥

दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काचनं कांतवर्णं ।

न प्राणाति प्रकृतिविकृतिर्जायते सज्जनानाम् ॥

अर्थ० जैसे बारंवार संपर्पण किया हुआ जो चंदन सुगं-

धिक्कुं हि देवेहै औ-जैसे वारंवार छेदन किया हुआ भी इक्षुका  
 खंड स्वादुहि होवेहै तथा जैसे वारंवार दग्ध किया हुआ भी  
 कांचन सुंदररूप होवेहै तैसेहि वारंवार विघ्नोकरके पीडित  
 भये सज्जनोंका प्राणांतकालविषे भी स्वभाव विपर्यय नहि  
 होवेहै इति ॥ तथा शौचका लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन  
 कियाहै “शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं तथा ॥ मृज्जला-  
 भ्यां स्मृतं बाह्यं मनःशुद्धिस्तथांतरम् ॥” अर्थ० बाह्यशौच  
 औ आभ्यंतरशौच इस भेदसे शौच दो प्रकारका है तिनमें  
 मृत्तिका जलादिकोंकरके जो शरीरका मलक्षालन करना है  
 तिसका नाम बाह्यशौच है औ प्राणायामादिकोंकरके जो  
 मनको शुद्धि करणी है तिसका नाम आभ्यंतरशौच है इति ॥  
 औ “मनःशौचं कर्मशौचं कुलशौचं च भारत ॥ शरीरशौचं  
 वाक्शौचं शौचं पंचविधं स्मृतम्” अर्थ० मनका शौच, कर्मका  
 शौच, कुलका शौच, शरीरका शौच, वाचाका शौच, इस भेदसे  
 शौच पांच प्रकारका है इति ॥ इस बृद्धगोतमस्मृतिके वाक्य-  
 विषे जो पांच प्रकारका शौच निरूपण कियाहै तिसका उक्त-  
 शरीरशौच औ मनशौचकेविषेहि अंतर्भाव है ॥ तिनमें कुल-  
 शौचका तो शरीरशौचकेविषे अंतर्भाव है काहेतें जो कुलसे  
 ब्राह्मण होवे औ शरीरकरके सर्वदाहि अपवित्र रहे तो सो  
 ब्राह्मण नहि किंतु शूद्रके तुल्यहि होवेहै, यह वार्ता अन्यस्म-

तिमेंभी कथन करीहै” त्रिकाटस्नानहीनो भः संध्योपासन-  
वर्जितः ॥ स विप्रः शुद्धतुल्योहि सर्वकर्मवहिष्कृतः” अर्थ० जो  
ब्राह्मण त्रिकाटस्नान औ संध्याकी उपासनाकरके वर्जित है  
सो शुद्धके तुल्य होवेहै औ यज्ञादिक सर्व कर्मोंविषे अनधि-  
कारी होवेहै इति ॥ तथा कर्मशौच औ वाचाशौचका मनः-  
शौचकेविषे अंतर्भाव है काहेतें जो मनहि शुद्ध न हुया तो अ-  
न्य शुभकर्मोंसँ क्या होवेहै, यह बातों बृद्धगौतमसंहितामेंभी  
कथन करीहै

“त्रिर्दंडधारणं मौनं जटाधारणमुंडनम् ।

घल्कलाजिनसर्वांशो व्रतचर्याभिवेचनम् ॥००

अग्निहोत्रं वने वासः स्वाध्यायो ध्यानसंस्क्रिया ।

सर्वाण्येतानि वै मिथ्या यदि भावो न निर्मलः” ॥

अर्थ० त्रिर्दंड ग्रहण करणा मौन धारण करणा जटा  
धारण करणा शिरका मुंडन करावना घल्काठ अथवा मृग-  
चर्म पहरणा दिगंबर रहना व्रतोंका आचरण करणा ती-  
र्थोंविषे स्नान करणा अग्निहोत्र करणा वनविषे निवास  
करणा वेदाध्ययन करणा ध्यान करणा इत्यादिक जो शु-  
भकर्म हैं सो जिसें पुरुषका मन श्रद्धादिक गुणोंकरके नि-  
र्मल नहि है तिसके सर्वहि व्यर्थ होवेहैं इति ॥ तथा मनकी

शुद्धिबिना वाचाकी शुद्धिभी नहि संभवेहै काहेतें जिस पुरुषका मनहि अशुद्ध है तिसकी वाचा कैसे शुद्ध होवेगी, यह वार्ता श्रुतिमेंभी कथन करीहै “यद्धि मनसा ध्यायति तद्धि वाचा वदति” अर्थ० जो वार्ता प्रथम पुरुषके मनमें होवेहै सोई वाचाकरके कथन करेहै इति ॥ यानें कर्मशौच औ वाचाशौचका मनशौचकेविषेहि अंतर्भाव है ॥ तथा सर्वदाहि मन वाणी औ शरीरकरके खोसंगमका जो वर्जन करणहि तिसका नाम ब्रह्मचर्य है, यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै “कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते” अर्थ० शरीर मन औ वाणीकरके सर्व अवस्था औ सर्व कालविषे जो मैथुनका परित्याग करणा है तिसका नाम ब्रह्मचर्य है इति ॥ सो तिस मैथुनके अष्ट अंग हैं तिन सर्वके लक्षण दक्षसंहितामें कथन कियेहै “ब्रह्मचर्यं यदा रक्षेदृथा लक्षणं पृथक्”

“स्मरणं कीर्तनं केटिः प्रेक्षणं मुद्राभाषणम् ।

संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ।

एतन्मैथुनमष्टांगं भवदंति मनीषिणः ॥

न ध्यातव्यं न वक्तव्यं न कर्तव्यं कदाच न ।

एतैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो यतिर्भवति नेतरः ॥”

अर्थ० आका मनमें स्मरण करणा औ मुखसे कीर्तन करणा तथा तिसके साथ हासविहास करणा औ एकांतमें भाषण करना तथा तिसके भोगका मनविषे संकल्प करणा पुना भोगका निश्चय करणा तथा भोग करणा इस भेदसे मैथुनके अष्ट अंग बुद्धिमान् मुनि लोकोंने कथन किये हैं इन सर्वकरकेहि जो पुरुष रहित होवेहै सोई ब्रह्मचारी औ यति कहियेहै दूसरा नहि यातें साधक पुरुषकूं किसी काटविषेभी मैथुनका मनमें स्मरण औ मुखसे भाषण तथा शरीरकरके संपादन नहि करणा चाहिये इति ॥ तथा अन्यस्मृतिमेंभी कहाहै “न संभाषेत् स्त्रियं कांचित् पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ॥” कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येत् लिखितामपि” अर्थ० ब्रह्मचारी पुरुषकूं किसी स्त्रीके साथ संभाषण करणा नहि चाहिये औ जो कवी पूर्वकाटविषे किसी स्थलमें सुंदर स्त्री देखी होवे तो हृदयमें तिसका स्मरणभी नहि करणा चाहिये तथा परस्पर स्त्रियोंकी कथाभी नहि करणी चाहिये किंच स्त्रीकी चित्रित मूर्तिभी नहि देखनी चाहिये इति ॥ सो इस ब्रह्मचर्यकेबिना कदाचिन्भी योगकी सिद्धि नहि होयेहै, यह पातां अमृतसिद्धिनामक ग्रंथमेंभी कथन करोहै

असिद्धं हि विजानीयाप्तरमब्रह्मपारिणम् ।

जरामरणसंकीर्णं सयष्टेशममाश्रयम्” ॥

अर्थ० जो पुरुष ब्रह्मचारी नहि है सो कदाचित्भी सिद्धि कूं नहि प्राप्त होवे है यातें तिसकूं असिद्धि जानना चाहिये काहेतें सो सर्वदाहि जन्ममरणादिक क्लेशोंकरके युक्त होवे है इति ॥ तथा विनाब्रह्मचर्यके चित्तकी एकाग्रताभी नहि होवे है यह वार्ताभी तहांहि कथन करी है “विन्दुश्चलति यस्यांगे चित्तं तस्यैष चंचलम्” अर्थ० जिस पुरुषके इन्द्रियद्वारा धार्य चलायमान रहता है तिसका चित्तभी सर्वदाहि चलायमान रहता है इति ॥ किंच इस ब्रह्मचर्यके विषेहि सर्व धर्म अंतर्भूत होवे हैं यह वार्ता सामवेदकी छांदोग्य उपनिषद्मेंभी कथन करी है “अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दते, अथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येष्टाऽत्मानमनुविन्दते, अथ यत् सत्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवामात्मानमनुविद्यमनुते” अर्थ० जिसकूं कर्मकांडोलोक यज्ञ कहते हैं सो ब्रह्मचर्यहि है काहेतें ब्रह्मचर्यकरकेहि ज्ञाता पुरुष यज्ञके फलभूत ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे हैं औ जिसकूं इष्ट कहते हैं सोभी ब्रह्मचर्यहि है काहेतें ब्रह्मचर्यसेहि ईश्वरका यजन करके अधिकारी पुरुष आत्माकूं प्राप्त

होवें। तथा जिसकुं सत्रायण कहतेहैं सोभी ब्रह्मचर्यहि है  
 काहेतें ब्रह्मचर्यकरके युक्त भयाहि पुरुष अपने आत्माकी  
 जन्ममरणरूप संसारसे रक्षा करेहै तथा जिसकुं मौन कहतेहैं  
 सोभी ब्रह्मचर्यहि है काहेतें ब्रह्मचर्यकरकेहि यह अधिकारी  
 पुरुष अपने स्वरूपकुं जानकरके हृदयमें मनन करेहै इति ॥  
 यातें साधक पुरुषकुं योगाभ्यासकी सिद्धिविषे परम सा-  
 धनभूत ब्रह्मचर्यसे कदाचित्भी मांसकी पुतलीके कटाक्षोंसे मो-  
 हित होयकरके स्खलित नहि होना चाहिये इति ॥ तथा मिता-  
 हारका लक्षण हठयोगप्रदोपिक्रामे निरूपण कियाहै ॥

“सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः ।

भुज्यते शिवसंभूतै मिताहारः स उच्यते” ॥

अर्थ० स्निग्ध औ मधुर भोजनका उदरका चतुर्थ भाग  
 खाली रखकरके ईश्वरकी प्रीतिके अर्थ जो आहार करना  
 है तिसका नाम मिताहार है इति ॥ तथा पूर्वाचार्योंनेभी  
 कहाहै

“दो भागो पूरयेदन्नैस्तौयेनैकं प्रपूरयेत् ।

वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्” ॥

१ जो वैदिक कर्म बहुत यजमानोंकरके अनुष्ठान किया जावेहै  
 तिसका नाम सत्रायण है-



अर्थ० उदरके दो भाग तो अन्न शाकादिकोंसें औ एक भाग जलसें पूर्ण करना चाहिये तथा चतुर्थ एक भाग प्राणोंके संचारके अर्थ वाकी रखना चाहिये इति ॥ तथा अमृतविंदुउपनिषत्विषेभी कहाहै “अत्याहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत्” अर्थ० भुषासें अत्यंत अधिक औ अति-अल्प आहारका योगीकूं सर्वदाहि वर्जन करना चाहिये इति ॥ तथा गीताके पष्ठाध्यायविषेभी कहाहै “नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चैकांतमनश्नतः” अर्थ० अत्यंत अधिक तथा किंचित्भी भोजन नहि करनेसें योगकी सिद्धि नहि होवेहै किंतु युक्ताहार करनेसेंहि सिद्धि होवेहै इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै “अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनाम् ॥ द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य नियतं ब्रह्मचारिणाम्” अर्थ० संन्यासीकूं अन्नके अष्ट ग्रास भक्षण करने चाहिये औ यानप्रस्थकूं षोडश ग्रास भक्षण करने चाहिये तथा गृहस्थकूं वत्तीस ग्रास भक्षण करने चाहिये औ ब्रह्मचारीकूं मित्राहार अर्थात् चतुर्विंशति ग्रास भक्षण करने चाहिये इति ॥ सो अन्नभी योगीकूं स्निग्धहि भोजन करना चाहिये तीक्ष्ण कटुआदिक नहि । यद् वार्ता हठयोगप्रदीपिकामेंभी कथन करीहै “पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं ध्यातुमपोषणम् ॥ मनोभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्” अर्थ० योगी

पुरुषकूं पुष्टिकारक औ मधुर तथा स्निग्ध औ गव्य तथा श-  
रीरकी धातुवाँके पोषण करणेहारा औ मनकरके अभिलषित  
तथा शास्त्रविहित जो भोजन है सोई भक्षण करणा योग्य है  
इति ॥ तथा स्कंदपुराणमेंभी कहाहै “त्यजेत् कटुम्लवणं  
क्षीरभोजी सदा भवेत्” अर्थ० मिरचीआदिक कटु औ नित्रु-  
आदिक खट्टा तथा अतिलवणयुक्त भोजनका परित्यागकर-  
के अभ्यासी पुरुषकूं सर्वदा क्षीरकाहि भोजन करणा योग्य है  
इति ॥ औ “कणानां भक्षणे युक्तः पिण्याकस्य च भारत ॥  
स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी क्लमवाप्नुयात् ॥ भुंजानो यावकं  
रूक्षं दीर्घकालमरिंदम ॥ एकाहारो विशुद्धात्मा योगी बलम-  
वाप्नुयात्” अर्थ० कण औ पिण्याकके भक्षण करणेसे औ  
घृतादि स्नेहोंके वर्जनमें युक्त भया योगी शीघ्रहि सिद्धिकूं  
प्राप्त होवेहै ॥ तथा दीर्घकालपर्यंत यवोंके रूक्षे सक्तुवाँके  
भक्षण करणेसे अथवा सर्वदा दिवसमें एकवार भोजन कर-  
णेतें योगी शीघ्रहि सिद्धिकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ इन महाभा-  
रतके मोक्षपर्वके वाक्याँविषे जो योगी पुरुषकूं रूक्षे अन्न अ-  
क्षय करणेका विधान कियाहै सो प्राणजय कियेतें अनंतर  
जानना प्राणायामके अभ्यासकाटविषे नहि काहेतें प्राणायाम-  
के अभ्यास करणेतें सर्व शरीरका शोषण होवेहै यातें तिस

कालमें तो अवश्यहि साधक पुरुषकूं क्षीरादिक स्निग्ध, भोजनहि करणा चाहिये, यह वार्ता शिवसंहिताविषेभी कथन करीहै

“अभ्यासकाले प्रथमं कुर्यात् क्षीराज्यभोजनम् ।

ततोऽभ्यासे दृढीभूते न तादृक्षियमग्रहः ” ॥

अर्थ० प्राणायामके अभ्यासकालमें प्रथमहि दुग्धधृता-  
दिकयुक्त स्निग्ध भोजन करणा चाहिये औ प्राणायामके  
दृढ होनेसे अनंतर तो स्निग्ध भोजनका कुछ नियम नहिहै  
इति ॥ तथा मन वाणी औ शरीरकरके सर्व दीन प्राणियोंके  
ऊपर जो अनुग्रह करणा है तिसका नाम दयाहै ॥ यह  
वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै “दया सर्वेषु भू-  
तेषु सर्वत्रानुग्रहः स्मृतः” अर्थ० सर्वदाहि सर्वभूतोंपर जो  
अनुग्रह करणा है तिसका नाम दया है इति ॥ तथा अन्य  
स्मृतिमेंभी कहाहै “प्राणा यथात्मनोभीटा भूतानामपि ते  
तथा ॥ आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वतु मानवाः” अर्थ०  
जैसे पुरुषकूं अपने प्राण प्रिय हैं तैसेहि पशु पक्षी आदिक  
सर्वप्राणियोंकूंभी प्रिय हैं औ जैसे अपनेकूं सुखदुःख होवेहै  
तैसेहि तिनकूंभी सुखदुःखका अनुभव होवेहै यातें विवेकी पुरु-  
षाकूं अपनेनूल्य जानकर सर्व प्राणियोंपर दयाहि करणी

योग्य है इति ॥ तथा वसिष्ठसंहितामें भी कहाँ है “उपवासः पर-  
 भैक्षं दयादानादिशिष्यते” अर्थ० उपवासकरणसे भिक्षाका  
 अन्न भक्षण करना श्रेष्ठ है औ दान करणसे दया क-  
 रणी श्रेष्ठ है इति, तथा पूर्वाचार्योंने भी निरूपण किया है  
 “सर्वत्र सुखिनः संतु सर्वे संतु निरामयः ॥ सर्वे भद्राणि प-  
 श्यंतु मा कश्चिदुःखमाप्नुयात्” अर्थ० इस संसारविषे सर्वहि  
 प्राणी सुखकूं प्राप्त होवो औ सर्वहि दुःखसे रहित निरोग  
 होवो तथा सर्वहि कल्याणकूं प्राप्त होवो कोईभी क्लेशकूं नहि  
 प्राप्त होवो इस प्रकार सर्वदाहि सर्व प्राणियोंपर हृदयक-  
 रके अनुकंपा करणी योग्य है इति ॥ तथा तिस दयालु पु-  
 रुषपर सर्वभूत प्राणीभी दया करतेहैं, यह बातें वसिष्ठसंहि-  
 तामें भी कथन करी है “अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो  
 दिजः ॥ तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु विद्यते” अर्थ०  
 जो पुरुष सर्वभूतोंकूं अभयदान देकर विचरता है तिसकूंभी  
 सर्व भूतोंसे कदाचित् भय नहिं होवे है इति ॥ सो यह दया  
 योगाभ्यासीकूं तो सामान्यसेहि करणी चाहिये काहेतें अत्यं-  
 त दयाकरके दुःखी पुरुषोंके दुःखकी निवृत्तिमें प्रवृत्त भया  
 योगी योगसे अट होवे है जैसे राजा भरत मृगीके वच्चेपर  
 अत्यंत दया करणेतें योगसे अट होता भया है यह बातें  
 भागवतमें प्रसिद्ध है ॥ किंच इस जगत्में अनेकहि जीव

दुःखी हैं तो सो दयालु पुरुष तिनमेंसें किसकिसका दुःख निवृत्त करेगा, यह बातों योगवासिष्ठके उपशमप्रकरणमें भी कथन करी है “यः प्रवृत्तः कुत्रुद्धीनां दयावान् दुःखमार्जने ॥ स्वगतच्छुभ्रनिर्मृदसूर्याशुः खिद्यते नभः” अर्थ० जो पुरुष अज्ञानी जीवोंपर दयावान् होयकरके तिनके दुःखोंकी निवृत्ती करणेमें प्रवृत्त होवे है सो अपने हाथमें स्थित छुभ्रकरके सर्व आकाशकूँ सूर्यकी किरणोंसें रहित करणेके अर्थ परिश्रम करता है अर्थात् जैसे तिसका परिश्रम व्यर्थ है तैसेहि सर्व जीवोंके दुःखकी निवृत्तिके अर्थ दयालु पुरुषका परिश्रम व्यर्थहि है काहेतें जैसे एक छुभ्रकरके सर्वआकाशकूँ सूर्यकी-किरणोंसें रहित करणा असंभव है तैसेहि एक दयालु पुरुषकरके सर्व अज्ञानी जीवोंके दुःखोंकी निवृत्ति होनी असंभव है इति ॥ यार्ते अत्यंत दया नहि करणी चाहिये औ अत्यंत उपेक्षा भी नहि करणी चाहिये किन्तु सर्वत्रहि सामान्यसें वर्त्तना चाहिये यह बातों शंकराचार्यने भी कही है “जनरूपानेष्टुर्य-मुत्सृज्यताम्” अर्थ० हे मुमुक्षु पुरुषो तू अत्यंत दया औ निष्ठुरताका परित्यागकरके सर्वत्र सामान्यसें वर्त्तो इति ॥ यह दश प्रकारके यमोंके टक्षण हैं इति ॥ ॥ इस प्रकारसें दश प्रकारके यमोंकी व्याख्या करके अब दोगका दूसरा अंग जो नियम है तिसके टक्षणकूँ निरूपण करेहैं ॥

“ वंशस्थं वृत्तम् ”

जपस्तपो दानमथागमश्रुति-  
स्तथास्तिकत्वं व्रतमीश्वरार्चनम् ॥

यथासितोपो मतिरप्यपत्रपा

बुधेर्दशैते नियमाः समीरिताः ॥ १० ॥

जप इति ॥ जप, तप, दान, वेदांतशास्त्रकां श्रवण, आ-  
स्तिकभाव, व्रत, ईश्वरपूजन, यथालाभमे संतोष, मति लज्जा,  
इस भेदसे नियमभी पूर्वाचार्योने दश प्रकारके कथन ' कियेहैं  
तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै “यमश्च नियमश्चैव दश-  
धा संप्रकीर्तितः” अर्थ० यम औ नियम यह दश दश प्रका-  
रके हैं इति ॥ औ “अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा  
यमाः ॥ शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरमणिधानानि नियमाः”  
इन पतंजलिके सूत्रोंविषे जो यम नियम .पांच पांच प्र-  
कारके निरूपण कियेहैं सो दूसरे पांच पांचोंकेभी उपलक्षण'  
जानटने नहि तो उक्त याज्ञवल्क्यके वाक्यसाथ विरोध होवेंगा  
निर्मे गुरुमुखद्वारा ग्रहणकरके गायत्री भणवादिक् षड्विंश मं-  
त्रोंका अथवा वेदका जो अध्ययन करणा है तिसका नाम

जप है, यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामें भी कथन करी है “गुरु-  
णा चोपदिष्टोपि वेदवाह्यविवर्जितः ॥ विधिनोक्तेन मार्गेण  
मंत्राभ्यासो जपः स्मृतः ॥ अधीत्य वेदं सूत्रं वा पुराणं वेति  
हासकम् ॥ एतेष्वभ्यसतस्तस्य अभ्यासेन जपः स्मृतः” अर्थ०  
वेदोक्ते मंत्रका गुरुमुखद्वारा ग्रहणकरके विधिपूर्वक जो आवर्तन  
करणा है तिसका नाम जप है” तथा गुरुमुखद्वारा अध्ययन-  
करके वेद, ब्रह्मसूत्र, पुराण, इतिहासादिक सत्शास्त्रोंका  
जो अभ्यास करणा है सो भी जप कहिये है इति ॥ सो जप  
वाचिक जप, मानस जप इस भेदसे दो प्रकारका है पुनः  
सो भी दो दो प्रकारका है तिनमें उच्चैः औ उपांशु यह दो  
भेद वाचिक जपके हैं तथा ध्यानरहित औ ध्यानयुक्त  
यह दो भेद मानस जपके हैं तिन चारोंमें ध्यानयुक्त  
मानस जप उत्तम है, यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामें भी कथन  
करी है “उच्चैर्जपः उपांशुस्तु सहस्रगुण उच्यते ॥ मानसश्च तथो-  
पांशोः सहस्रगुण उच्यते ॥ मानसाश्च तथा ध्यानं सहस्रगुण  
मुच्यते” अर्थ० उच्चैः जप करनेसे शनैः शनैः करणा सहस्र-  
गुण अधिक फटका हेतु होवे है औ शनैः शनैः करनेसे म-  
नविषे करणा सहस्रगुण अधिक होवे है तथा केवल मनविषे

करणेर्ते एकाग्र मनसं करणा सहस्रगुण अधिक होवेहै इति ॥  
 भो मंत्रके ऋषि छंद औ देवता तथा न्यासकूं जानकस्केहि  
 जप करणा चाहिये जानेविना नहि. काहेतें ऋषि देवता आ-  
 दिकोंके जानेसँविना जप करणेसँ यथोक्तफलकी प्राप्ति नहि  
 होवेहै, यह वार्ताभी याज्ञवल्क्यसंहितामेंहि कथन करीहै

“ऋषिं छन्दोधिदैवं च ध्यायन् मंत्रस्य सत्तमे ।

यस्तु मंत्रं जपेद्गार्मि नदेवं हि फलप्रदम्” ॥

अर्थ० हे गार्मि जो पुरुष मंत्रके ऋषि छंद औ देवताके  
 स्मरणपूर्वक जप करताहै तिसकूंहि यथोक्तफलकी प्राप्ति हो-  
 वेहै अन्यकूं नहि इति ॥ तथा मंत्रके अर्थकूंभी जानना चा-  
 हिये, यह वार्ता बृहहारीतसंहितामेंभी कथन करी है

“इत्थं संवित्य मंत्रार्थं जपेन्मंत्रमतंदितः ।

अविदित्वा मनोरर्थं जपेत् श्रयतमानसः ।

न स सिद्धिमवाप्नोति स्वरूपं च न विन्दते” ॥

अर्थ० इस प्रकारसँ साधक पुरुषकूं आलस्यसँ रहित होय-  
 करके मंत्रके अर्थकूं चिंतन करते हुये जप करणा. योग्यहै औ  
 मंत्रके अर्थकूं जानेसँविना जो एकाग्र मनकरकेभी जप करे तो  
 सो मंत्रकी सिद्धि औ उपास्यदेवताके स्वरूपकूं प्राप्त नहि होवेहै  
 इति ॥ तथा सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद्मेंभी कहाहै “य-



देव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव धीर्यवत्तरं भवति ।  
 अर्थ० जो पुरुष मंत्रके अर्थ औ रहस्यकूं जानकर श्रद्धापूर्वक  
 तिसका जप करताहै तिसहिकूं अधिक फलकी प्राप्ति होवेहै  
 अन्यकूं नहि इति ॥ किंच यह जपरूप यज्ञहि सर्व यज्ञोंसँ  
 श्रेष्ठ है, यह वार्ता गीताके दशमाध्यायविषे भगवान् नेभी क-  
 थन करीहै “यज्ञानां जपयज्ञोस्मि” अर्थ० हे अर्जुन ज्यो-  
 तिष्ठोमादि सर्वयज्ञोंमें जपरूप यज्ञ मेरा स्वरूप है इति ॥  
 तथा मनुस्मृतिके द्वितीयाध्यायविषेभी कहाहै

“ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।

सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नाहति षोडशीम्” ॥

अर्थ० धैश्वदेवहोम, बलिदान, नित्यश्राद्ध, अतिथिभोजन  
 यह जो चारि प्रकारके पाकयज्ञ हैं औ दर्शपौर्णमासादिक  
 जो विधियज्ञ हैं सो सर्वहि जपरूप यज्ञके सोलसा भागके  
 समानभी नहि होवेहैं इति ॥ सो इस कालविषे जितनी ज-  
 पकी संख्या होके तिसमें चतुर्गुण अधिक करणा चाहिये यह  
 वार्ता मंत्रशास्त्रमेंभी कहीहै “कलौ संख्या चतुर्गुणा” अर्थ०  
 कलियुगमें मंत्रकी संख्यासँ चतुर्गुण जप अधिक करणा  
 चाहिये इति ॥ औ जो विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेतेंभी  
 मंत्रकी सिद्धि नहि होवे तो तिसमें प्रतिग्रह आदिक प्रतिध-  
 धक जानना, यह वार्ता महादेवजीनेभी कथन करीहै

“जिह्वा दग्धा पराच्चेन हस्तौ दग्धौ प्रतियहात् ।

परस्त्रीभिर्मनो दग्धं कथं सिद्धिर्वरानने” ॥

अर्थ० हे पार्वति जिस पुरुषकी जिह्वा तो पराये अन्न भक्षणकरके दग्ध होवेहै औ हस्त दान लेनेकरके दग्ध होवेहे तथा परस्त्रियोंके चिंतनकरके मन दग्ध होवेहै तिसकुं किस प्रकारसें मंत्रकी सिद्धि प्राप्त हो सकेहै इति ॥ यहि कारण तप आदिकोंकी असिद्धिविषेभी जानलेना ॥ तथा तपका लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें निरूपण कियाहै

“विधिनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।

शरीरशोषणं प्राहुस्तपसां तप उत्तमम् ॥

अर्थ० धर्मशास्त्रोक्तविधिपूर्वक कृच्छ्रचान्द्रायणादिके व्रतोंकरके जो शरीरका शोषण करनाहै सोई सर्व तपोंसें उत्तम तप कहियेहै इति ॥ यह वार्ता महाभारतमेंभी कथन करी है “तपो नानशनात्परम्” अर्थ० अनशनतें परे दूसरा कोई तप नहि है इति ॥ धीष्मऋतुमें पंचाग्नि तपना शरदऋतुमें कंठपर्यंत जठरविषे स्थित होना वर्षाऋतुमें मैदानमें रहना श्रृंगितमौन अथवा काष्ठमौन धारण करना इत्यादि तिस त-

१ मौन धारणकरके पश्चात् जेनादिकोंसें जो सैनत करणी है तिसका नाम श्रृंगितमौन है । २ औ जो सैनतभी नहि करणी, है तिसका नाम काष्ठमौन है ।

पके अवांतर भेद हैं ॥ सो तप करणेतें विना योगकी सिद्धि नहि होवेहै, यह वार्ता योगभाष्यमें व्यासजीनिभी कथन करीहै “नातपस्विनो योगः सिद्धयति” अर्थ० जो पुरुष तपकरके वर्जित है तिसकूं योगकी सिद्धि नहि होवेहै इति तथा मनुस्मृतिके एकादशे अध्यायविषेभी कहाहै

“औषधान्यगदो विद्या देवी च विविधा स्थितिः ।

तपसैव प्रसिद्धयन्ति तपस्तेषां हि साधनम्” ॥

अर्थ० रसायनादिक औषधियां औ शरीरकी अरोगता तथा वेदादिक विद्या औ आकाशगमन अमृतपानादिक जो विविधप्रकारकी देवताकी स्थिति हैं इत्यादिक सर्व कार्य तपकरकेहि सिद्ध होवेहैं काहेतें तपहि तिनकी सिद्धिविषे परम साधनभूत है इति ॥ तथा विष्णुस्मृतिमें पृथिवीकेमति विष्णु भगवान्नेभी कहाहै॥

“यदुश्चरं यदुरार्षं यदूरं यच्च दुष्करम् ।

सर्वं तत्तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

तपोमूलमिदं सर्वं देवमानुषकं जगत् ।

तपोमध्यं तपोन्तं च तपसा च तथावृतम्” ॥

अर्थ० हे देवि पर्वतादिक जो दुर्गम स्थान हैं औ आकाशगमनादिक जो दुष्प्राप्य सिद्धियां हैं तथा सुमेरु आदिक

जो दूरदेश हैं औ समुद्रपानादिक जो दुष्कर कर्म हैं सो सर्वहि तपकरके सिद्ध होवैहैं, यह वार्ता अगस्त्यादिक महर्षियों विषे विख्यातहि है सो तिस तपका कोईभी अतिक्रमण नहि करसकैहै अर्थात् इस जगत्में ऐसा कोई पदार्थ नहिहै जो तपकरके नहि प्राप्त होसकेहै तथा देवता मनुष्य दैत्यादिक जंतुओंकरके संकुल जो यह सर्व घराघर जगत् है तिसकोभी तपकरकेहि उत्पत्ति स्थिति औ विनाश होवैहै तथा तपकरकेहि यह जगत् सर्वतरफसे आवृत होय रहाहै इति ॥ तथा भागवतके द्वितीयस्कंधमेंभी लिखाहै

“स चिंतयन् ह्यक्षरमेकदांभ-  
 स्पुपाण्डुणोद्भिर्गदितं वचो विभुः ।  
 स्पर्शेषु यत् पोटशमेकाविंशं  
 निर्दिक्चनानां नृप यद्धनं विदुः” ॥

अर्थ० सृष्टिके आदिकाठविषे विष्णुभगवानकी नाभिसे उरपन्न भये कमलमें स्थित भया ब्रह्मा जगत्की रचना करनेमें असमर्थ हुया चिन्तन करताथा तो एक समयविषे कंकोरसें टेकरके मकारपर्यन्त जो स्पर्शसंज्ञावाले अक्षर हैं तिनमेंसें सोटमा औ पक्षीशवांअर्थात् तप तप इस मकारसें दो अक्षरोंके दोवार श्रवण करता भया । तात्पर्य यह है ब्रह्मा

जो तुं तप करेगा सो सृष्टिकी उत्पत्ति करणें समर्थ होवेगा इति ॥ सो तप सात्त्विकतप, राजसतप, तामसतप, इस भेदसें तीन प्रकारका है सो तिन तीनोंके लक्षण गीताके सप्तदशे अध्यायविषे भगवान्ने कथन कियेहैं तिनमें

“श्रद्धया परया ततं तपस्तत्रिविधं नरैः ।

अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते” ॥

अर्थ० हे अर्जुन जो विवेकी पुरुष फलकी कामनाकरके रहित भये परम श्रद्धापूर्वक पूर्वोक्तलक्षण तपका आचरण करतेहैं, सो सात्त्विकतप कहियेहै इति ॥ तथा

“सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ।

क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्” ॥

अर्थ० जो पुरुष जगत्विषे अपने सत्कार मान पूजादिकोंके अर्थ दंभपूर्वक तप करतेहैं सो राजस तप कहियेहै सो तप चलायमान् औ अध्रुव होवेहै अर्थात् तिसका परलोकविषे कुछभी फल नहि होवेहै इति ॥ तथा

“मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः ।

परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्” ॥

अर्थ० जो मूढ पुरुष शरीरक अत्यंत पीडा देकर हठपूर्वक तप करतेहैं अथवा किसीके मारण उच्चाटनके अर्थ कर-

तेहै सो तामस तप कहियेहै इति ॥ यातें मुमुक्षु पुरुषकुं तो अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षपदके देनेहारे सात्विक तपकाहि आचरण करणा योग्य है ॥ तथा दानका दक्षणाभी याज्ञवल्क्यसंहितामेंहि निरूपण कियाहै

“न्यायार्जितधनं चापि विधिवद्यत्प्रदीयते ।

अर्थिभ्यः श्रद्धया युक्तं दानमेतद्बुदाहृतम्” ॥

अर्थ० स्वधर्मके अनुसार न्यायपूर्वक संचित कियेहुये द्रव्यका विधिवत् श्रद्धाकरके जो याचकोंकेप्रति समर्पण करणा है तिसका नाम दान है इति ॥ सो दान करणेयोग्य पदार्थ बृहस्पतिसंहितामें कथन कियेहैं

“अग्नेरपर्यं प्रथमं हिरण्यं

भूर्वेष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ।

लोकास्त्रयस्तेन भवंति दत्ता

यः कांचनं गां च महीं च दद्यात्” ॥

अर्थ० अग्निदेवताका प्रथमपुत्र सुवर्ण है औ पृथिवी विष्णुकी पुत्री है तथा गौ सूर्यकी पुत्री है यातें मिस पुरुषने सुवर्ण पृथिवी औ गौका दान कियाहै तिसने मानो त्रिलोकीकाहि दान करलिया इति ॥ तिनसेंभी अन्नका दान करणा अति उत्तम है, यह बातें संवत्संहितामेंभी कथन करीहै

“सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ।

सर्वेषामेव जंतूनां यतस्तज्जीवितं फलम् ।

यस्मादन्नात् प्रजाः सर्वाः कल्पे कल्पेऽसृजत् प्रभुः ।

तस्मादन्नात्परं दानं न भूतं न भविष्यति” ॥

अर्थ० सर्व दानोंमेंसे अन्नका दान अपि लोकोंने उत्तम कथन किया है काहेतें जिस कारणतें अन्नकरकेहि सर्व प्राणियोंका जीवन होवे है ॥ तथा अन्नकरकेहि कल्पकल्पके आदिविषे ब्रह्मा सर्व प्रजाकी उत्पत्ति करे है यातेंभी अन्नसें परे दूसरा कोई दान न हुया है औ न होवेहिगा इति ॥ सो यह दान सुपात्रके प्रतिहि देना चाहिये कुपात्रके प्रति नहि, काहेतें कुपात्रविषे दान कियाहुया निष्फल होवे है, यह वार्ता बुद्धगौतमसंहितामें युधिष्ठिरके प्रति कृष्णप्रगवान् नेभी कथन करी है

“अपात्रेभ्यस्तु दत्तानि दानानि सुबहून्यपि ।

वृथा भवंति राजेन्द्र भस्मन्याज्याहुनियंथा” ॥

अर्थ० हे राजेन्द्र अपात्रोंके प्रति विपुल दान दियेहुयेभी भस्मविषे घृतकी आहुतिकी न्याई व्यर्थहि होवेई इति ॥ किं-  
ए दानकरकेहि द्रव्यकी रक्षा हीवे है अन्यथा नहि, यह वार्ता अमरकोशकी टीकामेंभी लिखी है

“उषार्जिनानां वित्तानां दानमेव हि रक्षणम् ।

तडागोदरसंस्थानां परिवाहा इवांभसाम्” ॥

अर्थ० जैसे जलवाविषे स्थित भये जलकी झरनेद्वारा प्रस्रवणकरके लुमि दुर्गंधि आदिकोंसे रक्षा होवेहै तैसेहि संचित कियेहुये द्रव्योंकी दानकरणोंतेंहि चोर, राजा, अग्नि, आदिकोंसे रक्षा होवेहै इति ॥ तथा अन्य ग्रंथमेंभी कहाहै

“चत्वारो धनदायादा धर्माग्निनृपतस्कराः ।

उपेक्षस्य स्ववमानेन कुप्यन्ति सोदरास्त्रयः” ॥

अर्थ० संचित कियेहुये द्रव्यके धर्म, अग्नि, राजा, चोर यह चारि भागी होवें तिन चारोंमें धर्म बड़ा भाई है सो तिसके अपमान करणें अर्थात् दान नहि करणें दूसरे तीनों भाई कोषकू मात होतेहैं अर्थात् जातो अग्निसें जल जावेहै जातो राजा दंडकरके आकर्षण करेहै अथवा चोर हरण करतेवेहै इति ॥ यातें द्रव्यकी रक्षाकेअर्थभी अवश्यहि दान करणा योग्य है ॥ किंच सत्पुरुषोंका जो द्रव्यसंचय होवेहै सो दानके अर्थहि होवेहै इति ॥ यह वार्ता पूर्वाचार्योंनेभी कथन करीहै

“पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नोदकं

स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।

धाराधरो वर्षति नात्महेतवे

मरोपकाराय सतां विभूतयः” ॥

अर्थ० जैसे जलकरके पूर्ण गंगाआदिक नदियां बहतोहैं



सो अपने जलपानके अर्थ नहीं वहती किन्तु तीरके रहनेहारे, अन्यपुरुष पशु पक्षि आदिकोंके जलपान करनेके अर्थही वहती है औ जैसे आम्नादिक वृक्ष अनेक फलोंकूं धारण करतेहैं सो अपने भक्षण करनेके अर्थ नहीं किन्तु अन्य पुरुष प्रक्षी आदिकोंके भक्षण करनेवास्ते धारण करतेहैं तथा जैसे मेष वर्षाकृतविषे जलकी वर्षा करेहै सो अपने लाभके अर्थ नहीं करेहै किन्तु अन्य पुरुष पशुआदिकोंके अर्थही करेहै तैसेही अनेक व्यापारोंकरके सत्पुरुष जो द्रव्यका संचय करतेहैं सो अपने उपभोगके अर्थ नहीं करते किन्तु परोपकार अर्थात् सत्पात्रोंविषे दान करनेके अर्थही करतेहैं इति ॥ किंच दान करकेहि पुरुष महत् पदकूं प्राप्त होवेहै यह घाता पराशरस्मृतिमेंभी कथन करीहै

“दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुखमश्नुते ।

इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः” ॥

अर्थ० दानकरकेहि यह पुरुष स्वर्गकूं प्राप्त होवेहै औ दानकरकेहि परम सुखकूं प्राप्त होवेहै तथा इस लोक औ परलोकविषे दानकरके यह पुरुष पूज्य होवेहै इति ॥ तथा मोक्षकी प्राप्तिभी दानमेंही होवेहै, यह घाता यज्ञुर्वेदकी बृहदारण्यक उपनिषद्मेंभी कथन करीहै “रातेदानुः परायणम्”

अर्थ० सो परमात्मा द्रव्यके दानकरणेहारे पुरुषोंका परायण है अर्थात् जो पुरुष द्रव्यका दान करणेहारा है तिसकुंहि अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा परमपदकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ सो दान उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, इस भेदसें तीन प्रकारका है तिन तीनोंके लक्षण पराशरस्मृतिविषे कथन कियेहै

“अभिगम्योत्तमं दानमाहुतं चैव मध्यमम् ।

अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानं तु निष्फलम्” ॥

अर्थ० धनार्थी पात्रके गृहविषे आप जायकर जो दान देनाहै तिसका नाम उत्तम दान है औ अपने गृहविषे बुलायकर जो दान देनाहै सो मध्यम दान कहियेहै तथा याचत हुये अर्थीकू जो दान देनाहै सो कनिष्ठ दान है औ जो सेवा करणेहारेकू दान देनाहै सो तो निष्फलहि होवेहै इति ॥ पुना सो दान सात्विक, राजस, तामस इस भेदसें तीन प्रकारका है तिन तीनोंके लक्षण गीताके सप्तदशे अध्यायमें भगवान् ने अर्जुनकेप्रति कथन कियेहैं तिनमें

“दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्” ॥

अर्थ० हमारेकू दान करणा उचितहि है ऐसी बुद्धिपूर्वक कुरुक्षेत्रादि पवित्र देश औ सूर्यग्रहणादिक कालविषे वेदा-

ध्ययनआदिक संशुणोंकरके युक्त अनुपकारी विप्रकृं फलकी कामनासें रहित होयकर विधिवत् जो दान करणहै तिसका नाम सात्विक दान है ॥ तथा

“यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।

दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्” ॥

अर्थ० इतना द्रव्य व्यय होजावेगा इसप्रकार वित्तमें कुशकरके औ देशकालादिकोंका विचार नहि करके फलकी कामनापूर्वक अपणेऊपर उपकार करणेहारे पुरुषकूं केवल लोकविषे यशके अर्थ जो दान करणा है सो राजस दान कहियेहे ॥ तथा

“अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।

असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्” ॥

अर्थ० अपविप्रदेशविषे औ सूतकादिककालविषे असत्कार औ अवज्ञापूर्वक कुपात्रपुरुषकेमति जो दान करणा है तिसका नाम तामस दान है इति ॥ किंच हमारेपास विपुल द्रव्य नहिहै यातें हम किसप्रकारसें दान करें ऐसा नहि जानना चाहिये किंतु यथाशक्तिहि दान करणा योग्य है काहेतें जो धनी पुरुषकूं विपुल दानकरके फलकी प्राप्ति होयेहे सोई दरिद्री पुरुषकूं अल्पदानकरके प्राप्त होयेहे ॥

इस प्रसंगपर महाभारतके आश्वमेधिकपर्वविषे एक इतिहास लिखा है सो संक्षेपसे यहां लिखे हैं ॥ सो जैसे जिस कालविषे राजा युधिष्ठिर अश्वमेधयज्ञकी समाप्तिके अनंतर स्नानकरके सर्व ऋषिमुनियोंकरके संस्तुत भया सिंहासनपर बैठा था तो इतनेमें अर्ध सुवर्णके शरीरवाला एक नकुल आयकर सर्व सभाके समक्ष कहता भया हे राजन्, यह तेरा यज्ञ कुरुक्षेत्र-निवासी ब्राह्मणके तुल्य नहि भया है तू काहेतें वृथा अभिमान करता है, जब इस प्रकार नकुलने मनुष्यभाषामें विस्मयकारक वचन कहा तो सर्व ब्राह्मण तिसके समीप जायकर पूछने लगे हे नकुल, जो जो महान् यज्ञ पृथिवीविषे होता है तहां तहां हम अवश्य गमन करते हैं सो हमने इस समयमें जिस प्रकारका विधपूर्वक युधिष्ठिरका यज्ञ संपूर्ण हुआ है ऐसा अन्य कोई नहि देखा है औ श्रवणभी नहि किया है यातें जो तेने कोई देखा अथवा श्रवण किया होवे तो हमारे प्रति यथार्थ कथन कर, जब इस प्रकारसें तिन ब्राह्मणोंने कहा तो नकुल कहने लगा हे विप्रो, मैं आदिसें लेकर अंतपर्यंत तुमारे आगे वर्णन करता हूं तुम एकत्रग्रमनकरके श्रवण करो, कुरुक्षेत्रमें उल्लूचिवाला सहितपरिवारके एक

१ नीलिया, २ क्षेत्रादिस्थलोंसे अन्नके कणके चुगकरके भोजन करणोकी उल्लूचि कहते हैं.

शुक्लवृत्तनामा ब्राह्मण निवास करताथा सो कपोतपक्षीकी न्याईं चुग चुगकरके अन्नके कणके संचय करताथा औ तीसरे दिवस पीछे एकवार तिन कणकोंके सक्तु बनायकरके भक्षण करताथा औ जो कदाचित् तीसरा दिवस चूकजावे तो पुना पद्दिवसके अनंतर भक्षण करताथा इस प्रकारसे सहितपरिवारके तिसका नियम था तो एक मूमये दुर्भिक्षके पंडनेसे तिसके तीन दिवसमेंभी भक्षण करने योग्य कणकोंकी प्राप्ति नहि होतीभयी तो दूसरे तीन दिवसभी उपवासहि रहा पुना जब पद्दिवसके अनंतर कणकोंके सक्तु बनायकर च्यारि भागकरके सहित परिवारके भक्षण करने लगा तो इतनमें वनमेंसे एक तपस्वी अतिथिने आयकर भोजनकी याचना करी तब ब्राह्मणने अतिथिकूं देखतेहि सत्कारपूर्वक किंचित्भी मनविषे खेदकूं नहि प्रातहोयकर अपने भागके सक्तुवाँका द्रोण तिसकूं समर्पण करदिया तो सो अतिथिने मसन्नतापूर्वक भक्षण केरलिया परंतु तिसकी तृप्ति नहि होती भयी तो सो ब्राह्मण विचार करणे लगा इतनेमें तिसकी स्त्रीने कहा हे स्वामिन्, तुम शोच काहेको करतेहो यह जो मेरे भागका द्रोण है सो इस अतिथिकूं अर्पण करदेवो तो ब्राह्मण कहनेलगा हे प्रिये, तूं पद्दिवससे क्षुधानुर है औ तेरा

शरीरभी वृद्धावस्थाकरके कृश होय गया है सो तूं अपने भाग-  
 कूं देकर किस प्रकारसे माणोंकूं धारण करेगी इत्यादिकं वां-  
 क्योकरके तिस ब्राह्मणने बहुत कहा तोभी सो स्त्री धैर्यसे  
 चटायमान नहि होती भई तो तिसने सो अपनी स्त्रीका भा-  
 गभी तिस अतिथिकूं अपने करदिया तोभी सो तृप्तिकूं प्राप्त  
 नहि होता भया तब पुना अपने पिताकूं चिंतातुर देखकर  
 तिसका पुत्र कहने लग्यो हे पिता, यह मेरा भाग इस अतिथि-  
 कूं समर्पण करदेवो तो ब्राह्मणने कहा हे पुत्र, तेरी कुमार-  
 अस्था है औ इस अवस्थामें पुरुषकूं क्षुधाभी विशेष दगती है  
 औ पददिवससे तेरा उपवास है याते यह द्रोण देकरके नूं  
 किम प्रकारमें जीवेगा इत्यादिक वचनोंमेंभी जैव धैर्यसे  
 चटायमान नहि होता भया तो ब्राह्मणने तिसका भाग-  
 भी अतिथिके प्रति समर्पण करदिया तिसके भक्षण करने-  
 सेभी तिसकी तृप्ति नहि होती भयी तो पुना अपने श्व-  
 शुरकूं शोकानुर देखकर तिसकी स्नुषा कहने लग्यो हे पिता,  
 यह मेरा भाग इस अनिथिकूं समर्पण करदेवो तो ब्राह्मणने  
 कहा हे पुत्र, तेरा शरीर अनिकोमठ है औ स्त्रियोंकूं पुरुषसे  
 द्विगुणो क्षुधा दगती है औ तेने पिताके गृहविषे बहुत सुख  
 भोगे हैं याते तूं पददिवससे क्षुधानुर भयी अपने भागकूं अ-

पणकरके किस प्रकारसे जीवेगी इत्यादिक वचनोंके कहनेसे-  
 भी जब सो धैर्यसे चलायमान नहि होतीभयी तो ब्राह्मणने  
 तिसका भागभी अतिथिकेप्रति समर्पण करदिया तो सो ति-  
 सकूभी भक्षण करजाताभया परंतु तिन च्यारोंकेहि मनमें  
 किंचित्मात्रभी ग्लानि नहि होतीभयी किंतु अतिथिकी तृप्ति  
 होनेसे अपनेकुं कृतार्थ मानते भये इस प्रकारसे सो ऋषि  
 तिनका धैर्य औ उदारता देखकर बहुत प्रसन्नताकुं प्राप्त  
 भया इतनेमें आकाशमें इंद्रुभियांके शब्द होने लगे औ पुष्पों-  
 की वृद्धि तिनके ऊपर पडने लगी औ इन्द्रादिक देवता आय-  
 कर तिन च्यारोंकेहि विमानपर बैठाकरके स्वर्गकुं लेजातेभ-  
 ये औ सो ऋषिभी अंतर्धान होयगया तो पश्चात् हे ब्राह्मणो,  
 मैं मध्यान्हकी उष्णताकरके तब भया अपने घिलसे निक-  
 सकर जिस स्थलविषे तिस अतिथिके पान करनेसे पृथिवीपर  
 जल पतित भयाथा तहां जायकर छोटा तो तत्कालहि तिस  
 जलके औ सक्तुवोंके कणकोंके स्पर्शसे मेरा अर्ध शरीर कां-  
 चनमय होजाताभया तो तिसते अनंतर मैं जहां जहां महान्  
 यज्ञतप दानादिक श्रवण करताहूं तहां तहांहि जायकर टोट-  
 ताहूं औ तुमारीभी सर्व यज्ञवाटिकामें टोटाहूं परंतु मेरे शरीरका  
 दूसरा अर्ध भाग सुवर्णका नहि हुयाहि याते मैं सत्य कहताहूं  
 जो तुमारा यज्ञ तिस कुरुक्षेत्रनिवासी ब्राह्मणके तुल्य नहि

. भयाहै इति ॥, यातें श्रद्धापूर्वक अल्पदान किया हुआभी  
महत् फलका हेतु होवेहै इति ॥ तथा वेदांतश्रवणका लक्षण  
याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियाहै

“वेदांतश्रवणं प्रोक्तं सिद्धांतश्रवणं बुधैः” ॥

अर्थ० उपनिषदादिकरूप सिद्धांतवाक्योंके विधिपूर्वक  
श्रवण करनेका नाम वेदांतश्रवण है इति ॥ तथा आस्ति-  
क्यका लक्षणभी तहांहि निरूपण कियाहै

“धर्माधर्मेषु विश्वासो यस्तदास्तिक्यमुच्यते” ॥

अर्थ० शास्त्रोक्त धर्म औ अधर्मविषे जो विश्वास है सो  
आस्तिक्य कहियेहै इति ॥ किंच आस्तिक पुरुषकाहि यो-  
गाभ्यासादिक सर्व शुभकर्मोंमें अधिकार है नास्तिकका नहीं,  
यह वार्ता मनुस्मृतिके द्वितीयाध्यायविषेभी कथन करीहै

“योऽधमन्येत ते मूढे हेतुशास्त्राश्रयाद्विजः ।

स साधुभिर्विहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः” ॥

अर्थ० धर्म औ अधर्मके बोधक जो श्रुतिस्मृतिरूप मूल  
प्रमाण हैं तिनका “वेदवाक्यमप्रमाणं वाक्यत्वात् विमलं भक्त-  
वाक्यवत्” अर्थ० वेदकावाक्य अप्रमाण है कहेतें वा-  
क्य होनेतें विमलं भक्तवाक्यकी न्याई ॥ इत्यादिक अनुकूल



तकोंकूं आश्रय करके जो पुरुष अनादर करेहैं सो वेदकी निंदा करनेहारा नास्तिक विद्वान् पुरुषोंकरके सर्व कर्मोंसे बाहिर करनेयोग्य है अर्थात् तिसके साथ कुछभी खानपान विवाह आदिक क्रिया नहि करणी चाहिये इति ॥ तथा धर्मशास्त्रोक्त विधिपूर्वक छच्छ्रचांद्रायण आदिक व्रतोंका जो आचरण करना है तिसका नाम व्रत है तिनमें छच्छ्रव्रतका उक्षण मनुस्मृतिके एकादशे अध्यायविषे कथन कियाहै

“ज्यहं प्रातरुपहं सायं ज्यहमद्यादयाचितम् ॥

‘ज्यहं परं च नाश्रीयात्प्राजापत्यं चरन् द्विजः ॥”

अर्थः जो द्विजाति पुरुष प्राजापत्यनाम छच्छ्रव्रत करनेकी इच्छावान् होवे सो प्रथमके तीन दिवस तो प्रातः-काठविषे अर्थात् दिनके भोजनकाठविषे एकवार भोजन करे औ दूसरे तीन दिवस रात्रीविषे एकवार भोजन करे तथा तीसरे तीन दिवस मांगेसें बिनाहि जो अन्न आय प्राप्त होवे तिसकूं भक्षण करे औ चतुर्थ तीन दिवस केवल उपवास करे इस प्रकारसें द्वादश दिवसके व्रत पालनेसें प्राजापत्यनाम छच्छ्रव्रत होवेइ इति ॥ सांतपनछच्छ्र, अतिरुच्छ्र, तत्तच्छ्र, पराकच्छ्र, यह च्यारि तिसके अवांतर भेद हैं इनके विशेष प्रकार मनुस्मृतिमें लिखे हैं तहां देखने, तथा चान्द्रायणव्रतका उक्षणभी तहांहि कथन कियाहै

“एकैकं हासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ॥ .

उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चांद्रायणं स्मृतम् ॥”

अर्थ० पूर्णमासीसे लेकर चतुर्दशीपर्यंत कृष्णपक्षविषे एक एक घास घटावता जाना औ अमावास्यामें उपवास करणा पुना एकमसे लेकर पूर्णमासीपर्यंत शुक्लपक्षविषे एक एक घास अधिक करते जाना इस प्रकारसे त्रिकालस्नानपूर्वक एकमासपर्यंत व्रत करनेसे पिपीलिकामध्यमनामा चांद्रायण-व्रत होवेहै इति ॥ तथा यवमध्यम, यतिचांद्रायण, शिशुचांद्रायण, यह तीन तिसके अघांतर भेद हैं तिनके लक्षणभी तहांहि कथन कियेहैं यहां विस्तारके भयसे नहि लिखे ॥ सो तिस भक्षणयोग्य घासका परिमाण पराशरस्मृतिमें कथन कियाहै

“कुक्कुटांडप्रमाणं च यावांश्च प्रविशेन्मुखम् ॥

एतं घासं विजानीयात् शुद्धचर्यं व्रत शोधनम् ॥”

अर्थ० कुक्कुटपक्षीके अंडेके समान अथवा जितना अपण्डे मुखमें सुखपूर्वक प्रवेश होयसके तिसकुं व्रतकी शुद्धिके अर्थ घास जानना चाहिये इति ॥ तथा जो अन्यभी एकादशी आदिक अनेकप्रकारकेहि व्रत हैं सोभी इनके अंतर्भूतहि जानलेने ॥ इन व्रतोंकरकेहि सर्व पापोंका क्षादन होवेहै, यह वाता मनुस्मृतिविषेभी कथन करीहै !

“एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम् ॥”

अर्थ० इन उक्त व्रतोंकरके महापापीपुरुषोंकेभी पापरूप मलका क्षादन होवेहै इति ॥ तथा ईश्वरपूजनका लक्षण याज्ञ-  
वल्क्यसंहितामें कथन कियाहै

“यदासन्नस्वभावेन विष्णुं वा रुद्रमेव वा ॥

यथाशक्त्यर्चयेन् भक्त्या एतदीश्वरपूजनम् ॥”

रागाद्यपेतं हृदयं वागदुष्टानृतादिभिः ॥

हिंसादिरहितः काय एतदीश्वरपूजनम् ॥”

अर्थ० विष्णुजीका अथवा महादेवजीका एकाग्रचित्तकर-  
के यथाशक्ति पुष्पादिकोंसे जो अर्चन करणा है तिसका नाम  
ईश्वरपूजन है तथा जिस पुरुषका मन तो रागकामक्रोधा-  
दिक दोषोंसे रहित है औ वाणी असत्यभाषण कपटयुक्तभाष-  
णादिकोंसे दूषित नहिहै तथा शरीर हिंसा परस्त्रीगमनादि-  
कोंकरके दूषित नहिहै सोभी ईश्वरका पूजन है अर्थात् मन-  
वाणीशरीरकी जो शुद्धि है सोई ईश्वरका परम पूजन है  
यह बातें महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कथन करीहै

“यस्य वाङ्मनसी गुणे सम्यक्प्रणिहिते सदा ॥

वेदास्तपश्च त्यागश्च स इदं सर्ववांमुयान् ॥”

अर्थ० जिस पुरुषके वाचा औ मन यह दोनों सम्यक्प्रका-

इसमें काम, लोभ, परका अनिष्टचिंतन, औ असत्यभाषणादि-  
 कोंसें रक्षण किये हुये हैं तिस पुरुषकूंहि वेदाध्ययन, तप,  
 त्याग, ईश्वरपूजनादिक सर्व कर्मोंका यथोक्त फल प्राप्त होवेहै  
 इति ॥ तथा अन्य स्थलमेंभी मोक्षपर्वविषेहि कथन कियाहै  
 “वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं विधिर्त्सावेगमुदरोपस्थवेगम् ॥  
 एतान् वेगान् यो विपहेद्दुर्दीर्णास्तं मन्येहं ब्राह्मणं वै मुनिं च ॥”

अर्थ० अन्तुतादिक भाषणरूप जो वाचाका वेग है औ  
 कामादिक जो मनका वेग है तथा जो क्रोधका वेग है औ  
 जो विधिर्त्साका वेग है तथा मिटान्नभोजनांविवे रुचिरूप  
 जो उदरका वेग है औ स्त्रीसंगमकी अभिलाषारूप जो उ-  
 पस्थका वेग है इन सर्व महावेगोंकूं जो पुरुष संहनं करेहै  
 तिसहिंकूं हम ब्राह्मण औ मुनि मानतेहैं दूसरेकूं नहि इति ॥  
 सो यह ईश्वरपूजन शुद्धमनकरकेहि करणा चाहिये, केवल-  
 पुष्पादिकोंसें नहि, यह वार्ता शंकराचार्यनेभी कथन करीहै

“गभीरे कासारे विशति विजने घोरविपिने

विशाळे शैठि च भ्रमति कुसुमार्थं जडमतिः ॥”

समर्प्यैकं चेतः सरसिजमुमानाथ भवते

सुखेनैव स्यात्तु जन इह न जानाति किमहो ॥”

अर्थ० हे महादेव आपकूं समर्पण करणेयोग्य पुष्पोंके

अर्थ अविवेकी पुरुष निर्जन वन औ गहन तडागविषेभी प्रवेश करतेहैं तथा विकट पर्वतपरभी आरोहण करतेहैं परंतु अपने समीपहि स्थित जो प्रेमरूप सुगंधिकरके युक्त मनरूप सुंदर कमल हैं तिसकूं सुखसँहि आपकेविषे अर्पण करके स्थित नहि होतेहैं यह बड़े आश्चर्यकी वार्ता है इति ॥ तथा प्रारब्धकर्मके अनुसार जिस प्रकारका अन्नवस्त्रादिक शास्त्रोक्त भोग, आय प्राप्त होवें तिसहीमें जो तृप्ति माननी है तिसका नाम संतोष है ॥ सो यह संतोषहि योगीलोंका परम धन है, यह वार्ता पूर्वाचार्योंनेभी कहीहै

‘सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते

शुष्कैस्तृणैर्वनगजा घटिनो भवन्ति ॥

कंदैः फलेर्मुनिवरा गमयन्ति कालं

संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥’

अर्थ० अजरर केवल पवनकाहि आहार करतेहैं परंतु दुर्बल नहि होतेहैं औ वनके रहनेहारे हस्ती शुष्क पत्रतृणादिकोंके भक्षण करनेतेहैं वलवान् औ पुष्ट होतेहैं तथा श्रेष्ठ मुनि ऋषि तपस्वी लोक कंदमूलफलोंकरकेहि सर्व आयुषका निर्गमन करदेतेहैं यातें यह जानाजावेहै जो पुरुषकी संतोषहि परम निधि है इति ॥ तथा मनुस्मृतिमेंभी कहाहै

“संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ॥

संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥”

अर्थ० सर्व सुखोंका मूल संतोष है औ सर्व दुःखोंका मूल तृष्णा है यातें जो पुरुष सर्व सुखकी इच्छा करेहै तिसकूं प्रमादसंरहित होयकरके परम संतोषहि करना चाहिये इति ॥ तथा योगवासिष्ठमेंभी कहाहै

“संतोषैश्वर्यसुखिनां चिरं विश्रांतचेतसाम् ॥

साम्राज्यमपि शान्तानां जरत्तृणलवायते ॥”

अर्थ० जो पुरुष संतोषरूप परम ऐश्वर्यकरके सुखी औ विश्रांतचित्त हैं तिनकूं चक्रवर्ती राज्यका सुखभी शुष्कतृणके समान तुच्छ प्रतीत होवेहै इति ॥ यातें साधकं पुरुषकूं अनायासमें प्राप्त जो भिक्षादिक भोजन औ निवास करणेकूं गुहा आदिक स्थान हैं तिनहीमें संतोष करना योग्य है भोजनादिकोंके अर्थ धनीलोंकोंके अधीन नहि होना चाहिये, यह वार्ता भागवतके द्वितीयस्कंधमें शुकदेवजीनेभी कथन करीहै

“सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासै-

र्वाही स्वसिद्धे नृपवह्णैः किम् ॥

सत्यंजलीं किं पुरुषान्नपाज्या

दिग्बल्कटादी सति किं द्रुकूटैः ॥”

अर्थ० ईश्वरनिर्मित पृथिवीरूप विस्तृत शय्याके होनेतें अन्य पटंग आदिक शय्याके अर्थ काहेको प्रयास करणा चाहिये औ अपनी स्थूल भुजारूप सिरानेके होनेतें अन्य कार्पासादिनिर्मित सिरानोसें क्या प्रयोजन है तथा ईश्वरके दिये हुये अपने दोनों हस्तरूप पात्रके होनेसें पुना अन्य कलशादिक पात्रोंसें क्या प्रयोजन है औ दशों दिशा तथा बल्कल मृगचर्मादिक वस्त्रोंके होनेसें अन्य रेशम आदिक वस्त्रोंसें क्या कार्य है इति ॥ तथा भर्तृहरिनेभी वैराग्य-शतकमें कहाहै

“गंगातरंगकणशीकरशीतलानि

विद्याधराद्युपितचारुशिलातलानि ॥

स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि

यत्सावमानपरिपिंडरता मनुष्याः ॥”

अर्थ० गंगाजीके तरंगके कणकोंकरके शीतल औ विद्या-धरोंकरके सेवित जो हिमालय पर्वतविषे गुहाआदिक सुंदर स्थान ॥ सो इस कालमें क्या नष्ट होगेतेहैं, जो विवेकी पुरुषभी सहित अपमानके स्थानादिकोंके अर्थ धनीलोकोंकी अधीनता करतेहैं इति ॥ यद्यपि यह भर्तृहरिका कहना यथार्थ है तथापि इस कालविषे अन्नकेविना शरीरकी स्थिति नहि संभवैहै, यह बातें पराशरसंहितामेंभी कथन करीहै

“कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांससंस्थिताः ॥

द्वापरे रुधिरं यावत् कलावच्चादिषु स्थिताः ॥”

अर्थ० सत्युगमें प्राणोंकी अस्थियोंविषे स्थिति थी अर्थात् जबपर्यंत शरीरमें अस्थियां रहती थीं तबपर्यंत प्राण शरीरका परित्याग नहिकरतेथे औ त्रेतायुगमें मांसके आश्रय प्राण रहतेथे तथा पुनः द्वापरयुगमें जबपर्यंत शरीरविषे रुधिर रहताथा तबपर्यंत प्राणन हि निकसतेथे औ इस समय कलियुगमें तो अन्नकरके हि प्राणोंकी स्थिति होवेहै आदिशब्दसे दुग्धादिकोंका ग्रहण जानना इति ॥ औ जो पूर्वकालविषे पृथिवीसे कंदमूलादिक निकसतेथे सोभी पापके प्रभावसे इस कालविषे सम्यक्प्रकारसे नहि मिलतेहैं यह वार्ता सुभाषित-रत्नभांडागारमेंभी कथन करीहै

“धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यं च दूरे गतं

पृथ्वी मंदफला नराः कपटिनो वित्तं च परांपाजितम् ॥

राजानोऽर्थपरा न रक्षणपरा नीचा महत्त्वं गताः

साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवन्ति प्राप्ते कलौ दुर्युगे ॥”

अर्थ० जिस कालसे कलियुगका आगमन भयाहै तबसेहि स्वस्वकुलका धर्म जो वेदाध्ययनादिक था सो लोकोंने परित्याग करदिया अर्थात् लोकके वशीभूत होयकरके ब्राह्म-



णभी शूद्रोंकी सेवामें तत्पर होयरहेहैं ॥ औ छच्छूचांद्रायण  
 आदिक व्रतोंका आचरणरूप जो तप था सोभी नष्ट होग-  
 याहै तथा सत्यभाषण करणा तो अनेक योजनोंपर दूरहि  
 चंठा गयाहै औ पृथिवीसें जो मधुर रसदायक कंद मूल  
 फल निकसतेथे सोभी मंद पड गयेहैं तथा पुरुषभी बहुउ-  
 तासं कपटी होगयेहैं औ द्रव्यकाभी पापकरकेहि संघय हो-  
 येहै तथा राजाभी लोभके वंश भये प्रजाकूं पीडन करतेहैं  
 रक्षामें तत्पर नहिहैं औ जो नीच पुरुष थे सो महत्ताकूं प्राप्त  
 होगयेहैं तथा जो निष्कपट साधु पुरुष हैं सो कुशकूं भोगतेहैं  
 औ जो कपटी दुष्ट पुरुष हैं सो मोदपूर्वक विचरते हैं इति ॥  
 यातें पृथिवीविषे कंदमूलोंकी न्यूनता होनेतें औ प्राणोंकूं  
 अन्नके आधार होनेतें इस समयविषे तो साधक पुरुषकूं  
 किसी पवित्र ग्रामके ममीपहि नदीके किनारे अथवा देवालये  
 वा उपवनविषेहि निवास करणा चाहिये, यह यातां मनुस्मृ-  
 तिके पष्ठाध्यायविषेभी कथन करीहै “ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्”  
 अर्थ० त्यागी पुरुषकूं अन्नके अर्थ ग्रामका आश्रय करणा  
 चाहिये इति ॥ इस प्रकारसें ग्रामका आश्रयकरकेभी स-  
 र्वदा एकके गृहविषेहि भोजन नहि करणा चाहिये किंतु  
 भिक्षावृत्तिसेंहि शरीरका निषांह घटाना योग्य है, यह यातां  
 अग्निसंहितामेंभी कथन करीहै

“चरेन्माधुकरिं वृत्तिमपि म्तेच्छकुलादपि ॥

एकान्नं न तु भोक्तव्यं बृहस्पतिकुलादपि ॥”

अर्थ० म्तेच्छके गृहसे अर्थात् शूद्रके गृहसेभी भिक्षाका आचरण करनेना चाहिये परंतु बृहस्पतिकी कुलकाभी पवित्र ब्राह्मण होवे तोभी तिस एककाहि सर्वदा अन्न नहि भक्षण करना चाहिये इति ॥ तथा मनुस्मृतिके द्वितीयाध्यायमेंभी कहाहै

“भिक्षेण वसंयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्भूतो ॥

भिक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥”

अर्थ० ब्रह्मचर्यादिक व्रतके आचरण करनेहारों जो पुरुष है तिसकुं सर्वदा एकका अन्न नहि भक्षण करना चाहिये किंतु भिक्षावृत्तिसंहि वर्तना योग्य है काहेतें व्रती पुरुषकुं भिक्षावृत्ति उपवासके तुल्य ऋषिलोकोने कथन करीहै इति ॥ तथा वसिष्ठसंहितामेंभी कहाहै

“उपवासात्परं भिक्षं दयादानादिशिष्यते” .

अर्थ० दान करनेसे दया करणी अधिक है औ उपवास करनेसे भिक्षाका आहार करना श्रेष्ठ है इति ॥ तथा भर्तृहरिनेभी वैराग्यशतकमें कहाहै

“भिक्षाहारमदन्यमप्रतिहतं भीतिच्छिदं सर्वदा  
 दुर्मात्सर्यमदाभिमानमथनं दुःखौघविध्वंसनम् ॥  
 सर्वत्रान्वयमप्रयत्नसुलभं साधुप्रियं पावनं  
 शोभोः सन्नमवार्यमक्षयनिधिं शंसन्ति योगीश्वराः ॥”

अर्थ० भिक्षाका जो आहार है सो दीनताकरके रहित औ  
 अप्रतिहत है अर्थात् कोईभी भोक्तिसमें विघ्न नहि करसकै है तथा  
 भयके छेदन करनेहारा है काहेतें जो एकके गृहविपेहि सर्वदा  
 भोजन करतेहैं तिनकूहि तिस गृहस्थके प्रतिकूलाचरण करनेसैं  
 भय होवेहै औ मात्सर्य, मद, अभिमानादिकोंकेभी मथन क-  
 रणेहारा है. काहेतें जब हस्तविपे झोलीहि पकडलीया तो अ-  
 भिमानादिक कैसे संभवेहैं ॥ तथा दुःखोंके समूहकूभी नाश  
 करेहै काहेतें क्षुधासैं अधिक अन्नके भक्षण करनेसैंहि अजी-  
 र्णादिक सर्व रोगोंकी उत्पत्ति होवेहै सो अधिक भक्षण रस-  
 दायक अन्नके बिना संभवता नहि औ भिक्षामें विशेषकरके  
 रसदायक अन्नकी प्राप्ति नहि होवेहै यातें रोगोंकी उत्पत्ति  
 नहि होवेहै. ॥ तथा प्रयत्नसैं बिनाहि सुलभ औ विरक्त साधु-  
 जनोंकूं अत्यंत प्रिय तथा सोमपानके समान पवित्र है तथा  
 अवार्य कहिये कोईभी तिसका वारण नहि करसकैहै ऐसा  
 जो अक्षयनिरूप महादेवजीके यज्ञसमान भिक्षाका

अन्न है तिसकी, योगेश्वरलोकभी स्तुति करतेहैं इति ॥  
 औ जो पूर्व नवमश्लोककी टीकाविषे योगाभ्यासीकूं स्निग्ध  
 अन्न भक्षण करणा कथन कियाहै सो तो हठयोगके अभ्यास-  
 सकालमें जानना, अभ्यासके परिपक्व हुये पीछे सो नियम  
 नहि है औ जो अत्यंत वृद्ध अथवा रोगग्रस्त अथवा  
 अभ्यासके परिश्रमसें अतिकृश शरीर होवे तो एकके  
 अन्न भक्षण करनेसेंभी दोष नहि होवेहै परंतु आपत्कालसें  
 बिना राजाका अन्न तो त्यागी पुरुषकूं कदाचिन्भी भक्षण  
 नहि करणा चाहिये, काहेतें तिसका अन्न अत्यंत अपवित्र  
 होवेहै, यह वार्ता मनुस्मृतिके चतुर्थाध्यायविषेभी कथन करीहै

“दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ॥

दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥”

अर्थ० दश कसाईके समान एक तेढो होवेहै औ दश ते-  
 ढियोंके समान एक कटाल होवेहै तथा दश कटालोंके स-  
 मान एक वेश्या होवेहै औ दश वेश्याके समान एक राजा  
 होवेहै यातें तिसका अन्न अतीव अपवित्र होवेहै इति ॥ तथा  
 मतिका लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियाहै

“निहितेपुं च सर्वेषु श्रद्धा या सा मतिर्भवेत् ॥”

अर्थ० वेदविहित जो यज्ञ तप दान योगादिक कर्म हैं

तिनविषे जो असंभावनासे रहित श्रद्धा है, तिसका नाम मति है इति ॥ किंच श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान किया हुआ योगाभ्यास फलदायक होवेहै, यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजली-नेभी कथन करीहै

“श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥”

अर्थ० केचित् देवता आदिकोंक तो जन्मसेहि योगकी सिद्धि होवेहै औ मनुष्योंक तो श्रद्धा वीर्य स्मृति प्रज्ञा इनके अनुष्ठानपूर्वकहि योगकी सिद्धि होवेहै अर्थात् प्रथम श्रद्धा होवे तो अभ्यास करणेमें उत्साहरूप वीर्य होवेहै वीर्यके अनंतर एकसे दूसरी भूमिकाविषयक स्मृति होवेहै तिसके अनंतर चित्तका समाधानरूप समाधि होवेहै समाधिके अनंतर विवेकरूप प्रज्ञा होवेहै तिससे पश्चात् संप्रज्ञात-समाधि होवेहै तिससे अनंतर असंप्रज्ञातसमाधिकी सिद्धि होवेहै इस प्रकार परंपरासे योगकी सिद्धिविषे श्रद्धाहि मूल-कारण है इति ॥ तथा शिवसंहितामेंभी कहाहै

“फलप्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथमलक्षणम् ॥”

अर्थ० यह योगाभ्यास अवश्यमेव फलदायक होवेगा इस प्रकारका जो दृढ विश्वास है सोई योगकी सिद्धिका प्रथम लक्षण है इति ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कहाहै

“वाग्वृद्धं त्रायते श्रद्धा मनोवृद्धं च भारत ॥

श्रद्धावृद्धं वाङ्मनसी न कर्म त्रातुमर्हति ॥”

अर्थ० हे राजन्, जो जपादिक कर्म वाचाकरके भ्रष्ट होवे औ मनकरकेभी भ्रष्ट होवे तो तिसका श्रद्धा रक्षण करेहै औ जो कर्म श्रद्धाकरके भ्रष्ट होवेहै तो तिसका वाचा औ मन कदाचित् रक्षण करणेमें समर्थ नहि होवेहै इति ॥ तथा गी-  
ताके सप्तदशे अध्यायमेंभी कहाहै

“अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥

असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इहं ॥”

अर्थ० हे अर्जुन श्रद्धासंविना यह पुरुष जो. होम दान तप आदिक कर्म करेहै सो तिस कर्मका इस लोक औ परलो-  
कविषे किंचित्भी फल नहि होवेहै किंतु असन् कहिये व्यर्थहि  
होवेहै इति ॥ तथा उज्जाका लक्षणभी याज्ञवल्क्यसंहितामेंहि  
कथन कियाहै

“वेदलौकिकमार्गेषु कुतिसतं कर्म यद्भवेत् ॥

तस्मिन् भवति या हींस्तु उज्जा सैवेति कीर्तिता ॥”

अर्थ० वेदविषे औ लोकविषे जो परस्त्रीगमन मैदिरापा-  
नादिक निन्दित कर्म हैं तिनके करणेमें लोकापवादसें जो भय  
करणा है तिसका नाम उज्जा है इति ॥ यह दश प्रकारसें

नियमोंके टक्षण हैं इति ॥ इस प्रकारसें यमनियमोंके सेवन करनेविषे प्रतिबंधकरूप जो हृदयमें कुतर्का स्फुरें तो तिनका साधककूं विवेकसें निवारण करणा योग्य है, यह वार्ता योग-सूत्रोंमें पतंजलिनेभी निरूपण करीहै

“एतेषां यमनियमानां वितर्कबाधने प्रतिपक्षभानवम् ॥”

अर्थ० इन पूर्वोक्त यमनियमोंके सेवन करनेसें इस अप-

कारी पुरुषकूं मारणा चाहिये, परस्त्रीभी गमन करणी चाहिये, मांसादिकभी भक्षण करणा चाहिये, पराये द्रव्यकाभी हरण करठेना चाहिये, इत्यादिक जो कुतर्का हृदयमें स्फुरण होवें तो तिनका विचारकरके निवारण करणा योग्य है

• सो विचारका प्रकार उक्तसूत्रके भाष्यमें व्यासजीने दिखाया है “घोरेषु संसारांगारेषु पच्यमानेन मया शरणमुपागतः सर्वभूताभयप्रदानेन योगधर्मः स खल्वहं त्यक्त्वा वितर्कान् पुनस्तानाददानस्तुन्यः श्ववृत्तेनेति भावयेत् तथा श्वा वांतावलेही तथा त्यक्तस्य पुनराददान इति ॥” अर्थ० कीट पतंग सर्प आदिक घोर योनियोंविषे नानाप्रकारके क्लेशरूप अंगारोंविषे चिरकालसें जलतेहुयेने मैंने किसी पूर्ववटे सुकनकरके इस जन्मविषे सर्वभूतोंके अभयदानपूर्वक यह योगाभ्यासका आश्रय लियाहै सो मैं सर्व विषयोंका

परित्याग करके पुना जो तिनका सेवन करोंगा तो श्वानके तुल्यहि होवूंगा काहेतें श्वानहि परित्याग करी हुयी अपणी वांतकूं पुना भक्षण करेहै इस प्रकारसे चिंतन करणा चाहिये इति ॥ १० ॥ इस प्रकारसे यमनियमोंके लक्षण वर्णन करके अब तिनके फलोंकूं निरूपण करेहैं ॥

“वंशस्थं वृत्तम्”

स्खलत्यसौ नैव यदा कथंचना-

चलाशयोऽहिंसनमुख्यशीलतः ॥

तदा तु तज्जानि फलान्युपाश्रुते-

ऽविरोधमुख्यान्यचिराद्गुदारधीः ॥ ११ ॥

स्खलतीति ॥ जिस कालविषे उदारबुद्धिवाला यह साधक पुरुष दृढ निश्चयकरके युक्त भया पूर्वोक्त अहिंसा आदिकरूप यमनियमोंसे किसी प्रकारसे कदाचिन्भी चलायमान नहि होवेहै, तात्पर्य यह धर्मशास्त्रमें गुरुके कार्य अर्थ औ अपने फलोंकी रक्षाके अर्थ इत्यादिक पांच स्थलोंमें जो असत्यभाषण करनेकी अनुज्ञा करीहै औ देवता पितृब्राह्मणादिकोंके निमित्त यज्ञादिक स्थलोंमें जो पशु आदिकोंकी हिंसाका विधान



किया है तथा यज्ञसंपूर्तिके अर्थ जो कर्तव्य वैश्यादिकोंके द्रव्य-  
का बलात्कारसे हरण करणा कथन किया है औ तीन रात्रीके  
उपवास होनेमें जो एक दिवसके भक्षण करणे योग्य अन्न-  
की चोरीकी अनुज्ञा करी है इत्यादिक स्थलोंविषेभी जो अ-  
पणे अहिंसा आदिक व्रतोंका परित्याग नहि करे है तो पश्चात्  
जो पुरुष अहिंसा आदिकजन्य जो अविरोधता आदिक फल  
हैं तिनका अनुभव करे है, यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी  
कथन करी है

“अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥”

अर्थ० जिस कालविषे चिरकाल अनुष्ठान करनेसे अ-  
हिंसा व्रतकी स्थिरता होवे है तो तिस पुरुषके समीप सर्व  
प्राणियोंका जो स्वाभाविक वैर है सो नहि रहता अर्थात्  
जिस स्थलविषे सो पुरुष निवास करता है तो तहाँ प्रात भये  
नकुल, सर्प, मूषक, मंजार, मृग, सिंह, गरुड, सर्प, इत्या-  
दिक जो स्वाभाविक परस्पर विरोधि जंतु हैं सो सर्वहि विरो-  
धका परित्याग करके एकत्रहि रहते हैं इति ॥ तथा योगवासि-  
ष्ठके उपशमप्रकरणमेंभी कथन किया है

“समसंविद्धितासाद्ये यद्यदायति देहके ॥

हिंस्रचेतः पतत्याशु समतामेति तत्तदा ॥

योपि देहसमीपात् गत्वा भाषोति हिंस्रताम् ॥”

अर्थ० सर्वविषे आत्मरूपसे समान दृष्टिवाले अहिंसक योगीके शरीरविषे जिस कालविषे सिंहादिक हिंस्र जंतुधोंका चित्त भक्षण करणे अर्थ प्रवृत्त होवेहै तो तिसके समीप जानेसे समभावकूं प्राप्त होय जावेहैं औ जब योगीकी देहसे दूर जावेहै तो पुना अपने पूर्वले हिंस्र स्वभावकूं प्राप्त होवेहैं इति ॥ यार्ते पूर्वकालविषे ऋषिलोक जो गव्वहर वनोंविषे निर्भय निवास करतेथे तिसमें अहिंसाकी स्थिरताहि कारण थी ॥ तथा सत्यका फलभी योगसूत्रोंमेंहि कथन कियाहै

“सत्यमतिष्ठायान् क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥”

अर्थ० जिस कालविषे चिरकालपर्यंत पालन करणेसे सत्यभाषण व्रतकी स्थिरता होवेहै तो तिस पुरुषका वाक्य क्रियाजन्य फलका आश्रयभूत होवेहै अर्थात् जो जो यज्ञ तप दानादिक शुभक्रियाकरके औ कपट लोभ असत्यभाषण हिंसा मदिरापान परस्त्रीगमनादिक अशुभ क्रियाकरके पुरुषकूं स्वर्गनरकादिक फलोंकी प्राप्ति होवेहै सो . सो तिस योगी-पुरुषके वर शापरूप वचनकरकेहि होवेहै इति ॥ तथा अस्तेयका फलभी तहांहि कथन कियाहै

“अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥”

अर्थ० जिस कालविषे चिराभ्याससे अस्तेयव्रतकी स्थिरता होवेहै तो दशोंदिशाविषे जो दिव्य मुक्ताफलादिक रत्न हैं

सो सर्वहि तिस पुरुषके समीप आयकर स्थित होवेहैं अर्थात् श्रद्धालुलोक तिसके प्रति भेटाकरेहैं इति॥ तथा ब्रह्मचर्यका फलभी तहांहि कथन कियाहै

“ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः”

अर्थ० ब्रह्मचर्यके स्थिर होनेतें वीर्यका लाभ होवेहै अर्थात् सो पुरुष जो जो जप तप आदिक क्रिया करेहै सो सो वीर्यवती होवेहै, तथा तिसके मन औ इन्द्रियोंकी शक्ति प्रकर्षताकूं प्राप्त होवेहै तथा आप सिद्ध भया साधकोंके हृदयमें ज्ञानधारण करणेमें समर्थ होवेहै इति ॥ तथा अपरिग्रहका फलभी तहांहि निरूपण कियाहै “अपरिग्रहस्थैर्ये जन्म कथं तासां बोधः”

अर्थ० पंचम श्लोकविषे निरूपण किया जो सर्व गृह स्त्री पुत्रादिकोंका परित्याग तिसके चिरकालविषे स्थिर भयेतें जन्मकथाओंका संघोध होवेहै अर्थात् पूर्वजन्मविषे मैं कौन था मैंने क्या क्या कर्म मैंने कियेहैं तथा इस शरीरके अनंतर मैं कौन होवूंगा औ क्या कर्म करोंगा इस प्रकारसें जिस कालविषे एकद्विचिंत होयकरके योगी भावना करेहै तो उक्तवृत्तांतोंकूं यथार्थ जान लेवेहै ॥ इस स्थलविषे केवल स्त्रीधनादिकोंकाहि परित्याग नहि जानना किंतु शरीरकी अहंममताकाभी

परित्याग करणा चाहिये, काहेतें शरीरविषे अध्यास होनेतें तिसके अनुकूल व्यवहारोंविषे प्रवृत्त भये बहिर्मुख योगीकूं उक्त ज्ञानका प्रादुर्भाव नहि होवेहे इति ॥ तथा शौचका फलभी तहांहि कथन कियाहै “शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः” अर्थ० शौचके स्थिर भयेतें योगीकूं अपने शरीरविषे ग्लानि उत्पन्न होवेहे, काहेतें बारंबार मृज्जलादिकोंकरके शरीरकी शुद्धि करनेसेंभी पुनः अपवित्रका अपवित्रहि रहताहै औ अन्य पुरुषोंके शरीरोंसेंभी असंसर्ग होवेहे, काहेतें जब सम्यक्प्रकारसें मृज्जलादिकोंकरके क्षालन कियेहुये-भी अपने शरीरविषे ग्लानि होवेहे तो अत्यंत अपवित्र जो अन्य संसारी लोकोंके शरीर हैं तिनके साथ किस प्रकारसें निसका संसर्ग होवेगा इति ॥ किंच “सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च”

अर्थ० शौचकी स्थिरताके होनेतें ‘सत्त्वशुद्धि’ कहिये रजोगुण औ तमोगुणकरके चित्तका अनभिभव होना औ ‘सौमनस्यं’ कहिये सत्त्वगुणकी अधिकताकरके चित्तकी प्रसन्नता होनी तथा ‘एकाग्र्यं’ कहिये ध्येयवस्तुविषे चित्तकी युक्तिका सदृश प्रवाह होना औ ‘इन्द्रियजयः’ कहिये विषयोंकी अभिमुखताका परित्यागकरके घृष्ट आदिक इन्द्रियोंकी चित्तके अनुकूल स्थिति होनी ‘आत्मदर्शनयोग्यत्वं’ क-

हिये चित्तका विविकरुष्यातिके अभिमुख होना अर्थात् शौचसे सत्वशुद्धि होवेहै सत्वशुद्धिसे चित्तकी प्रसन्नता होवेहै तिसते अनंतर एकाग्रता होवेहै पश्चात् इन्द्रियोंका जय होवेहै तिसते अनंतर आत्मदर्शनकी योग्यता होवेहै इसप्रकारसे इन सर्वकी प्राप्तिविषे शौचहि हेतुभूत है इति ॥ तथा संतोषका फलभी तहांहि कथन कियाहै ॥

“संतोषादनुत्तमसुखलाभः” अर्थ० संतोषकी स्थिरताके होनेसे साधककं अनुत्तम सुखका लाभ होवेहै इति ॥ तथा इस सूत्रके भाष्यमें व्यासजीनेभी कहाहै

“यश्च कामसुखं लोके यश्च दिव्यं महत्सुखम् ॥  
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कठाम् ॥”

अर्थ० जो इस लोकके स्त्रीधनादिक सर्व विषयोंकी प्राप्तिकरके सुख होवेहै औ जो स्वर्गलोकके अप्सरादिक दिव्य विषयोंकी प्राप्तिकरके सुख होवेहै सो सर्वहि संतोषजन्य सुखके सोलमां भागके समानभी नहि होवेहै इति ॥ तथा तपका फलभी तहांहि कथन कियाहै ॥

“कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥”

अर्थ० दीर्घकालपर्यंत अनृष्टान करणसे तपकी स्थिरताके भयेते शरीर औ चक्षुआदिक इन्द्रियोंकी शुद्धिके होनेते

अणिगा, लघिमा, महिमा, आदिक जो शरीरकी सिद्धियां हैं औ दूरश्रवण, दिव्यदृष्टि आदिक जो इन्द्रियोंकी सिद्धियां हैं तिनकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ तथा जपका फलभी तहांहि कथन कियाहै “स्वाध्यायादिष्टदेवतासंभयोगः” अर्थ० गायत्री आदिक पवित्र मंत्रोंके दीर्घकालपर्यंत पूर्वोक्त विधिसें जप करनेसें इष्ट देवताका संभयोग होवेहै अर्थात् देवता औ सिद्धोंका समागम होवेहै इति ॥ तथा उक्त सूत्रके भाष्यविषे व्यासजीनेभी कहाहै “देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्यं चास्य वर्त्तत इति ॥” अर्थ० जप करनेहारे पुरुषका दर्शन करनेके अर्थ देवता, ऋषि औ सिद्धभी आगमन करतेहैं औ तिसके साथ वार्तालाप वरदानादिक कार्यभी करतेहैं इति ॥ तथा ईश्वरपूजनका फलभी तहांहि निरूपण कियाहै “समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्” चिरकालपर्यंत चित्तरूप पुष्पके समर्पणपूर्वक ईश्वरके पूजन करनेसें प्रयासके बिनाहि समाधिकी सिद्धि होवेहै जिसकरके साधककुं सर्व वांछित पदार्थोंकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ यह यमनियमोंके फल हैं ॥ औ जो इस स्थलमें अनुक्त अवशेष रहे क्षमा, धृति आर्जवादिक यमनियम हैं तिन सर्वका परंपरासें समाधिकी सिद्धिहि फल जानलेना इति ॥ ११ ॥

इस् प्रकारसें यमनियमोंके फल निरूपण करके अब योगका तृतीय अंग जो आसन है तिसका वर्णन करेंगे ॥

“इन्द्रवशा वृत्तम्”

पीठान्यनल्पानि वदन्ति योगिन-

स्तेषां चतुष्कं तु तथोत्तमोत्तमम् ॥

तत्रापि यत्स्थैर्यसुखावहं भवे-

त्तच्चैव योगेप्सुरिहाभ्यसेत्सदा ॥ १२ ॥

पीठानीति ॥ शरीरकी स्थिरता औ सुखके हेतु जो आसन हैं तिनके योगीलोंकोने अनेकहि भेद कथन कियेहैं सो तिन सर्वके भेदोंकं महायोगी जो महादेवजी हैं सोई जानतेहैं, यह वार्ता गोरक्षशतकमेंभी कथन करीहै

“आसतानि च तावन्ति यावन्त्यो जीवजातयः ॥

एतेषामखिलान् भेदान्विजानाति महेश्वरः ॥

चतुरशीतिलक्षाणि एकैकं समुदाहृतम् ।

“ततः शिवेन पीठानां षोडशोऽनं शतं कृतम् ॥”

अर्थ० जितनी चौरासी उक्ष जीवजाति हैं, तितने प्रकारकेहि आसन हैं सो तिन सर्वके भेदोंकं महादेवजीहि जानतेहैं

सो चौरासी लक्ष आसनोंमेंसे महादेवजीने चौरासी आसन मुख्य कियेहैं इति ॥ पुना तिन चौरासी आसनोंमेंभी स्वा-  
त्माराम योगीने च्यारि आसन मुख्य कथन कियेहैं सो तिन  
च्यारोंके नाम औ लक्षण हठयोगप्रदीपिकाविषे निरूपण  
• कियेहैं •

“चतुरशीत्यासनानि शिवेन कथितानि च ।

तेभ्यश्चतुष्कमादाय सारभूतं ब्रवीम्यहम् ॥

सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रं चेति चतुष्टयम् ॥”

अर्थ० चौरासी लक्ष आसनोंमेंसे जो मुख्य चौरासी आ-  
सन महादेवजीने कथन कियेहैं तिनमेंसेभी श्रेष्ठ जो सिद्धा-  
सन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन यह च्यारि आसन हैं  
तिनके पृथक् पृथक् लक्षण हम कथन करतेहैं इति ॥ तिनमें

“योनिस्थानकमंघ्रिमूढघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे-

न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम् ॥

स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद्भुवोरंतरं

ह्येतन्मोक्षकंपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥”

अर्थ० वामपादकी एडीकूं गुदा औ ढिंगके मध्यदेश-  
विषे स्थापन करणां औ दक्षिणपादकी एडीकूं ढिंगके ऊप-  
रदेशमें स्थापन करणा तथा मुखकी ठोडीकूं हृदयके समीप-



देशविषे लगाना औ सर्व इन्द्रियोंकूं वशीभूतकरके स्थाणु-  
को न्याई अचल होयकर बैठना तथा दृष्टिकूं भ्रूवोंके मध्य-  
देशविषे लगाना इसकूं मोक्षद्वारके कपाट भेदनकरणेहारा  
सिद्धासन योगीलोक कथन करतेहैं इति ॥ तथा

“वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा  
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढाम् ।  
अंगुष्ठौ हृदये निधाय चित्रकं नासाग्रमालोकये-  
देतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते ॥”

अर्थ० दहने पादकूं वाम ऊरूपर औ वामपादकूं दहने  
ऊरूपर स्थापन करे औ शरीरके पश्चिम भागसँ दोनों हा-  
थोंकूं फेरकरके दोनों पादके अंगुष्ठोंकूं दृढ ग्रहण करे तथा  
हृदयदेशके समीप मुखकी ठोड़ीकूं जमावे औ नासाके अग्र-  
भागविषे दृष्टि रखे यह योगीलोकोंकी सर्व व्याधियोंके ना-  
श करणेहारा पद्मासन कहियेहै इति ॥ तथा

“गुल्फौ च घृणस्याधः सीधन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् ॥  
दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके ।  
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वांगुलीः संनसायं च ॥  
व्याचवक्त्रो निरीक्षेत नासाग्रं सुसमाहितः ।  
सिद्धासनं भवेदेतत्पूजितं योगिपुंगवैः ॥”

अर्थ० वृषणके नीचे सीवनीके दक्षिण देशमें वामपादके गुल्फकूं स्थापन करे औ वामभागविषे दक्षिणपादके गुल्फकूं लगावे तथा जानुवोंके ऊपर अपणी अंगुली फैलायकरके दोनों हाथ स्थापन करे तथा मुखकूं खोलकर औ जिह्वाकूं बाहिर निकासकरके नासाके अग्रभागविषे दृष्टि लगायकर एकाग्रचित्तसे स्थित होवे यह योगीलोंकोकरके पूजित सिंहासन कहियेहै इति ॥ तथा

“गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् ।

सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फं तु दक्षिणे ॥

पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं बध्वा सुनिश्चलम् ।

भद्रासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशनम् ॥”

अर्थ० वृषणके नीचे सीवनीके वामभागमें वामपादका गुल्फ स्थापन करे औ दक्षिणभागविषे दक्षिणपादका गुल्फ स्थापन करे तथा पार्श्वके समीप आये जो पाद तिन दोनोंकूं हाथोंसे दृढ जोडकरके स्थित होवे यह सर्व रोगोंके नाश करनेहारा भद्रासन कहियेहै इति ॥ इन उक्त च्यारी आसनोंमेंभी जो अपने शरीरकी स्थिरता औ सुखका हेतु होवे तिसकाहि साधककूं सर्वदा अभ्यास करणा योग्य है परंतु

विशेषकरके योगाभ्यासविषे सिद्धासन औ पद्मासन यह दोहि उपयोगी हैं औ स्वात्माराम योगीने तो तिनमेंभी एक सिद्धा-सन्निहि उत्तम कथन कियाहै ॥

“मुख्यं सर्वासनेष्वेकं सिद्धाः सिद्धासनं विदुः ।

धनुरशीतिपीठेषु सिद्धमेव सदाभ्यसेत् ॥”

अर्थ० योगीलोक सर्व आसनोंमें एक सिद्धासनकूंहि मुख्य जानते हैं यार्ते साधक पुरुषकूं चौरासी प्रकारके आसनोंमेंभी मुख्य जो सिद्धासन है तिसहिका विशेषकरके अभ्यास कृष्णा योग्य है, तात्पर्य यह है कि हठयोगके अभ्यासमें सिद्धासनकी प्रधानता है औ राजयोगके अभ्यासमें पद्मासनकी प्रधानता है सो स्वात्मारामने हठयोगके अभिप्रायसे सिद्धासनकी प्रधानता कथन करीहै इति ॥ १२ ॥ इस प्रकार संक्षेपसे आसनोंके लक्षण निरूपण करके अब निसके फलकूं वर्णन करेहैं ॥

( द्रुतविलंबितं वृत्तम् )

अनलसत्त्वमुपस्थवलक्षयो-

ऽनिलनिरोधपटुत्वमनूर्मिता ॥

पवेनमंथरताप्युपजायते

स्थिरमतेरिह पीठजयाद्भुवम् ॥ १३ ॥

अनलसत्त्वमिति ॥ चिरकाठके अभ्यास करनेसे जिस कालविषे आसनका जय होवेहै तो 'अनलसत्त्व' कहिये योगाभ्यासविषे महाप्रतिबंधक जो आलस्य है तिसकी निवृत्ति होवेहै ॥ औ 'उपस्थवलक्षयः' कहिये उपस्थ इन्द्रियका जो बल है तिसकीभी क्षीणता होवेहै काहेतें लिंग औ गुदाके मध्यदेशविषे जो सीवनीकी नाडी है तिसद्वाराहि वोर्यका निर्गमन औ उपस्थके बलकी वृद्धि होवेहै सो जिस कालविषे सिद्धादिक आसनकरके सीवनीका दृप्तत्व होवेहै तो उपस्थ इन्द्रियका बल क्षीण होय जावेहै ॥ तथा 'अनिलनिरोधपटुत्वं' कहिये अनिल जो प्राणवायु है तिसके निरोध करनेमेंभी सामर्थ्य होवेहै काहेतें चठने औ शयनकालविषे प्राणोंकी गतिका निरोध नहि संभवहै ॥ तथा 'अनूर्मिता' कहिये क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, राग, द्वेष; यह जो पटु ऊर्मियां हैं तिनकीभी पीडा नहि होवेहै काहेतें चठने फिरनेसेह विशेषकरके क्षुधा पिपासा आदिकोंकी वृद्धि होवेहै इति ॥ यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करीहै 'ततो दंदानभिघातः' अर्थ० आसनके जय

होनेतें पश्चात् साधक पुरुषकूं शीतोष्णादिक दंडोंकी बाधा नहिं होवेहै इति ॥ तथा ( पवनमंथरता ) कहिये प्राणवायुकी गतिभी मंद मंद होवेहै काहेतें जैसे चलनेकाल अथवा पर्व-तदिकोंपर आरोहणकालविषे प्राणोंकी शीघ्र गति होवेहै तैसे बैठनेकालविषे नहिं होवेहै इति ॥ औ जो मयूरासन, पश्चिमतानासन, मत्स्येन्द्रासन, शवासन इत्यादिक आसनोंके अजीर्णादिक रोगशांतिआदिक अवांतर फल हैं सो हठयोगमदीपिकाविषे विस्तारपूर्वक कथन कियेहैं तहां देखलेने, यहां विस्तारके भयसे नहिं लिखेहैं ॥ किंच योगकी सिद्धिभी आसनके जय करणे-तेंहिं होवेहै काहेतें जो पुरुष दो अथवा तीन मुहूर्त एक आसनसें बैठहिं नहिं सकैहै सो योगाभ्यास करणमें कैसे समर्थ होवेगा ॥ यह वार्ता शारीरकसूत्रोंमें व्यासजीनेभी कथन करीहै “आसीनः संभवात्” अर्थ० आसन उगायकर बैठने-सेंहि योगाभ्यास करणा योग्यहै काहेतें आसन उगायकर बैठनेसेंहि योगकी-सिद्धि संभवेहै इति ॥ सो निस आसनकी सर्व प्रयत्नोंके शिथिलकरणसें औ शेषनागजीके स्मरण करणेसेंहि शीघ्र सिद्धि होवेहै यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी निरूपण करीहै “प्रयत्नशैथिल्यानंतसमापत्तिभ्याम्” अर्थ० ती-थंयात्रादिक वैदिक टांकिक सर्व प्रयत्नोंके शिथिल करणेसें औ शेषनागजीके ध्यानकरकेहि आसनकी सिद्धि होवेहै

इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकाकी टीकाविषेभी लिखाहै “अ-  
नंतं प्रणमेद्देवं नागेशं पोठसिद्धये” अर्थ० आसनकी सिद्धिके  
अर्थ साधक पुरुषकूं प्रथम सर्व नागोंका ईश्वर जो शेषभग-  
वान् है तिसकूं नमस्कार करणा योग्य है इति तथा नं-  
मस्कार करणेका मंत्रभी तहांहि कथन कियाहै “मणिभ्राजत्  
फणासहस्रविवृतविश्वंभरामंडलायानंताय नागराजाय नमः”  
अर्थ० हे दिव्यमणियोंकरके प्रकाशमान सहस्रफुणोंपर सर्व  
पृथिवीमंडलके धारण करणेहारे सर्व नागोंके राजा अनंतजी  
आपके प्रति मेरी बारंबार नमस्कार होवो ॥ १३ ॥, इस  
प्रकारसे आसनजयका फल निरूपण करके अब योगका च-  
तुर्थ अंग जो प्राणायाम है तिसका टक्षण कथन करैहैं ॥

( वंशरथं वृत्तम् )

ततोऽनिलायामचतुष्क्रमभ्यसे-

द्दहर्निशं रेचकमुख्यसंज्ञकम् ॥

क्रियाभिराशुद्धतनुर्मितक्रियः

शनैश्शनैर्देशिकवाक्यचोदितः ॥ १४ ॥

तत इति ॥ ‘ततः’ कहिये आसनजयके अनंतर स्व-  
गुरु गणेश महादेवादिकोंकूं नमस्कार करके प्राणायामका श्र-

भ्यास करणा चाहिये काहेतें गणेशादिकोंकूं नमस्कार कियेतें विना प्राणायामकी निर्विघ्नसिद्धि नहि होवेहै, यह वार्ता कूर्मपुराणमें महादेवजीनेभी कथन करीहै ॥

“नमस्कृत्वाथ योगोन्द्रान् सशिष्यांश्च विनायकम् ।

गुरुं चैवाथ मां योगी युंजीत सुसमाहितः ॥

न सिध्यति महायोगी मदीयाराधनं विना ॥”

अर्थ० ‘हे पार्वति, सहितशिष्योंके जो गोकुलादिक योगो-  
श्वर हैं औ सर्व विघ्नोंके नाश करता जो विनायकहैं औ यो-  
गविद्याका अध्यापक जो आपणा गुरु है तथा सर्व योगकी  
सिद्धिके दाता जो हम हैं तिन सर्वकूं आदिविषे नमस्कार  
करकेहि साधक पुरुषकूं प्राणायामका अभ्यास करणा चा-  
हिये औ जो हमारे आराधन कियेतें विनाहि अभ्यास करेहै  
सो यद्यपि महायोगीराजभी होवे तो सिद्धिकूं नहि प्राप्त  
होवेहै इति सो प्राणायाम रेचक, पुरक, सहितकुंभक, के-  
वलकुंभक, इस भेदसे च्यारि प्रकारका है तिनमें प्रथम तीनों  
के लक्षण-अथर्ववेदकी अमृतविंदुउपनिषत्में निरूपण कियेहैं

“उत्तिक्षप्य वायुमाकाशं शून्यं कृत्वा निरात्मकम् ।

शून्यभावेन युंजीयाद्रेचकस्येति संक्षेपम् ॥”

अर्थ० उदरगत सर्व प्राणवायुका नासापुटद्वारा बहिर

विरेचनकरके आकाशविषे निश्चल धारण करे औ शरीरकुं वायुमें रहितकरके शून्यभावमें स्थित होवे यह रेचक प्राणायामका लक्षण है इति ॥ तथा “वक्त्रेणोत्पलनालेन तोयमाकर्षयेन्नरः । एवं वायुर्गृहोत्तम्यः पूरकस्येति लक्षणम् ॥”

अर्थ० जैसे मुखरूप कमलकी नादकरके पुरुष पानीका आकर्षण करेहै तैसेहि वायुस्थित प्राणवायुकुं मुखसें अथवा नासाद्वारा अभ्यंतर आकर्षणकरके प्राणोंकी नीचे ऊपर गतिका जो निरोध करणा है तिसका नाम पूरक प्राणायाम है इति ॥ तथा “नोच्छ्रसेन्न च निःश्वसेन्नैव गात्राणि घाटयेत् । एवं तावन्निपुंजीत कुंभकस्येति लक्षणम् ॥” अर्थ० मृथुम् रेचक अथवा पूरकसें प्राणोंका निरोधकरके पश्चात् रेचक पूरकसें रहित होयकर शरीरके सर्व अवयवोंकुं अचल धारण करे इस प्रकारसें जो प्राणवायुका संयमन करणा है तिसका नाम सहितकुंभकप्राणायाम है ॥ औ चतुर्थं जो केवल कुंभक है तिसका लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियाहै

“रेचकं पूरकं त्यक्त्वा सुखं यदायुधारणम् ।

प्राणायामोयमित्युक्तः स वै केवलकुंभकः ॥”

अर्थ० न रेचक करणा औ न पूरक करणा किन्तु नामा-पुष्टिमें स्थित प्राणवायुका एकवारहि जो सुखपूर्वक तहांहि



निगोध करणा है तिसका नाम केवल कुंभकप्राणायाम है इति ॥ सो जबपर्यंत यह केवल कुंभक नहि सिद्ध होवे तबपर्यंत सहितकुंभककाहि अभ्यास करणा चाहिये, यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै “यावत्केवलसिद्धिः स्यात्तावत्सहित अभ्यसेत् ॥” अर्थ० जबपर्यंत केवल कुंभककी सिद्धि नहि होवे तबपर्यंतहि सहितकुंभकका अभ्यास करणा योग्य है केवल कुंभककी सिद्धिके अनंतर नहि इति ॥ सो इस केवल कुंभकसेहि समाधिकी शीघ्र सिद्धि होवेहै, यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै ॥

“केवले कुंभके सिद्धे रेचकपूरकवर्जिते ।

न तस्य दुर्लभं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥”

अर्थ० रेचकपूरककरके वर्जित जो केवल कुंभक है तिसकी सिद्धिके भयेतें योगी पुरुषकूं त्रैलोक्यविषे किंचित् वस्तुभी दुर्लभ नहि होवेहै अर्थात् समाधि आदिक सर्वहि सुलभ होवेहै इति ॥ पुनः यह कुंभक अवांतर भेदसँ अष्टप्रकारका है सो तिन सबके नाम औ लक्षण हठयोगप्रदीपिकाविषे निरूपण कियेहैं ॥

“सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा ॥

भ्रमिका भ्रामरी मूर्च्छा श्वावनीत्यष्ट कुंभकाः ॥”

अर्थ० सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, आमरी, मूर्च्छा, घ्रावनी, इस, भेदसे कुंभक अष्टप्रकारके हैं इति ॥ तिनमें

“दक्षनाड्या समाकृत्य वह्निःस्थं पवनं शनैः ।

आकेशादानत्वात्वाच्च निरोधावधि कुंभयेत् ॥

ततः शनैः सव्यनाड्या रेचयेत्पवनं सुधीः ।

पुनःपुनरिदं कार्यं सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥”

अर्थ० घ्रातृस्यवायुकुं प्रथम दक्षिण नासापुटसे शनैः शनैः अभ्यन्तर आकर्षणकरके शिखासे लेकर नखपर्यंत सर्व शरीरविषे यथाशक्ति कुंभक करे पश्चात् वामनासापुटसे शनैः शनैः रेचन करे इसका नाम सूर्यभेदनकुंभक है सो यहि वारंवार करने योग्य है इति ॥ तथा

“मुखं संयम्य नाडीक्ष्यामाकृत्य पवनं शनैः ।

यथा तृणनि कंठान्तु हृदयावधि सरवनम् ॥

पूर्ववत्कुंभयेत्प्राणं रेचयेद्रिदया ततः ।

गच्छता निष्ठता कार्यमुज्जाप्यास्थं तु कुंभकम् ॥”

अर्थ० मुखकुं यंद करके जिस प्रकार सहित शब्दके कंठमें हृदयपर्यंत प्राणवायु स्पर्श करे तैसेहि पूर्वोक्त प्रकारमें दक्षिणनासापुटद्वारा आकर्षण करे पश्चात् यथाशक्ति कुंभक-

करके वामनासापुटद्वारा रेचन करे इसका नाम उज्जायीकुंभक है सो यह चठते बैठते सर्वकालविषेहि करणेयोग्य है इति ॥ तथा

“सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृम्भिकाम् ।

एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ॥”

अर्थ० सीत्कारपूर्वक मुखसे वायुका आकर्षण करे पुना यथाशक्ति कुंभककरके नासांद्वारा रेचन करे इसका नाम सीत्कारीकुंभक है इसके अभ्यास करनेमें योगी कामदेवके समान सौंदर्यकरके युक्त होवेहै इति ॥ तथा

“जिह्वया वायुमारुह्य पूर्ववत् कुंभसाधनम् ।

शनैः शनैः रेचयेत् पवनं सुधीः ।

विपाणि शीतली नाम कुंभिकेयं निहंति हि ॥”

अर्थ० काकचंचुकी न्याई जिह्वाकुं मुखसे किंचित् बाहिर निकासकरके बाह्यस्थित वायुकुं अभ्यंतर आकर्षण करे, तथा पूर्वोक्त प्रकारसे यथाशक्ति कुंभककरके पश्चात् नासापुटोंसे शनैः शनैः रेचन करे यह शीतलीकुंभक कहिये है इसके चिरकाल अभ्यास करनेसे सर्वभकारके विषोंका शरीरविषे असर नहि होवेहै इति ॥ तथा

“पुनर्विरेचयेत् तद्वत् पूरयेच्च पुनःपुनः ।

यथैव टोहकारेण भस्त्रा येगेन धाल्यते ॥

तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत् पवनं शनैः ।

विशेषणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुंभकं त्विदम् ॥”

अर्थ० मुखकूं बंदकरके जैसे टोहकार भस्त्राकूं चलावता है तैसेहि अपणो शरीरमें स्थित जो प्राणवायु है तिसकूं एक नासाद्वारसें रेचन करे पुना दूसरे नासाद्वारसें शीघ्रहि पूरक करे पुना रेचक करे पुना शीघ्र पूरक करे जिस पुटसें रेचक करे तिसहिसें पूरक करे इसप्रकार बारंवार रेचकपूरक करतेहुये जिस कालमें परिश्रम होवे तो दक्षिणनासापुटसें पूरक करे पश्चात् यथाशक्ति कुंभककरके वामनासापुटसें रेचक करे पुना पूर्ववत्हि रेचक पूरक करे इसका नाम भस्त्रिकाकुंभक है सो सर्वकुंभकोंसें यहि विशेषकरके करणा “योग्य है इति ॥ तथा “वेगात् घोषं पूरकं भृंगनादं भृंगीनादं रेचकं मंदमंदम् । योगीन्द्राणामेवमभ्यासयोगाच्चित्ते जाता काचिदानंदलीला” ॥ अर्थ० जैसे भ्रमरका शब्द होवेहै तैसेहि गुंजारसहित वामनासापुटसें वायुका पूरक करे पश्चात् यथाशक्ति कुंभककरके जैसे भ्रमरीका शब्द होवेहै तैसेही मध्यमगुंजारसहित दक्षिणनासापुटसें शनैशनै रेचक करे इसका नाम आमरीकुंभक है इसके अभ्यास करनेसें योगीन्द्र टोकोंके हृदयमें कोई अद्भुत आनंदकी लीला होवेहै इति ॥

तथा “पूरकांते गाढतरं बध्वा जालंधरं शनैः । रेचयेन्मूर्च्छा-  
नास्त्येयं मनोमूर्च्छां सुखप्रदा” ॥ अर्थ० पूरक करनेमें प-  
श्चात् वक्ष्यमाण जालंधरबंधक कंठमें दृढ स्थापन करे पश्चात्  
यथाशक्ति कुंभककरके प्राणवायुकुं नासापटोंसे शनै शनै  
रेचक करे इसका नाम मूर्च्छाकुंभक है इसके अभ्यास करने-  
में मनकी मूर्च्छाद्वारा आनंदकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ तथा

“अंतःप्रवर्तितोदारमारुता पूरितोदरः ॥

पयस्यगाधेपि सुखान् भुवते पद्मपत्रवत् ॥”

अर्थ० बाह्यस्थितवायुकुं उदरपूर्तिपर्यंत पूरक करनेसे योगी  
लोक अगाधजलविषे कमलपत्रकी न्याई ऊपर तरेहै सो प्रा-  
चनीकुंभक कहियेहै इति ॥ यह अष्टकुंभकोंके लक्षण हैं ॥  
पुना कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम इसभेदसे कुंभक तीन प्रकारके  
हैं तिन तीनोंके लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियेहैं

“प्रस्वेदजनको यस्तु प्राणायामेषु सोधमः ॥

कम्पे च मध्यमः शोक्त उत्थाने चोत्तमो भवेत् ॥”

अर्थ० जिसकालविषे प्राणके कुंभक करनेसे शरीर-  
विषे प्रस्वेदकी उत्पत्ति होवेहै सो कनिष्ठकुंभक कहिये औ  
जिस कालविषे कुंभककरनेसे शरीरविषे कंप होवेहै तिसका  
नाम मध्यमकुंभक है तथा जिसकालविषे कुंभककरनेसे पृथि-



प्रदक्षिणाकरके पश्चात् एक चुटकी देवे इतने काटकी मात्रा संज्ञा है इति ॥ अन्यभी मात्राके बहुत भेद हैं सो विस्तारके भयसे यहां नहि दिखाये हैं ॥ इस प्रकारसहित संख्याके साधकपुरुषकं अष्टमहरमें च्यारिवार प्राणायामका अभ्यास करणा चाहिये यह बात श्वात्मारामयोगीनेभी कथन करीहै

“प्रातर्मध्यंदिने सायमर्धरात्रे च कुंभकान् ॥

शनैर्दुशीतिपर्यंतं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥”

अर्थ० प्रातःकाल, मध्यान्हकाल, सायंकाल, अर्धरात्रीमें इन च्यारीकालोंविषे असी असी० प्राणायाम करणे चाहिये अर्थात् अष्टमहरामें ३२० प्राणायाम करणे चादिये इति ॥ सो यह प्राणायाम देवताके ध्यानपूर्वकहि करणा चाहिये नहीं तो निर्विघ्नसिद्ध होना बहुत कठिन है सो ध्यानका प्रकार अथर्ववेदकी ध्यानविंदुउपनिषत्में निरूपण किया है

“अतसीपुष्पसंकाशं नाभिस्थाने प्रतिष्ठितम् ॥

चतुर्भुजं महावीरं पूरकेण विचिंतयेत् ॥”

अर्थ० प्राणके पूरककाटविषे नाभिदेशमें अतसीपुष्पके समान नीलवर्ण औ चतुर्भुजोंकरके युक्त तथा शंखचक्रादिक आयुधोंकरके शोभायमान औ लक्ष्मीकरके समन्वित विष्णु भगवान्का ध्यान करणा चाहिये इति ॥ तथा ।

“कुंभकेन हृदि स्थाने चिंतयेत् कमलासनम् ॥

ब्रह्माणं रक्तगौरांगं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥

अर्थ० प्राणके कुंभकसमयविषे हृदयस्थानमें चतुर्मुखोंके-  
रके युक्त और रक्तवर्ण कमलासन सर्वके पितामह ब्रह्माका  
ध्यान करे इति ॥ तथा

“रेचकेन तु विद्याच्च ललाटस्थं त्रिलोचनम् ।

शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्णकलं पापनाशनम् ॥”

अर्थ० प्राणके रेचककालविषे ललाटदेशमें शुद्धस्फटिकम-  
णिके समान गौरवर्णकरके युक्त और सर्वपापोंके नाश करने-  
हारे सर्वकालसें अतीत त्रिलोचनमहादेवका ध्यान करे इति॥  
इस प्रकार देवताके ध्यानविषे मनके स्थिर होमेतें प्राणका  
स्वतेहि निरोध होयजावे है काहेतें प्राण और मनकी परस्पर  
तेंदात्मता है, यह वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कथन करीहै

“दुग्धावुत्संमिलतावुभौ तौ तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ।

यतो मरुत्तत्र मनःप्रवृत्तिर्यतो मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः ॥”

अर्थ० जैसे दुग्ध और जल मिलकर एकरूप होयजावेहैं तै-  
सेहि मन और प्राण दोनों एकस्वरूप हैं सो जिसकालविषे  
प्राणका स्फुरण होवेहै तो मनकाभी स्फुरण होवेहैं और जि-  
सकालविषे मनका स्फुरण होवेहै तो प्राणकाभी स्फुरण



होवेहै इस प्रकारसेँ तिन दोनोंकी तुल्यहि क्रिया है इति ॥  
 सो तिन दोनोंमेंसेँ एकके निरोध करणसेँ दूसरेकाभी  
 निरोध होयजावेहै यह वार्ता अमनस्कखंडविषे महादेवजीनेभी  
 निरूपण करी है

“प्राणो यत्र विलीयते मनस्तत्र विलीयते ।

मनो विलीयते यत्र प्राणस्तत्र विलीयते ॥”

अर्थ० हे, वामदेव, जिस कालविषे प्राणवायुका विलय  
 होवेहै तो मनकाभी विलय होवेहै औ जिसकालविषे म-  
 नका विलय होवेहै तो प्राणवायुकाभी विलय होवेहै इति ॥  
 तिन दोनोंमेंभी मनका निरोध करणा सुकर है यह वार्ताभी  
 तहांहि कथन करीहै

“तत्राप्यसाध्यः पवनस्य नाशः

षडङ्गयोगस्य निषेवणेन ॥

मनोविनाशस्तु गुरुप्रसादा-

न्निमेषमात्रेण सुसाध्य एव ॥”

अर्थ० तिन दोनोंमेंभी प्राणवायुका षडंगयोगके अभ्यास-  
 करके निरोध करणा असाध्य अर्थात् दुःसाध्य है औ मनका

१ सुप्रतिकालमेंतो अपने कारणविषे विलीन होनेते मनका अभा-  
 वहि होयजावेहै याते तिनकी सहचारताके अभाव होनेते प्राणका  
 विलय नहि होवेहै ॥

निरोध विषया तो गुरुउक्त पट्चक्रादिकोंविषे धारणारूप यु-  
क्तिसँ निमेषमात्र' अर्थात् अल्पकालविषेहि सुसाध्य है इति॥  
यातें साधक पुरुषकूं प्राणायामके अभ्यासकालविषे उक्त-  
देवताका ध्यानकरके मनका निरोधभी अवश्य संपादन कै-  
रणा योग्य है ॥ तथा प्राणके निरोध करनेमें शीघ्रताभी नहि  
करणी चाहिये किंतु शनैःशनैहि निरोध करना चाहिये यह  
वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कथन करीहै

“यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैःशनैः ।

तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम् ॥

युक्तं युक्तं त्यजेद्वार्यु युक्तं युक्तं च पूरयेत् ।

युक्तं युक्तं च वभीयादेवं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥”

अर्थ० जैसे वनके विचरणेहारे सिंह, हस्ति, व्याघ्रादिक  
कूर जंतु शनैशनै उपायपूर्वक वशीभूत होतेहैं औ जो उपायसँ  
विना तिनकूं शीघ्रहि पकडने जाताहै सो नाशकूं प्राप्त होवेहै  
तैसेहि प्राणवायुभी प्राणायामादिक उपायपूर्वक शनैःशनैहि  
वशीभूत होवेहै नहि तो कासश्वासादिक रोगोंकी उत्पत्ति-  
द्वारा उलटा साधकपुरुषका नाश करे है ॥ यातें युक्तिपूर्व-  
कहि प्राणका रेचन करे औ युक्तिपूर्वकहि पूरक करे तथा  
युक्तिपूर्वकहि कुंभक करे काहेतें युक्तिपूर्वक शनैःशनैःकरणेसँ-  
हि प्राणवायुके जयरूपं निद्रिकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ तथा  
हठयोगप्रदीपिकाकी टीकाविषेभी लिखा है

“हठान्निरुद्धः प्राणोयं रोमकूपेषु निःसरेत् ।

देहं विदारयत्येष कुष्ठादि जनयत्यपि ॥

ततः प्रत्यायितव्योसौ क्रमेणारण्यहस्तिवत् ॥”

अर्थ० केवल हठकरके अत्यंत निरोध कियाहुया प्राण-  
वायु रोमछिद्रोंसे निकसजावेहै तिसके रोमद्वारा निकसनेतें  
शरीरविषे कुष्ठादिरोगोंकी उत्पत्ति होवेहै यातें गुरुमुखद्वारा  
युक्तिपूर्वक घनके हस्ती सिंहादिकोंकी न्याईं शनैः शनैहि प्रा-  
णकूं वशीभूतकरणा योग्यहै इति ॥ पूर्वोक्त यमनियम औ  
आसनके अनुष्ठानकालमें विशेषकरके गुरुकी अपेक्षा नहि  
होवेहै परंतु प्राणायामके अभ्यासकालमें तो अवश्यमेव ग-  
रुकी अपेक्षा चाहिये । यह घाता योगबीजमें महादेवजीनेंभी  
कथन करीहै

“मरुज्जयो यस्य सिद्धस्तं सेवेत गुरुं सदा ।

गुरुवक्त्रमसादेन कुर्यात्प्राणजयं बुधः ॥”

अर्थ० हे पार्यति साधककूं जिस गुरुके प्राणजय सिद्ध हुया  
हीवे तिसहिकी सर्वदा सेवा करणी चाहिये औ जिसप्रका-  
रसें सो प्राणजय करणेकी विधि बतावे तैमेहि अभ्यास  
करे इति ॥ तथा अमनस्कखंडमेंभी महादेवजीनेहि कहाहै

“वेदांततर्कान्किमिरागमैश्च

नानाविधैः शास्त्रकदंबकैश्च ॥

ध्यानादिभिः सत्करणैर्न गम्य-  
 श्रितामणिर्ह्येकगुरुं विहाय ॥”

अर्थ० हे वामदेव, योगाभ्यासी गुरुकेविना वेदांत, तर्क, योग, मोमांसा, आदिक शास्त्रोंके पठनकरणेसें तथा अन्य जो नानाप्रकारके पुराणादिक ग्रंथसमूह हैं तिनके अवलोकन करणेसें तथा स्वबुद्धिकरके अनुष्ठान किये ध्यान, आसन, प्राणायामादिक उपायोंकरकेभी योगरूप चिंतामणिकी प्राप्ति नहि होवेहे इति ॥ तथा स्कंदपुराणमेंभी कहाहै

“आचार्याद्योगसर्वस्वमवाप्य स्थिरधीः स्वयम् ।”

यथोक्तं उभते तेन प्रामोत्यपि च निर्वृतिम् ॥”

अर्थ० प्रथमसें आचार्यके मुखद्वारा योगचर्याका सर्व रहस्य जानकरकेहि पश्चात् अभ्यासद्वारा पुरुष स्वयमेव सिद्धि औ आनंदकूं प्राप्त होवेहे इति ॥ तथा सामवेदकी छांदोग्य उपनिषत्मेंभी कहाहै “आचार्यवान् पुरुषो वेद” अर्थ० आचार्यवान् पुरुषहि यथार्थयोगके रहस्यकूं जानैहे इति ॥ सो केवल गुरुके संप्रति जानैसें योगकी प्राप्ति नहि होवेहे किंतु चिरकालपर्यंत सेवा करणेसेंहि होवेहे, यह वार्ता कृष्ण-यजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्मेंभी कहीहै

“यस्य देने परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥”

• अर्थ० जिस पुरुषकी ईश्वरविषे परमभक्ति होवेहे औ ईश्वरकी न्याईं गुरुमेंभी परमशक्ति होवेहे तिसकुंहि योगरह-  
 भके प्रतिपादन करणेहारी श्रुतियोंके अर्थोंका सम्यक्मका-  
 रसें बोध होवेहे इति ॥ तथा मनुस्मृतिके द्वितीयाध्यायमेंभी  
 कहाहे

“यथा खनन्वनिघ्नेण नरो वार्यधिगच्छति ।

तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥”

अर्थ० जैसे कुदाटकरके पृथिवीकूं खोदतेखोदते पुरुष निर्मल  
 जलकूं प्राप्त होवेहे तैसेहि जितनी गुरुके हृदयविषे योगादिक  
 विद्या होवेहे सो सर्वहि सेवा करतेकरते साधककूं प्राप्त होय-  
 जावेहे इति ॥ तथा सांख्यसूत्रोंमें कपिठदेवजीनेभी कहाहे

“प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि

कृत्वा सिद्धिर्बहुकाटात्तद्वत् ॥ ”

अर्थ० जैसे ब्रह्मचर्यकरके युक्तभये इन्द्रकूं नम्रभावसें ब्र-  
 ह्माकी शरण जानेकरके चिरकाटमें सिद्धिकी प्राप्ति होती  
 भयो हे तैसेहि ब्रह्मचर्ययुक्त पुरुषकूं नम्रभावसें गुरुकी शरण  
 जानेसेहि चिरकाट सेवादारा योगकी सिद्धि होवेहे इति ॥  
 शंका ॥ भागवतके एकादशे स्कंधमें लिखाहे

“ममुद्धरति ह्यात्मानमात्मनैवाशुमाशयान् ।

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥”

अर्थ० यह पुरुषविशेषकरके आपहि अंपणा गुरु होवेहै, कोहेतें अपने विचारकरकेहि आत्माका अशुभ संसारसे उद्धार करेहै इति ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमेंभी कहाहै

“उपदेशक्रमो राम व्यवस्थामात्रपालनम् ।

ज्ञतेस्तु कारणं शुद्धा शिष्यमज्ञैव राघव ॥”

अर्थ० हे रामचंद्र, गुरुशिष्यका जो उपदेशक्रम है सो तो केवल शास्त्रकी मयांदापालनेके अर्थ है परंतु ज्ञानकी उत्पत्ति-विषे तो शिष्यकी शुद्धमज्ञाहि कारण होवेहै इति ॥ तथा गीताके पष्ठाध्यायविषे भगवान् नेभी कहाहै “उद्धरेद्वात्मना-त्मानं नात्मानमवसादयेत्” अर्थ० हे अर्जुन, अपने आत्माका आपसेहि उद्धार करणा चाहिये संसारचक्रमें भ्रमावना नहि चाहिये इति ॥ तथा ऋग्वेदकी ऐतरेयउपनिषत्की “गर्भं एवेनच्छयानो वामदेव उवाच” इस श्रुतिमें वामदेवकूं गर्भविषेहि ज्ञानकी प्राप्ति कथन करीहै ॥ तथा अन्यभो अष्टा-वक्र जडभरतादिकोंकूं विनाहि गुरुउपदेशसें ज्ञानकी प्राप्ति पुराणादिकोंमें श्रवण होवेहै यातें तुमने जो पूर्वकहा गुरुसंघिना योगरहस्यका बोध नहि होवेहै सो बातों अमं-भव है ॥ समाधान ॥ यद्यपि तुमारा कहना यथार्थ है तथापि योगाभ्यासविषे तो गुरुकी अवश्यकता है औ

- जो तुमने भागवत, योगवासिष्ठ औ गीताके वाक्य प्रमाण दीयेहैं तिनका तो अत्यंत शुद्ध अंतःकरणपुरुषपरहि विधान है सो अत्यंत अंतःकरणकी शुद्धि उपासनादिकोंसे होवे है औ तिन उपासनाआदिकोंका गुरुमुखसे विना यथार्थ बोध होवे नहीं यातेंभी बोधविये परंपरासें गुरुकूंहि कारणता है ॥ औ दूसरा तिन वाक्योंका यह अभिप्राय है साधककूं केवल गुरुके आश्रयहि नहि रहना चाहिये किंतु कुछ अपना पुरुषार्थभी करणा चाहिये काहेतें गुरु तो केवल मार्गकूंहि बतावे है परंतु तहां चटक जाना तो साधककेहि अधीन होवेहै ॥ औ जो तुमने कहा वामदेव जडभरतादिक जन्मसेहि बोधसंपन्न हुयेहैं सोभी पूर्वजन्मविये सनकादिकोंके उपदेशद्वाराहि बोधसंपन्न हुयेहैं, यह वार्ता आत्मपुराणादिकोंविये प्रसिद्ध है ॥ औ जो गुरुकेविना कथंचित् शास्त्रअवलोकनद्वारा मेधावान् पुरुषकूं योगरहस्यका यथार्थ बोध होयभी जावे तो तिसके अनुष्ठानसें यथोक्तफलकी प्राप्ति नहि होधेहै, यह वार्ता सामवेदकी छांदोग्यउपनिषत्मेंभी कथन करीहै “आचार्यान्धश्चैव विद्या विदिता साधितं प्रापयति” अर्थ० गुरुमुखद्वारा ज्ञात भयो विद्याहि यथेष्टफलकी प्राप्ति करे है इति ॥ तथा शिवसंहितामेंभी कहाहै

“वेदीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा ।

अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदा ॥”

अर्थ० हे पार्वति, गुरुमुखसें निकसीहुयी विद्याही वीर्यवती  
होवेहै औ अन्यथा तो फलसें हीन औ वीर्यसें रहित तथा  
भक्तिक्लेशके देनेहारी होवेहै इति ॥ तथा गीताके षोडशमे,  
अध्यायविषे भगवान्नेभी कहाहै,

“यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥”

अर्थ० हे अर्जुन, गुरुमुखसेंहि विद्याका ग्रहण करणा इसम  
कारकी जो धर्मशास्त्रकी विधि है तिसका परित्यागकरके अ  
पनी इच्छाके अनुसारहि जो पुरुष किसीकार्यका अनुष्ठान  
करेहै सो तिस अनुष्ठानजन्य फल औ सुख तथा परमगतिव  
नहि प्राप्त होवेहै इति ॥ इसमकारसें गुरुमुखद्वारा प्राणाया  
मकी यथार्थविधि जानकरके ‘मितक्रियः’, कहिये सध  
क्रियाके संयमनपूर्वकहि अभ्यास करणा योग्य है इति ॥  
सो क्रियाका संयम गीताके षष्ठाध्यायविषे भगवान्ने के-  
थन कियाहै

“युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वभावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥”



अर्थ० जो साधक पूर्वोक्तप्रकारसें युक्तिपूर्वक आहार करता है औ युक्तिपूर्वकहि गमनादिक व्यवहार करता है अर्थात् एकादशीआदिक उपवास करणा शरद्व्रतमें प्रातः-कालविषे शीतल जलसें स्नान करणा, शिरपर भार उ-ठावना, अग्नि तापना, बहुत सोवना अत्यंत जागरण करणा इत्यादिक जो प्राणकी शीघ्रगतिके हेतु कार्य हैं तिन सर्वका परित्यागकरके बितभोजन, शरद्व्रतमें उष्ण-जलसें स्नान, स्वल्प निद्रा, स्वल्प गमन, स्वल्प भक्षण, इ-त्यादिक जो प्राणकी गतिके सिद्धि करणेहारे कार्योंका से-वन करता है तिस पुरुषकंहि सर्व दुःखोंके नाश करणेहारे योगकी सिद्धि होवे है इति ॥ तथा गोरक्षशतकमेंभी कहा है

“वर्जयेदुर्जनमांतं वह्निस्त्रीपथसेवनम् ।

प्रातःस्नानोपवासादि कायकेशविधिं तथा ॥”

अर्थ० साधककूं प्राणायामके अभ्यासकालविषे दुर्जनका संसर्ग, अग्नितापन, खोगमन, पंथगमन, प्रातःस्नान, उपवासा-दिक शरीरके केशदेनेहारी विधि, इन सर्वका परित्याग क-रणा चाहिये इति ॥ तथा अथर्ववेदकी अमृतविंदुउपनिषद्-मेंभी कहा है

“भयं श्रोत्रमथालस्यमतिस्वभातेजागरम् ।

अत्याहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत् ॥”

अर्थ० भय, क्रोध, आठस्य, अतिस्वप्न, अतिजागरण, अतिभोजन, अतिउपवास, इन सर्वकार्योंका योगीपुरुषकू नित्यहि वर्जन करणा चाहिये इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कहाहै

“अत्याहारः प्रयासश्च भ्रजल्पो नियमग्रहः ।

जनसंगश्च छौल्यं च पट्भिर्योगो विनश्यति ॥”

अर्थ० अतिभोजन करणा, बहुत प्रयास करणा, बहुत भाषण करणा, उपवासादिक नियमका ग्रहण करणा, संसारी-ठोकोका संसर्ग करणा, विषयोंविषे छोटुपता करणी, इन पट्कार्योंकरके योगाभ्यासका विनाश होवे है इति ॥ यार्ते सर्वक्रिया युक्तिपूर्वकहि करणी चाहिये ॥ तथा “क्रियाभिराशुद्धतनुः” कहिये उक्तप्राणायामके अभ्याससँ प्रथम पट्क्रियाकरके अपने शरीरकी शुद्धि करणी चाहिये काहेतँ शरीरकी शुद्धि कियेविना सम्यक्प्रकारसँ प्राणका निरोध नहि होवेहै ॥ सो निन पट्क्रियाके नाम और लक्षण हठयोगप्रदीपिकाविषे निरूपण कियेहैं

“धौतिर्वस्तिस्तया नेतिश्चाटकं नौटिकं तथा ।

कपालभातिश्चेतानि पट् कर्माणि प्रचक्षते ॥ ”

अर्थ० धौनि, वस्ति, नेति, आटक, नौटि, कपालभानि, इसभेदसँ पट्प्रकारकी क्रिया हैं इति ॥ निनमें

“चतुरंगुलविस्तारं हस्तपंचदशायतम् ॥  
 गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्यसेत् ॥  
 पुनः भत्याहरेच्चैतद्भुदितं धौतिकर्म तत् ॥”

अर्थ० च्यारि अंगुल चौडा औ पंदरा हस्त लंबा सूक्ष्म पत्र लेकर गुरुउकरीतिसें उष्णजल अथवा दुग्धसें आर्द्र कर-  
 के शनैशनै मुखद्वारा भोजनक्री न्याईं गिलजावे औ पुनः  
 नौलिकर्मकरके शनैशनै बाहिर निकासलेवे इसका नाम धौ-  
 तिक्रिया है ॥ तात्पर्य यह उक्तप्रकारसें एकहाथपरिमाण  
 नित्यंप्रति गिले जब पंदरा दिवसमें सर्व गिलजावे तो ति-  
 स्रंका एक, किनारा मुखकी दहनीतरफ दांतोंमें दबाय रखे  
 पश्चात् दो अथवा तीन पलके अनंतर वक्ष्यमाण नौलिकर्म-  
 करके मुखकुं अत्यंत खोलकर शनैशनै बाहिर निकासकरके  
 क्षालन करलेवे इति ॥ इस क्रियाके चिरकाठ अभ्यास क-  
 रणेसें कास, श्वास, शोह, जठोदर, कुष्ठ, इत्यादिक कफज-  
 न्य विंशतिरोगोंकी निवृत्ति होवेहै ॥ तथा

“नाभिद्वजले पायौ न्यस्तनाटोत्कंटासनः ।

आधाराकुंचनं कुर्यात् क्षालनं वस्तिकर्म तत् ॥”

अर्थ० गुदाद्वारमें बांसकी नलकी भवेशकरके नाभिपर्यंत  
 निर्मलजलविषे उत्कंटासनसे बैठकर गुदाद्वारसें काजल ऊ-

ध्वं आकर्षण करे पश्चात् नौलीकर्मकरके तिसका परित्याग करे इसका नाम वस्तिक्रिया है इति ॥ तात्पर्य यह, कनिष्ठिका अंगुलिके प्रवेशयोग्य पट्अंगुललंवी कोमलवांसकी नलकी लेकर गुदाद्वारमें च्यारि अंगुल प्रवेशकरके दो अंगुल अहिर रखे पश्चात् नाभिपर्यंत स्वच्छजलविषे उत्कंड आसनसे बैठकरके नौलिक्रियासे उदरके नलोंकूं उत्थापन करके अपानवायुके ऊर्ध्वआकर्षणद्वारा जलका आकर्षण करे पश्चात् नौलिकर्मकरके सर्व जलका परित्याग करे औ जो किंचित् मात्र जल उदरमें रहजावे तो मयूरासनकरके निकास देवे तो वस्तिकर्म सिद्ध होवेहै इस प्रकारसे कोईदिन अभ्यास करे तो पश्चात् विनानलकीसेभी जलका आकर्षण होवेहै इति ॥ इस क्रियाके अभ्यास करनेसे वात, पित्त कफजन्य जितने गुल्म छीह अजीर्णादिक रोग होवेहैं तिन सर्वका नाश होवेहै औ धातुकी वृद्धि तथा इन्द्रिय औ मनकी स्वच्छता औ शरीरविषे कांति तथा जठरानलकी वृद्धि होवेहै इति ॥ तथा .

“सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासानाळे प्रवेशयेत् ।

मुखाब्जिर्गभयेन्नैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते ॥”

अर्थ० एकवित्तपरिमाण कोमल सूत्र लेकर नासाद्वार-  
विषे प्रवेश करे पश्चात् मुखसे बाहिर निकासदेवे इसका नाम  
नेतिक्रिया है ॥ तात्पर्य यह ॥ वस्त्र सोवनेका सूक्ष्म तागा  
लेकर जितना अपनी नासिकाविषे प्रवेशकरसके तितनाहि  
बीस अथवा पचीसगुणितकरके स्थूल करे तिसमेंसे एक वा-  
लित्तपरिमाण अग्रभागमें गुंथनकरके ऊपर मोम लगायकर  
स्निग्ध करे औ पीछले भागमें एक वालित्त खुलाहि रहने  
देवे पश्चात् तिसकुं अग्रभागसे नम्र करके शनैः शनै नासाद्वारमें  
प्रवेश करे सो जब कंठके साथ स्पर्श करे तो मुखमें दहने  
हस्तकी अंगुलि प्रवेशकरके शनैःशनै बाहिर निकासदेवे जब  
गुंथन कियहुया भाग मुखसे बाहिर आयजावे तो नासिका-  
विषे स्थित जो तागाका पीछला भाग तिसकुं दूसरे हाथसे  
पकडकरके दो अथवा तीन बार एक दूसरी तरफ फिरावे प-  
श्चात् शनैःशनै मुखसे बाहिर निकासदेवे तो नेतिक्रिया सिद्ध  
होवेहै इति ॥ इसक्रियाके अभ्यास करनेसे कपालकी शुद्धि  
औ नेत्रोंकी दृष्टि सूक्ष्म होवेहै, तथा शिरका रोग, नेत्ररोग,  
कर्णरोग, अर्थात् जितने कंठसे ऊपर रोग होवेहैं तिन सर्वकी  
निवृत्ति होवेहै इति ॥ तथा

“निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मदृश्यं समाहितः ।

अश्रुसंपातपर्यंतमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥”

अर्थ० दोनोंनेत्र खुलेकरके जबपर्यंत अश्रुपात नहि होवे तबपर्यंत एकटक सूक्ष्मदृष्टिसे नासिकाके अग्रभागविषे देखता रहै इसका नाम आचार्यलोक चाटकक्रिया कहतेहैं इति ॥ इस क्रियाके अभ्यास करनेसे नेत्रके रोग औ आतस्य निद्रादिकोंकी निवृत्ति होवेहै ॥ तथा

“अमंदावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः ।

• नतांसो भ्रामयेदेषा नैलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते ॥”

अर्थ० ग्रीवाकूं नीचेकरके दोनोंहाथ जानवींपर धरे पश्चात् प्राणके रेचकपूर्वक उदरके दोनोंनलोंकूं उत्थापनकरके शीघ्रतासे वारंवार दहनी बांभीतरफ किरावे इसकूं सिद्धलोक नैलिक्रिया कथन करतेहैं इति ॥ इस क्रियाके, अभ्यास करनेसे जठरानलकी वृद्धि औ उदरगत सर्वरोगोंकी निवृत्ति होवेहै ॥ तथा इसकरकेहि घौति औ वस्तिक्रियाभी सिद्ध होवेहै औ इस क्रियासे विना कुंडलिनीका बोध होनाभी अत्यंत कठिन होवेहै यातें यह क्रिया योगाभ्यासीको अवश्य करणी योग्य है ॥ तथा

“भस्त्रावहोहकारस्य रेचपुरी ससंभ्रमौ । .

कपाठभातिर्विरूपाता कफदोषविशोषिणी ॥”

अर्थ० टोहकारकी भस्त्राकी न्याईं शीघ्रशीघ्र जो माणका रेचक पूरक करणाहै तिसका नाम कपाठभातिक्रिया है इति ॥

इस क्रियाके अभ्यास करनेसे सर्व प्रकारके कफजन्य दोषोंका शोषण होवेहे ॥ यह पदक्रियाके लक्षण हैं ॥ इन क्रियासे प्रथम शरीरकी शुद्धिकरके प्राणायाम करनेसे शीघ्रहि प्राणोंका निरोध होवेहे तथा शरीर हलका और मन स्वच्छ होवेहे इति ॥ जिस पुरुषके शरीरविषे भेद, श्लेष्म अधिक होवे सो इन पदक्रियाका आचरण करे दूसरा नहि काहेतें वात, पित्त, कफ, तीनों घातुओंके समान होते जो उक्तपदक्रियाका आचरण करे तो कफके शोषण होनेसे वातपित्तकी अधिकतासे शरीरविषे ज्वरादिकरोगोंकी उत्पत्ति होवेहे ॥ औ केचिन् याज्ञवल्क्यादिक आचार्य तो केवल प्राणायामके अभ्याससेहि शरीरकी शुद्धि मानते हैं उक्त पदक्रिया तिसकू संमत नहिहैं परंतु जिस पुरुषके शरीरविषे श्लेष्मकी अधिकता होवेहे तिसकू तो अवश्यमेव करणी चाहिये इति ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे प्राणायामका लक्षण औ तिसके अर्थांतर भेद तथा तिसकी उपयोगी पदक्रियाका निरूपण करके अब तिसके फलकू वर्णन करेहैं ॥

“वंशस्य वृत्तम्”

शिराविशुद्धिर्जठरानलोन्नति-  
स्तथाक्षदोषापचयोऽगलाघवम् ॥

मुशक्तिबोधो मनसश्च योग्यता

विधारणा स्वस्य ततोभिजायते ॥१५॥

शिरिति ॥ 'ततः' कहिये पूर्वोक्तप्रकारसें सांगोपांग प्राणायामके चिरकालपर्यंत अभ्यास करनेसें 'अस्य' कहिये इस साधकपुरुषकी 'शिराविशुद्धि' कहिये शरीरविषे जो इड्ड-पिंगला आदिक नाडियां हैं निनकी शुद्धि होवे है, यह बातें हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कहीहै

“प्राणं चेदिडया पिवेन्नियमितं भूयोऽन्यथा रेचयेत्  
पीत्वा पिंगलया समीरणमथो बध्वा त्यजेद्वामयां ॥  
सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाऽभ्यासं सदा तज्ज्ज्ञां  
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः ॥”

अर्थ० प्रथम इडाद्वारसें प्राणवायुका पूरक करे पश्चात् यथाशक्ति कुंभककरके पिंगलाद्वारसें रेचक करे पुनः पिंगलासें पूरककरके यथाशक्ति कुंभकके अनंतर इडाद्वारसें रेचक करे इस प्रकारसें चंद्रमारूप इडा औ सूर्यरूप पिंगलाद्वारा प्राणायामके अभ्यास करनेतें तीन मासके अनंतर योगीश्वरोंकी सर्वनाडियां शुद्ध होवे हैं इति ॥ तथा व्यासवल्क्य-संहितामेंभी कहाहै

“नाडी शुद्धिमवाप्नोति पृथक् चिन्होपलक्षिताम् ॥”



अर्थ० उक्तप्रार्णायामके अभ्यास करणसे साधकगुरुष वा-  
हके चिह्नोकरके उपलक्षित भयो नाडियोंकी शुद्धिकुं प्राप्त  
होवेहै इति ॥ सो वाहके चिन्हभी तहांहि कथन कियेहै

“शरीरलघुता दीप्तिर्वन्देर्जठरवर्तिनः ॥

नादाभिष्यक्तिरित्येतत् चिह्नं तत्सिद्धिसूचकम् ॥”

अर्थ० जिसकालविषे सर्वनाडियोंकी शुद्धि होवेहै तो श-  
रीरकी लघुता औ जठरानलकी वृद्धि तथा नादका श्रवण  
यह चिन्ह होवेहै इति ॥ किंच नाडीशुद्धिके हुयेहि सम्यक्-  
प्रकारसे प्राणका निरोध होवेहै, धह वार्ता हठयोगप्रदीपिका-  
मेंभी कथन करीहै

“शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम् ।

तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः ॥”

अर्थ० जिसकालविषे कफादिकोंसे वेदित जो नाडीचक्र  
है तिसकी शुद्धि होवेहै तिसकालविषेहि योगी प्राणका चिर-  
काल निरोध करणमें समर्थ होवेहै इति ॥ तिन नाडियोंकी  
संख्या अथर्ववेदकी प्रश्नउपनिषद्में कथन करीहै

“अर्धतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां

द्वासप्तनिदांसमतिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्ति ॥”

अर्थ० इस शरीरमें एकसौ नाडी मुख्य हैं तिन एकएकमेंसे

सौ सौ शाखानाडी निकसी हैं पुना तिन \* शाखानाडियोंमेंसे  
एकएक नाडीमें बहत्तर बहत्तर हजार उपशाखा नाडी निक-  
सीहैं इति ॥ औ जो

“दासमत्तिसहस्राणि प्रतिनाडीषु तैतिलम्”

अर्थ० जैसे मस्तकका आधार कपोलदेश है तैसेहि बहत्तर  
हजार नाडियोंका सुपुञ्जानाडी, आधारभूत है इति ॥ इस  
अथर्ववेदकी क्षुरिकाउपनिषत्के वाक्यमें जो नाडियोंकी बह-  
त्तर हजार संख्या कथन करी है सो स्थूलनाडियोंके अभि-  
प्रायसे जानना नहिं तो उक्तमश्व उपनिषत्के वाक्यसाथ वि-  
रोध होवेगा ॥ सो अत्यंत सूक्ष्महोनेतें उदरके विद्वरण कर-  
नेसेभी तिन सर्वकी प्रतीति नहिं होवेहै ॥ सो तिन सर्वना-  
डियोंमें दशनाडी प्रधान हैं तिन सर्वके नाम गोरक्षशतकमें  
लिखेहैं

“इडा च पिंगला चैव सुपुञ्जाय तृतीयका ।

गांधारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ॥

अलङ्घुषा कुङ्कुर्भुव शंखिनी दशमी स्मृता ।

एतन्नाडीमयं चक्रं ज्ञातव्यं योगिभिः सदा ॥”

अर्थ० इडा, पिंगला, सुपुञ्जा, गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा,

---

१ सर्व मिलकरके नाडियोंकी संख्या ५२, ५२, १०, २०१, है ।

यशस्विनी, अलंबुषा, कुहूः, शंखिनी यह दश भगवाननाडि-  
 'योंका चक्र सर्वदाहि योगिलोकोकं जानना योग्य है इति ॥  
 तथा तिनके स्थानभी तहांहि कथन कियेहैं

“इडा वामे स्थिता भागे दक्षिणे पिंगला तथा ।

सुपुत्रा मध्यदेशे तु गांधारी वामचक्षुषि ॥

दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ।

यशस्विनी वामकर्णे बंदने चाप्यलंबुषा ॥

कुहूश्च लिंगदेशे तु मूलाधारे च शंखिनी ।

एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाडयः ॥”

अर्थ० नासाके वामपुटमें इडानाम नाडीका स्थान है औ  
 दक्षिणपुटमें पिंगलाकी स्थिति है तथा मध्यदेशमें सुपुत्रा  
 रहती है औ वामनेत्रविषे गांधारीका निवास है औ दक्षिण  
 नेत्रमें हस्तिजिह्वाका वासस्थान है तथा दक्षिणकर्णविषे पू-  
 षाकी स्थिति है औ वामकर्णमें यशस्विनीका वास है तथा  
 मुखमें अलंबुषाका स्थान है औ लिंगदेशमें कुहूका निवास  
 है तथा मूलाधारमें शंखिनीका स्थान है इसप्रकारसे यह मु-  
 ख्य दशनाडियां अपने अपने द्वारकूं आश्रयकरके शरीर-  
 विषे निवास करतीहैं इति ॥ तिन दशमेंभी इडा, पिंगला,  
 सुपुत्रा, यह तीन नाडी श्रेष्ठ हैं तिनमेंभी एक सुपुत्रा श्रेष्ठ  
 है यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करी है

“शासां मुख्यतयास्तित्त्वस्तिसृष्वेकोत्तमोत्तमा ।

मुक्तिमार्गे तु सा प्रोक्ता सुपुञ्जा विश्वधारिणी ॥”

अर्थ० पूर्वोक्त सर्वनाडियोंमें उक्त तीन नाडी श्रेष्ठ हैं पु-  
ना तिनमेंभी एक सुपुञ्जा मुख्य है काहेतें सर्वनाडियोंका  
आधारभूत एक सुपुञ्जाहि योगीलोंकें मोक्षविषे द्वारभूत-  
होवेहे इति ॥ तिन सुपुञ्जाआदिकु सर्व नाडियोंका मूलस्थान  
कंद है, यह वार्ता गोरक्षशतकविषेभी कथन करी है

“ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कंदयोनिः खगांडवत् ।

तत्र नाड्यः समुत्पन्नीः सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥”

अर्थ० लिङ्गदेशसे ऊपर औ नाभिसें किंचित् नीचे कंद-  
का स्थान है सो कंदहि पूर्वोक्त सर्वनाडियोंका उत्पत्तिस्थान  
है तहांसंहि सर्वनाडियोंकी उत्पत्ति होवेहे इति ॥ तथा या-  
ज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहा है

“कंदस्थानं मनुष्याणां देहहृदयान्नवांगुलम् ।

चतुरंगुलविस्तारमायामं च तथाविधम् ॥

अंडाकृतिवदाकारं भूपितं च त्वगादिभिः ॥”

अर्थ० मनुष्योंके लिङ्ग औ गुदाके बीचमें जो देहका म-  
ध्यभाग सीवनी है तिसमें नवअंगुल ऊपर नाभिके अधोभा-  
गविषे कंदका स्थान है सो कंद चारि अंगुल उंचा औ

चारि अंगुल चौड़ा है तथा कुट्टके अंडाके समान तिसकी आकृति और रंग है तथा चारि तरफसें त्वचा और कफआदिकोंकरके वेष्टित है इति ॥ तिस कंदके मध्यदेशविषे सुपुन्नानाडीका मूलस्थान है, यह वाताभी तहांहि याज्ञवल्क्यने कथन करी है

“कंदस्य मध्यमे गार्गि सुपुन्ना संप्रतिष्ठिता ।

पृष्ठमध्यस्थितेनास्मा सह मूर्धानमागता ॥”

अर्थ० हे गार्गि कंदके मध्यभागविषे सुपुन्नानाडीकी स्थिति है सो पृष्ठभागसें मेरुदंडद्वारा ब्रह्मरंध्रपर्यंत गई है इति ॥ यहां यह रहस्य है ॥ सुपुन्नाकंदके मध्यभागसें उठकर आधारचक्रमें आवेहै आधारसें स्वाधिष्ठानचक्रविषे आवे है तहांसें मणिपूरचक्रमें आवेहै तिससें ऊर्ध्व अनाहतचक्रमें आवेहै तहांसें कंठचक्रमें आवेहै, तहांसें सुपुन्नाके पश्चिम और पूर्व इसभेदसें दो मार्ग हैं तिनमें पश्चिम मार्ग तो ग्रीवाके पृष्ठभागविषे स्थित जो मेरुदंड है तिसके द्वारा ब्रह्मरंध्रविषे जावे है ॥ और पूर्वमार्ग भ्रूमध्यविषे जो आज्ञाचक्र है तिसके द्वारा ब्रह्मरंध्रमें जावेहै ॥ तिनदोनोंमें पश्चिममार्ग उत्तम है यह वाता अथर्ववेदकी योगशिखाउपनिषद्मेंभी कथन करी है

“दिनीयं सुपुन्नादारं परिशुद्धं विसर्पति ॥”

अर्थ० योगचर्यामें कुशल जो योगी है सो सुपुन्नाका दि-

तीय जो भेरिशुद्ध कहिये निर्मल पश्चिमद्वार है तिसमेंहि प्राण-  
 काटके सहित प्रवेश करे है इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिका-  
 मेंभी कहा है “वाहयेत् पश्चिमे पथि” अर्थ० योगीकूं सुपु-  
 न्नाके पश्चिममागसेहि ब्रह्मरंध्रविषे प्राणोंकूं वहनकरणा चाहि-  
 ये इति ॥ इसस्थलमें विशेष वार्ता गुरुमुखसे जाननी योग्य-  
 है अत्यंत गोप्य होनेतें नहि लिखी है ॥ सो तिन उक्त चक्रों-  
 कूं क्रमसे भेदनकरकेहि योगी प्राणोंकूं दशमद्वारमें सेजानेकूं  
 समर्थ होवेहै इति ॥ सो पूर्वोक्त प्राणायामके अभ्यासकरके  
 नाडीचक्रके शुद्धहोनेतेंहि सुपुन्नाविषे प्राणका प्रवेश होवे है  
 यह वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कथन करी है

“विधिवत् प्राणसंयामेनाडीचक्रे विशोधिते ।”

सुपुन्नावदनं भित्त्वा सुखादिशति मारुतः ॥”

अर्थ० विधिपूर्वक प्राणायामके अभ्यासकरके नाडीच-  
 क्रके शुद्ध होनेतें सुपुन्नाका मुखभेदनकरके प्राण सुखसेहि  
 दशमे द्वारमें प्रवेश करे है इति, तथा ‘जंठरानलोन्ततिः,  
 कहिये पूर्वोक्तप्राणायामके अभ्यास करनेतें उदरमें स्थित  
 जो जठराग्नि है तिसकीभी वृद्धि होवेहै ॥ तथा ‘अक्षदो  
 पापचयः ‘कहिये चक्षुआदिक इन्द्रियोंके जो पापरूप दोष  
 हैं तिनकीभी निवृत्ति होवेहै यह वार्तावेदकी अमृतचिह्न उप-  
 निषत्मेंभी निरूपण करी है

“यथा पर्वतधातूनां दह्यन्ते धमनान्मलाः ॥

तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिर्ग्रहात् ॥”

अर्थ० जैसे सुवर्णादिक धातुओंका मल अग्निमें धमन करनेसे जलजावे है तैसेहि प्राणायामके अभ्यास करनेसे सर्व इन्द्रियोंकरके कियेहुये पापोंका विनाश होवे है इति ॥  
तथा संवत्संहितामेंभी कहाहै ॥

“मानसं वाचिकं पापं कायेनैव तु यत्कृतम् ।

तत्सर्वं नश्यते तूर्णं प्राणायामध्रये कृते ॥”

अर्थ० पूर्वोक्तप्रकारसे मणवादिकर्मभका जप औ देवताके ध्यानमहित, तीनवार प्राणायाम करनेसेभी जितने मानस, वाचिक, औ कायिक पाप होवेहं तिनका शीघ्रहि विनाश होवेहै इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै

“नित्यमेव प्रकुर्वीत प्राणायामांस्तु षोडश ।

अपि भ्रूणहर्न मासान् पुनृत्यहरहः कृताः ॥

ऋतुत्रयात् पुनृत्येवं जन्मांतरकृतादधात् ।

संवत्सराद्ब्रह्मवधात्तस्मान्नित्यं संमभ्यसेत् ॥”

अर्थ० पूर्वोक्तप्रकारसे नित्यप्रति मासपर्यंत षोडश प्राणायाम करनेसे भ्रूणहत्याजन्य पापकी निवृत्ति होवेहै औ १६

मासपर्यंत करणेतें जन्मांतरोंविषे कियेहुये अज्ञातपापोंकी निवृत्ति होवे है तथा एकवर्षपर्यंत करणेतें ब्रह्महत्याजन्य पापकी निवृत्ति होवे है इसकारणसें पुरुषकूं नित्यहि प्राणायामका अभ्यास करणा योग्य है इति ॥ तथा “अंगलाववै” कहिये प्राणायामके अभ्यास करणेतें शरीरकीभी लघुता होवे है, यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करी है

“धारणं कुर्वतस्तस्य वह्निस्थाने प्रभंजनम् ।

देहश्च लघुतां याति जठराग्निश्च वर्धते ॥”

अर्थ० प्राणायामके अभ्याससें उदरविषे प्राणके संयमन करणेतें जठरानलकी वृद्धि औ शरीरकी लघुता होवे है इति ॥ तथा कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्मेंभी कथन किया है इति ॥ “लघुत्वमारोग्यमलोटुपत्वम्” अर्थ० प्राणायामके अभ्यास करणेतें योगीके शरीरविषे लघुता औ अरोगता होवे है तथा विषयोंविषे जो इन्द्रियोंकी लोटुता है तिसकीभी निवृत्ति होवे है इति ॥ तथा ‘सुशक्तिबोधः’ कहिये पूर्वोक्तप्राणायामके अभ्यास करणेतें कुंडलिनीनाडोकाभी उत्थान होवे है सो कुंडलिनीशक्ति पूर्वोक्त सुषुम्नानाडोके द्वारकूं अपने मुखसें रोधनकरके कंदके उपरिभागमें स्थित है यह वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कथन करी है



“कंदोर्ध्वं कुंडलीशक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम् ।

बंधनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित् ॥”

अर्थ० कंदके उपरिभागविषे कुंडलिनीशक्ति शयनकर रही है सो जो योगीलोक तिसका उत्थापन करतेहं सो मोक्षकूं प्राप्त होतेहैं औ जो मूढलोक नहि करते हैं तिनकूं बंधनका कारण होवे है तथा जो योगीपुरुष तिस कुंडलिनीके जगानेकी युक्ति जानता है सोई योगकलाकूं यथार्थ जानता है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहे

“शिरां समावेष्ट्य मुखेन मध्ये

स्वपुच्छमास्येन निगूह्य सम्यक् ॥ .

“नाभौ सदा तिष्ठति कुंडली सा

धिया समाधाय निबोधयेत्ताम् ॥”

अर्थ० सुपुन्नानाडीकूं अपने शरीरसे आवेष्टनकरके औ साडेतीन घट देकर अपनी पुच्छकूं मुखसे सम्यक्प्रकार ग्रहणकरके नाभिके अधोभागविषे सर्वदाहि कुंडलीशक्ति स्थित होय रही है इसीकारणसे पुरुषके प्राण सुपुन्नाविषे प्रवेशनहि करसकते याते प्राणकूं दशमे द्वारविषे लेजानेकी इच्छावान् साधकपुरुषकूं युक्तिपूर्वक तिस स्थलमें प्राणोंका निरो-

१ कितनेक योगके ग्रंथमें समबलभी कथन कियेहे परंतु बहुत स्थलोंमें साडेतीनहि कथन कियेहैं ।

धकरके तिसकू तहांसें चलायमान करना योग्य है इति ॥  
 सो तिसका उत्थान बंधपूर्वक प्राणायाम करनेसें होवे हैं सो  
 बंध उड्डियानबंध, जाटंधरबंध, मूलबंध, इसभेदसें तीन प्र-  
 कारके हैं सो तिन तीनोंके लक्षण हठयोगप्रदीपिकाविषे स्था-  
 स्मारामयोगीने निरूपण करे हैं ॥•तिनमें

“उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत् ।

उड्डियानो ह्यसौ बंधो मृत्युमातंगकेसरो ॥”

अर्थ० प्राणके रेचकपूर्वक उदरकूं पश्चिमकी तरफ आक-  
 र्षणकरके नाभिदेशकूं किंचिन् ऊर्ध्व आकर्षण करे यह मृ-  
 त्युरूप मातंगके जय करनेविषे सिंहरूप उड्डियानबंध कहिये है  
 इति ॥ तथा

“कंठमाकुंक्ष्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम् ।

बंधो जाटंधराख्योयं जरामृत्युविनाशकः ॥”

अर्थ० कंठका संकोचकरके ठोडीकूं हृदयके समीप दृढक-  
 रके लगावे यह जरा औ मृत्युके नाशकरणेहारा जाटंधरबंध  
 है इति ॥ तथा

“पार्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुंचयेद्दृढम् ।

अपानमूर्ध्वमाकृत्य मूलबंधोभिधीयते ॥”

अर्थ० सिद्धासनपूर्वक वामपादकी एडीसें गुदा औ टिंगके

मुखसे जाननी योग्य है तथा यह सर्व बातें योगतारावली-  
विषे शंकराचार्यनेभी कथन करी है

“उड्डियानजालंधरमूलबंधैरुज्जिद्रितायामुरगांगनायाम् ।

प्रत्यङ्मुखेन प्रविशन् सुषुम्नांगमागमौ मुंचति गंधवाहः ॥”

अर्थ० उड्डियानबंध, जालंधरबंध, मूलबंध, इन तीनबंध-  
पूर्वक प्राणायामके अभ्यास करनेतें कुंडलिनीका बोध होवे  
है पश्चात् सुषुम्नाके अनंतर प्रवेशद्वारा ब्रह्मरंध्रमें जानेमें  
प्राणवायुका पुनः गमन आगमन नहि होवे है अर्थात् तहांहि  
स्थितिकूं प्राप्त होवे है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी  
कहाहै

“बोधं गते चक्रिणि नाभिमध्ये

प्राणास्तु संभूय कलेबरेस्मिन् ॥

चरन्ति सर्वे सह बह्विनैव

तंतौ यथा जंतुगतिस्तथैव ॥”

अर्थ० नाभिके अधोभागविषे जो कुंडलिनीशक्ति है सो  
जब उक्तप्रकारसे बोधकूं प्राप्त होवे है तो जैसे जैर्णनाभि,  
नामा जंतु तंतुपर आरोहण करे है तैसेहि सर्वप्राण एकीभूत  
होयकरके सहित अश्लिषे सुषुम्नाद्वारा ब्रह्मरंध्रविषे आरोहण-  
करते हैं इति ॥ तथा ‘विधारणासु’ कहिये पूर्वोक्तप्राणा-

यामके अभ्यासकरणेसँ अष्टादशम श्लोककी व्याख्याविषे  
 'वक्ष्यमाण जो धारण हैं तिनके विषेभी 'मनसश्च योग्यता'  
 कहिये मलविक्षेपसँ रहित भये साधक पुरुषके मनकी यो-  
 ग्यता होवे है यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करी  
 है "धारणासु च योग्यता मनसः ॥" अर्थ० प्राणायामके  
 अभ्यास करणेतें धारणाविषे मनकी योग्यता होवे है काहेतें  
 प्राणायामके अभ्याससँ पूर्वे रजोतमोंके कार्य मलविक्षे-  
 पकरके संकटितभये मनकी धारणाविषे स्थिति नहि होवे  
 है इति ॥ १५ ॥ इसप्रकारसँ प्राणायामका फल वर्णनक-  
 रके अब योगका पंचम अंग जो मत्याहार है तिसका लक्षण  
 निरूपण करेहैं ॥

( इन्द्रवंशावृत्तम् )

भोगोन्मुखाक्षौघनिवर्त्तनं सदा-

ऽसंसर्गतो दोषदृशा च दीर्घया ॥

संस्थापनं यच्च मनोऽनुरोधतो

योगस्य तत्पंचममंगमीरितम् ॥ १६ ॥

भोगोन्मुखेति ॥ शब्द, स्पर्श, रूपआदिक विषयोंके स-  
 न्मुख जो श्रोत्रादिक इन्द्रियसमूहका अनादिकालसँ स्वाभा-

विकहि भेतिपूर्वक प्रवाह होय रहाहै तिसका सर्वकालविषे विषयोंके असंसर्ग औ तिनविषे दीर्घ दोषदृष्टिपूर्वक निवारणकरके चित्तके अनुकूल जो तिन इन्द्रियोंका स्थापन करणा है सोई योगका पंचम अंगरूप प्रत्याहार कहियेहै इति वह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करी है

“स्वविषयासंप्रयोगे चित्तानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥”

अर्थ० स्वस्वविषयोंके संबंधके अभावसें श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकी जो चित्तके अनुसार स्थिति है अर्थात् चित्तके निरोध करनेसें स्वतेहि जो इन्द्रियोंका निरोध होना है तिसका नाम प्रत्याहार है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै

“इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः ।

बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ॥”

अर्थ० स्वभावसेंहि जो श्रोत्रादिक इन्द्रिय शब्दादिक विषयोंविषे विचरती हैं तिनका विवेकरूप बलकरके जो विषयोंसें निवारण करणा है तिसका नाम प्रत्याहार है इति ॥ तथा शंखसंहितामेंभी कहाहै “संहारश्चेन्द्रियाणां च प्रत्याहारः स उच्यते” इसवाक्यका अर्थ ऊपर कहे अर्थके अंतर्भूतहि है इति ॥ सो इस प्रत्याहारमें उक्तदोषदृष्टि औ विषयोंके संसर्गका परित्याग यह दोनोंहि हेतु हैं काहेतें प्रथम

दोषदृष्टिकरके हुयेविना विषयोंका परित्याग संभवे नहि ॥  
 सो दोषदृष्टिभी दीर्घ कहिये सर्वदाहि करणी चाहिये काहेतें  
 क्षणिक दोषदृष्टिकरके विषयोंसे इन्द्रियोंका प्रत्याहार नहि  
 होसके है यह वार्ता पूर्वाचार्योंनेभी कथन करीहै

“भोजनांते श्मशानांते मैथुनांते च या मतिः ।

सा मतिः सर्वदा चेत्स्यात्को न मुच्येत बंधनात् ॥”

अर्थ० इस पुरुषकी भोजनके अंतमें जो बुद्धि होवे है  
 औ जो श्मशानके अंतविषे होवेहै तथा जो बुद्धि मैथुनकर्म-  
 के अंतमें होवेहै ऐसीहि बुद्धि जो सर्वकालविषे रहे तो कौन  
 पुरुष संसारबंधनमें मोक्षकूं नहि प्राप्त होवे अर्थात् सर्वहि  
 होय जावै इति ॥ यार्ते साधकपुरुषकूं विषयोंविषे दीर्घदोष-  
 दृष्टिहि करणी योग्य है ॥ सो दोषदृष्टिका प्रकार योगवा-  
 सिष्ठके उपशमप्रकरणविषे वीतहव्यमुनिने दिखायाहै

“कुरंगादिपतंगेभमीनास्त्वैकैकशो हताः ।

सर्वैर्गुंकेरनैर्यस्तु व्यातस्याज्ञ कुतः सुखम् ॥”

अर्थ० हे मूढचित्त कुरंग 'एक श्रोत्रं इन्द्रियका विषय  
 जो शब्दहै तिसके अर्थ वीणाका शब्द सुनकरके मोहित  
 भया व्याधके वशीभूत होयकर मृत्युकूं प्राप्त होवेहै ॥ औ  
 भ्रमरभी एक नासिकाइन्द्रियका विषय जो सुगंधि है

तिसके अर्थ रात्रीमें कमलके संकुचित होनेमें मृत्युकुं प्राप्त होवेहै तथा पतंगभी एक चक्षुइन्द्रियका विषय जो रूप है तिसके अर्थ दीपकविषे भया मृत्युकुं प्राप्त होवेहै औ हस्ती एक त्वचाइन्द्रियका विषय जो स्पर्शहै तिसके अर्थ हस्तिनीके पीछे गतविषे पतित होयकरके नाशकुं प्राप्त होवेहै तथा मत्स्यभी एक जिह्वाइन्द्रियका विषय जो रसहै तिसके अर्थ लोहकुंडीका भक्षणकरके मृत्युकुं प्राप्त होवेहै इसप्रकारसे यह पांचहि एकएक इन्द्रियके अर्थ नाशकुं प्राप्त होवेहै तो तुं पांचों अनर्थोंकरके युक्त भया किसप्रकारसे सुखी होवेगा इति ॥ इसप्रकार दोषदृष्टिसे विषयोंका परित्यागकरके पुना कदाचित्भी तिनका संसर्ग नाह करणा चाहिये काहेतें विषयोंके संबंधकरके महात्मा पुरुषोंका चित्तभी चलायमान होवेहै यह वार्ता पूर्वाचार्योंनेभी कथन करीहै

“मनोहराणां भोज्यानां युवतीनां च वाससाम् ।

वित्तस्यापि च सान्निध्याच्चलेचितं सतामपि ॥”

अर्थ० मनके हरण करणेहारे सुन्दर जो पायसादिक भोजन औ युवाभवस्थायुक्त स्त्रियां तथा पट्टआदिकोंके धन औ सुवर्णादिक द्रव्य हैं तिनके संसर्गसे महात्मापुरुषोंका चित्तभी चलायमान होवे है तो अन्य साधकपुरुषको क्या वार्ता

कहनी है इति ॥ तथा सौभरि, परासर, विश्वामित्र, ऋष्यशृंग इत्यादिक ऋषिभी स्त्रीरूपविषयके संसर्गकरकेहि तपसें भ्रष्ट होतेभयेहै यह वार्ता पुराणोंमें प्रसिद्धहि है ॥ यार्ते प्रत्याहार करणेहारे पुरुषकूं कदाचित्भी विषयोंकी सन्निधि नहि करणी चाहिये ॥ यह वार्ता मनुस्मृतिविषेभी कथन करीहै

“अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ।

द्वियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥”

अर्थ० शब्दादिक विषयोंकरके हरण करीहुयी जो श्रोत्रादिक इन्द्रियां है तिनकूं साधक पुरुष अल्पभोजनके भक्षण करनेतें औ एकांतविषे निवासकरके निवारण करे इति ॥ किंच मन औ विषयोंकूं आत्मस्वरूप जाननेसेंभी इन्द्रियोंका प्रत्याहार होवेहै यह वार्ता अथर्ववेदकी अमृतसिंदुउपनिषत्मेंभी कथन करी है

“शब्दादिविषयाः पंच मनश्चेवातिचंचलम् ।

चित्तयेदात्मनो रश्मीन् प्रत्याहारः स उच्यते ॥”

अर्थ० शब्दादिक जो पांच विषय हैं अतिचंचल जो मन है तिनसर्वकूं आत्मारूप सूर्यकी किरणारूपसें चित्तन करे इसका नामभी प्रत्याहार है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहा है



“जगत् पश्यते सर्वं पश्येदात्मानमात्मनि ॥

प्रत्याहारः स च प्रोक्तो योगविद्भिर्महात्मभिः ॥”

अर्थ० यावत्पर्यंत चराचरजगत् दृष्टि और श्रवणमें आवेहे तिस सर्वकुं अपने हृदयमें आत्मस्वरूपमें देखे इसकुं योगन्याके जाननेहारे महात्मा लोक प्रत्याहार कहते हैं इति ॥ तथा गोरक्षशतकमें कहा है ॥

• “यं यं शृणोति कर्णाभ्यां प्रियं प्रियमेव वा ।

तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥

अस्पर्शमथवा स्पर्शं यं यं स्पृशति चर्मणा ।

तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥

अमेध्यमथवा मेध्यं यं यं पश्यति चक्षुषा ।

तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥

अलौघ्यमथवा लौघ्यं यं यं स्पृशति जिह्वा ।

तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥

अगंधमथवा गंधं यं यं जिघ्रति नासया ।

तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥

अंगमध्ये यथांगानि कूर्मं संकोचयेत् ध्रुवम् ।

योगी प्रत्याहरेदेवमिन्द्रियाणि तथात्मनि ॥”

अर्थ० प्रिय अथवा अप्रिय जो जो पदार्थ श्रोत्रइन्द्रियमें श्रवण करेहे तिस तिसकुं आत्मारूप जानकरके योगी श्रोत्रइ-

न्द्रियका प्रत्याहार करेहै ॥ औ कोमल अथवा कृठिन जो जो त्वचाइन्द्रियकरके स्पर्श करेहै तिसतिसकूंभी आत्मस्वरूप जानकरके योगी त्वचाइन्द्रियका प्रत्याहार करेहै ॥ तथा मुरूप अथवा कुरूप जो जो पदार्थ नेत्रइन्द्रियकरके देखेहै तिसतिसकूंभी आत्मस्वरूप जानकरके योगी नेत्रइन्द्रियका प्रत्याहार करेहै ॥ तथा स्वादु अथवा अस्वादु जो जो जिह्वा-इन्द्रियकरके रस लेवेहै तिसतिसकूंभी आत्मस्वरूप जानकरके योगी जिह्वाइन्द्रियका प्रत्याहार करेहै ॥ तथा सुगंध अथवा दुर्गंध जो जो नासिकाइन्द्रियसें सूंघेहै तिसतिसकूंभी आत्मस्वरूप जानकरके योगीघ्राणइन्द्रियका प्रत्याहार करेहै ॥ सो जैसें कूर्छ अपणे हस्तपादादिक अवयवोंका उदरविषे संकोच करेहै वैसेहि योगपुरुष उक्तप्रकारसें श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका आत्मस्वरूपविषे प्रत्याहार करे इति ॥ औ याज्ञवल्क्य-संहिताविषे तो प्रत्याहारका दूसरा लक्षणभी कियाहै सोभी मन्त्रमें यहाँ निरूपण करेहै

“पादांगुली च गुल्फौ च जंघामध्यौ तथैव च ।

चित्थोर्मूलं च जान्वीश्र्च मध्ये चोत्सृभयस्य च ॥

पायुमूलं ततः पश्चात् देहमध्यं च मेढकम् ।

नाभिश्च हृदयं गार्गि कंठकूपस्तथैव च ॥

तान्मूलं च नासाया मूलं चाक्ष्णोश्च मंडंते ।

भ्रुवोर्मध्यं उलाटं च मूर्द्धां च मुनिर्पृगवे ॥

स्थानेष्वितेषु मनसा वायुमारोप्य धारयेत् ।

स्थानात् स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारपरायणः ॥”

अर्थ० हे गार्गी दो पादके अंगुष्ठ, दो पादके गुल्फ, दो जंघाके मध्यदेश, दो वित्त्योंके मूलदेश, दो जानुवोंके मध्यदेश, दो ऊरुके मध्यदेश, एक गुदाका मूलदेश, एक देहका मध्यदेश, एक टिगका मूलदेश, एक नाभिदेश, एक हृदयदेश, एक कंठकूप, एक तालुका मूलदेश, एक नासिकाका मूलदेश, दो नेत्रोंके मंडल, एक भ्रुवोंका मध्यदेश, एक उलाटदेश, एक ब्रह्मरंध्र इसभेदसें शरीरविषे पचीस मर्मस्थान हैं ॥ सो इन स्थानोंमें मनके सहित प्राणवायुकी धारण करके प्रत्याहार करनेद्वारा योगी एकस्थानसें दूसरेमें दूसरेसें तीसरेमें इसप्रकार क्रमसें प्राणका ऊर्ध्व आकर्षण करे। अर्थात् प्रथमपादके अंगुष्ठविषे प्राणका निरोध करके पश्चात् गुल्फोंमें लावे औ गुल्फोंसें जंघाके मध्यदेशमें लावे इसी प्रकार उक्तसर्वदेशोंसें ऊर्ध्वऊर्ध्व प्राणका आकर्षणकरके ब्रह्मरंध्रविषे लावे ॥ इसप्रकार प्राणवायुका ब्रह्मरंध्रपर्यंत ऊर्ध्व आकर्षणकरके पश्चात् यथेच्छा तहां स्थित होयकर पुना प्राणोंका नीचे आकर्षण करे सो नीचे उतारनेका प्रकारभी तद्वाहि कथन किया है ॥

( १८० )

“वंशस्थं वृत्तम्”

सुरप्रसादो मनसः प्रसन्नता  
तपःप्रवृद्धिस्त्वपि दैन्यसंक्षयः ॥  
द्रुतं प्रवेशश्च तथैव संयमे  
जितेन्द्रियस्येह किलोपजायते ॥ १७ ॥

सुर इति ॥ ‘सुरप्रसादः’ कहिये पूर्वोक्तप्रकारसें जिस पुरुषने स्वस्वविषयोंसें निवारणकरके श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकुं अपणे वशीभूत किया है तिसपर विष्णु, शंकरादिक देवताका प्रसाद अर्थात् प्रसन्नता होयेहे ॥ इन्द्रियलंपट पुरुषपर देवताकी प्रसन्नता औ सन्निधि नहि होये है यह वार्ता महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कथन करी है ॥

“शिश्नोदरे ये निरताः सदैव  
स्तेना नरा वाक्पुरुषाश्च नित्यम् ॥  
अपेतदोषानपि तान् मिदिंश्वा  
दृष्ट्वाः संपरिवर्जयन्ति ॥  
सत्यव्रता ये तु नराः कृतज्ञा  
धर्म रतास्तैः सह संभजन्ते ॥”

अर्थः जो पुरुष सर्वदाहि शिश्न औ उदरके परायण औ चोर तथा सर्वके प्रति क्रूरवचनोंके भाषण करनेहारे हैं ॥ सो यद्यपि मायश्चित्तकरके दोषोंतें रहितभी होवें तोभी देवतालोक तिनकी सन्निधि नहि करतेहैं किन्तु दूरसेहि तिनका परिवर्जन करतेहैं ॥ औ जो सर्वदा सत्यभाषण करनेहारे औ कृतज्ञ तथा स्वधर्मविषे निरत पुरुष हैं तिनके साथहि देवतालोक संभाषणादिक व्यवहार करतेहैं इति ॥ इसी कारणसे स्वधर्मनिरत, सत्यवादी, औ जितेन्द्रिय जो राजाशिवि, नर, अर्जुन, युधिष्ठिरादिक पुरुष थे तिनके पास कुबेर इन्द्रादिक देवता औ नारदादिक महर्षियोंका आगमन औ संभाषणादिक व्यवहार पुराणोंमें श्रवण होवेहै अन्य पापीपुरुषोंके साथ नहि ॥ तथा 'मनसः प्रसन्नता' कहिये इन्द्रियजित पुरुषका मनभी सर्वदा प्रसन्न रहताहै काहेतें इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्ति होनेतें तिनके उपार्जनादिकोंविषे प्रवृत्त भयाहि मन सर्वदा क्लेशकरके व्याकुल रहताहै औ इन्द्रियजितपुरुषकी उपार्जनादिक प्रवृत्तिके अभाव होनेतें सर्वदाहि निर्मलजलकी न्याईं तिसका मन स्वच्छ रहताहै ॥ तथा 'तपःप्रवृद्धिः' कहिये इन्द्रियजितपुरुषका तपभी दिनदिनमनि वृद्धिकूं प्राप्त होवेहै काहेतें इन्द्रियोंका निग्रह करणाहि परम तप है, यह बातें अन्यस्मृतिविषेभी कथन करी है

“मनसश्चेन्द्रियाणां च निग्रहः परमं तपः ।  
तज्ज्यायः सर्वधर्मैभ्यः स धर्मः पर उच्यते ॥”

अर्थ० मन औ इन्द्रियोंका जो स्वस्वविषयोंसे निग्रह करणा है सोई परम तप है औ सोई सर्वधर्मोंसे श्रेष्ठ औ परम-धर्म है इति ॥ तात्पर्य यह ॥ जितेन्द्रियपुरुष जोजो जपतप-आदिक क्रिया करेहै सोईसोई क्रिया यथोक्तफलकी प्राप्ति करे है, यह वातां मनुस्मृतिके द्वितीयाध्यायविषेभी कथन करी है

“वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयमा च मनस्तथा ।

• सर्वान् संसाधयेदर्थानाक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥”

अर्थ० सर्व इन्द्रियोंकूं वशीभूतकरके औ मनकूंभी संयमन-करके तथा अन्नादिक योगसे शरीरका रक्षणकरता हुया सा-धरुपुरुष सर्वकार्योंकी सिद्धिकूं प्राप्त होवे है इति ॥ औ जो अजितेन्द्रिय पुरुष है तिसकूं यथोक्तफलकी प्राप्ति नहि होवेहै यह वातांभी तहांहि कथन करी है

• “वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपोसि च ।

नैवाजितेन्द्रियभ्येह सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचिन् ॥”

अर्थ० जो पुरुष जितेन्द्रिय नहि है तिमकूं वेदाध्ययन,

त्याग, यज्ञ, नियम, तप, आदिकर्मोंकी क्रदाचित्भी सिद्धि नहि प्राप्त होवे है इति ॥ किंच पांच इन्द्रियोंमेंसे एक इन्द्रियकी उपेक्षा करनेतेंभी जपादिकोंकी सिद्धि नहि होवे है तो जिसके पांचोंहि वशीभूत नहि है तिसकी तो क्याहि वार्ता कहनी है ॥ यह वार्ताभी तहांहि मनुस्मृतिमें कथन करी है

“इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।

तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृष्टैः पादादिवोदकम् ॥”

अर्थ० श्रोत्रादिक इन्द्रियोंमेंसे जो एक इन्द्रियकाभी क्षरण होवे है तो तिसकरके जैसे छिद्रयुक्त मसकसें सर्वथाहि जल क्षरता रहता है तैसेहि तिसपुरुषके सर्वहि प्रज्ञासाध्य जपत-पादिक क्षरजातेहैं इति ॥ तथा ‘अपि दैन्यसंक्षयः’ कहिये इन्द्रियोंके जयकरणसें दीनताकाभी क्षय होवेहै काहेतें अजितेन्द्रियपुरुषहि स्त्रीआदिक विषयोंविषे प्रसक्त भया तिनके उपाजनरक्षणादिकोंके अर्थ राजादिक धनीपुरुषोंकी दीनता करता है ॥ यह वातां वैराग्यशतकमें भर्तृहरिनेभी कथन करीहै

“दीनादीनमुखैः सदैव शिशुकैरारुढजीर्णावरा •

क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा दृश्येत चेद्देहिनी ॥

याश्चाभंगभवेन गद्गदगलत्प्रुट्यद्विलीनाक्षरं •

को देहीति वदेन् स्वदग्धजठरस्यार्थं मनस्वी जनः॥”

अर्थ० दीनोंसेंभी दीन मुखवाले क्षुधाकरके पीडित भये औ 'रुदन करतेहुये वालकोंकरके जीर्णवस्त्रसें आर्कषणकरी-  
हुयी अपनी स्त्री जो इस पुरुषकरके नहि देखनेमें आवे तो  
यात्राभंगके भयकरके गद्गदकंठसें टूटे - औ विलीन अक्षरों-  
करके युक्त जो देहि इसप्रकारकी दीनवाणी है तिसकूं केवल  
अपने उदरपूरण करणेके अर्थ कौन विवेकी पुरुष धनी पु-  
रुषोंके आगे कथन करे है अर्थात् कोईभी नहि करे है ता-  
त्पर्य यह अजितेन्द्रिय पुरुषहि भोगके साधन स्त्रीगृहादिकों-  
विषे आसक्त भया उक्तप्रकारकी स्त्रीकूं देखकरके तिनके पो-  
षण करणेके अर्थ उक्तप्रकारकी दीनवाणी धनीलोकोंके  
आगे कथन करे है इति ॥ तथा अन्यत्र भी कहा है

“जिहोपस्थादिकार्पण्याद्गृहपालायते जनः ॥”

अर्थ० यह पुरुष जिह्वा औ उपस्थादिक इन्द्रियोंके विप-  
र्यामें लोलुप भया श्वानकी तुल्यताकूं प्राप्त होवे है इति तथा  
'द्रुतं प्रवेशश्च तथैव संयमे' कहिये इन्द्रियोंके जय करणेसें  
साधकपुरुषका योगका मुख्य साधन जो धारणा, ध्यान,  
समाधिरूप वक्ष्यमाण संयम है तिसमेंभी द्रुत प्रवेश होवे है  
अर्थात् शीघ्रहि योगकी सिद्धि होवे है ॥ यह बातें यजुर्वेदकी  
कठउपनिषत्मेंभी कथन करी है

“तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥”



अर्थ० श्रोत्रादिक सर्वइन्द्रियोंकूँ निरोधकरके जो स्थिर धारण करणा है तिसकूँहि ऋषिलोक योग मानतेहैं इति ॥  
तथा महाभारतविषेभी कहाहै

“एष योगविधिः कृत्स्नो यावदिन्द्रियधारणम् ।

एष मूलं हि तपसः कृत्स्नस्य नरकस्य च ॥”

अर्थ० श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका जो धशीभूत करणा है यहि सर्वयोगकी विधिहै औ यहि सर्व तपका मूल है औ जो तिनका निग्रह नहि करणा है सोई नरकका मूल है इति ॥  
तथा अन्यश्लोककरकेभी तहांहि कथन किया है

“इन्द्रियाण्येव तत्सर्वं यत्स्वर्गनरकावुभौ ।

निगृहीतविमृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥”

अर्थ० पुरुषके इन्द्रियहि स्वर्ग औ नरकरूप हैं तिनमें जो निग्रह करीहुयी इन्द्रियां हैं सो तो स्वर्गका हेतु हैं औ जो विषयोंमें छोड़ी हुयी हैं सो नरकका हेतु हैं इति ॥ किंच जितेन्द्रियपुरुषहि निर्विघ्न मोक्षपदकूँ प्राप्त होखे हे, यह घाताभी तहांहि कथन करी है

“रथः शरीरं पुरुषस्य दृष्ट-

भात्मा नियंतेन्द्रियाण्याहुरश्वान् ॥

तैरभ्रमत्तः कुशली सदश्वै-

र्दातः स्वयं याति रथीव धीरः ॥”

पगोंसे निवारण करके वारंवार चितकूँ धारणादेशमें ठावनेमें खेदकूँ नहि प्राप्त होना चाहिये किंतु उत्साहपूर्वकहि तिसका निग्रह करणा चाहिये, यह बातों मांडूक्यउपनिषत्की कारिका-विषे गौडपादाचार्यनेभी कथन करी है

“उत्सेक उद्धेयहृत्कुशायेणकविदुना ।

मनसो निग्रहस्तद्भवेदपरिस्तेदतः ॥”

अर्थ० इस श्लोकविषे एक पुरातन इतिहास है सो संक्षेपमें यहां लिखे हैं ॥ सो जैसे एक टिट्ठिभनामा पक्षी सहितस्त्री के समुद्रके तीरपर निवास करता था तो जिसकाठविषे तिसकी स्त्री गर्भवती भयी तो कहने लगी हे स्वामिन्, मैं गर्भवती भयीहूँ यातें हमारेकूँ अंडे देनेके अर्थ समुद्रके तीरसे दूर किसी शुष्कस्थलविषे जायकर निवास करणा योग्य है ॥ तो टिट्ठिभने कहा, हे प्रिये, तू भयका परित्यागकरके इसी स्थलमेंहि अंडे उतारदे समुद्रकी क्या शक्ति है जो हमारे अंडोंकूँ अपने जलमें डुबायसके ॥ इस प्रकार जब वारंवार कहने-संभी टिट्ठिभने नहि माना तो तिसकी स्त्रीने तहांहि अंडे उतारदिये तो कितनेक दिवसोंके अनंतर इससमाचारकूँ जानकर समुद्रने मनमें उपहासपूर्वक अपने जलकी एक लहरीसे निन सब अंडोंका आहरण करलिया जब इसप्रकारसे समुद्रने तिस टिट्ठिभके अंडोंका आहरण करलिया

तो सो पक्षी अत्यंत कोपकूं प्राप्त होयकर सर्व समुद्रके शो-  
षण करनेके अर्थ दृढ व्यवसायकरके अपनी चंचुमें एक  
कशाका तृण ग्रहणकरके तिसके अग्रभागसे समुद्रमेंसे एक ज-  
लकी बिंदु छेलेकर बाहिर जायकरके क्षेपण करने लगा जब  
इसप्रकार करते करते कितनाक काल हुआ तो तिसकूं अत्यंत  
दुःखी देखकर तिसकी स्त्री औ सर्व बांधवलोक आयकरके  
कहने लगे हे मूर्ख, कहां लक्षयोजनविस्तृत समुद्र औ कहां  
तुं अल्पपक्षी यातें तूं इस असंभवव्यवसायका परित्याग करदे  
इत्यादिक अनेक शिक्षावाक्यों कहनेसेंभी सो टिट्ठिभ अ-  
पणे धैर्यसें चलायमान नहि होता भया किंतु उलटा अपनी  
स्त्री औ बांधवोंकूं अनेक प्रकारके शिक्षावचन कहकरके अप-  
णी सहायमें छे छेताभया तो सर्वबांधवोंके सहित पूर्ववत् जल-  
का समुद्रसें बाहिर क्षेपण करने लगा ऐसे करते करते जब कि-  
तनाक काल व्यतीत भया तो दैवयोगसें फिरतेफिरते तहां  
अत्यंत कृपालु नारदमुनिजी आयगये तो तिस पक्षियोंकूं अ-  
त्यंत दुःखित देखकर नारदजीनेभी तिस असाध्यकार्यसें ब-  
हुतप्रकार तिसकूं निवारण किया परंतु तोभी सो टिट्ठिभ  
अपणे धैर्यसें चलायमान नहि होताभया तो इसप्रकारसें ति-  
सका दृढ निश्चय देखकरके नारदजीने वैकुण्ठमें जायकर गरु-

रणाविषे स्थित होना बहुत कठिन है इति ॥ यातें साधककूं  
अत्यंत प्रयत्नकरकेहि चित्तकूं धारणादेशविषे स्थापन करणा  
योग्य है यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै

“स्नेहपूर्णे यथा पात्रे मन आधाय निश्चलम् ।

पुरुषो युक्त आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः ॥”

अर्थ० जैसे तैलकरके पूर्ण पात्रकूं हस्तविषे ग्रहणकरके  
एकाग्रमनसैं पुरुष सीढ़ीपर आरोहण करेहै तैसेही योगीपुरुष  
धारणाविषे एकाग्र मन लगायकरके निर्विकल्पसमाधिविषे  
आरोहण करेहै इति ॥ सो यह धारणा स्वशरीरमें स्थित पाँ-  
चमहाभूतोंविषेभी होवेहै सो तिसका प्रकार याज्ञवल्क्यसंहि-  
तामें निरूपण कियाहै सोभी प्रसंगसैं यहां दिखावेहैं

“भूमिरापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ।

एतेषु पंचभूतेषु धारणा पंचधेय्यते ॥

पादादि जानुपर्यंतं पृथ्वीस्थानं प्रकीर्तितम् ।

आजान्वोर्नाभिपर्यंतमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥

आनाभेहृदयांतं च बन्धिस्थानमुदाहृतम् ।

आहन्मध्याद्भुवोर्मध्यं यावदायुस्थलं स्मृतम् ॥

आंभ्रूमध्यात्तु मूर्द्धांतं यावदाकाशमिष्यते ॥”

अर्थ० भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांच महा-  
भूतोंमें पांच प्रकारकी धारणा होवेहै निम्न-वाद्सैं लेकर

जानुपर्यंत पृथिवीतत्त्वका स्थान है औ जानुसँ लेकर नाभि-  
पर्यंत जलतत्त्वका स्थान है तथा नाभिसँ लेकर हृदयपर्यंत  
अग्नितत्त्वका स्थान है औ हृदयसँ लेकर भ्रुवोंके मध्यदेशपर्यंत  
वायुतत्त्वका स्थान है तथा भ्रुवोंके मध्यदेशसँ लेकर ब्रह्मर-  
धपर्यंत आकाशतत्त्वका स्थान है ॥ सो इन पांच तत्त्वोंमें दे-  
वता औ बीजके सहित धारणा करणी चाहिये तिनमें प्रथम

“पृथिव्यां वायुमास्थाय लंकारेण समन्वितम् ।

ध्यायेच्चतुर्भुजाकारं ब्रह्माणं सृष्टिकारणम् ॥

धारयेत् पंचघटिकाः सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥”

अर्थ० पृथ्वीस्थानविषे प्राणवायुका धारण करके लं बीज-  
के सहित चतुर्भुजाकरके युक्त औ सृष्टिकी उत्पत्ति करनेहारे  
ब्रह्माका ध्यान करे इस प्रकार पंच घटिकापर्यंत धारणा  
करणेसँ योगीके शरीरगत सर्व रोगोंका नाश औ पृथिवी-  
तत्त्वका जय होवेहै इति ॥ तथा

“वारुणे वायुमारोप्य वकारेण समन्वितम् ।

स्मरन्नारायणं सौम्यं चतुर्बाहुं शुचिस्मितम् ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ।”

धारयेत् पंचघटिकाः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ”

अर्थ० जलके स्थानविषे प्राणवायुका निरोधकरके वं बीज-

केसहित चतुर्भुजावान् औ शुद्धस्फटिकमणिके समान वण  
 तथा पीतवस्त्रोकरके शोभायमान औ मंद मंद हास्य करते-  
 हुये सुंदरमूर्ति नारायणजीका ध्यान करे इस प्रकार पांच  
 घटिकापर्यंत धारणा करनेसें सर्व पापोंका विनाश औ जल-  
 तत्वका जय होवेहै इति ॥ तथा

“वन्ही चानिलमारोप्य रेफाक्षरसमन्वितम् ।

ज्यक्षं च वरदं रुद्रं तरुणादित्यसन्निभम् ॥

भस्मोद्भूतिसर्वांगं सुप्रसन्नमनुस्मरेत् ।

• • धारयेत् पंचघटिका वह्निनाऽसौ न दह्यते ॥”

अर्थ० अग्निके स्थानमें प्राणवायुका धारणकरके रं बीज-  
 के सहित त्रिलोचन औ तरुणादित्यके समान प्रकाश-  
 वान् तथा प्रसन्नमुख औ सर्व अंगोंमें भस्म धारण कियेहुये  
 महारुद्रका ध्यान करे ॥ इस प्रकार पांच घटिकापर्यंत धारणा  
 करनेसें सो साधक पुरुष अग्निकरके दग्ध नहि होवेहै अ-  
 र्थात् अग्नितत्वका जय होवेहै इति ॥ तथा

“मारुतं मारुतस्याने यकारेण समन्वितम् ।

चित्तयेचेश्वरं शांतं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥

• धारयेत् पंचघटिका वायुवदचोमगो भवेत् ॥”

अर्थ० वायुके स्थानविषे प्राणवायुका निरोध करके यं  
 बीजके सहित सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् शांत, सर्वव्यापक सर्वके

कारण ईश्वरका ध्यान करे इस प्रकार पाँच वटिकापर्यंत धारणा करनेसे योगी वायुकी न्याई आकाशमें गमन करे है अर्थात् वायुतत्त्वका जय होवे है इति ॥ तथा

“आकाशे वायुमारोप्य हकारोपरि शंकरम् ।

चिन्दुरूपं महादेवं व्योमाकरं सदाशिवम् ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं वाटेन्दुधूममौलिनम् ।

पञ्चवक्त्रयुतं सौम्यं दशबाहुं त्रिलोचनम् ॥

सर्वायुधोद्यतकरं सर्वाभरणभूषितम् ।

उमार्द्धदेहं वरदं सर्वकारणकारणम् ॥

चित्तयेन्मनसा नित्यं मुहूर्तमपि धारयेत् ।

स एव मुक्त इत्युक्तस्तांत्रिकेष्वपि शिक्षितैः ॥”

अर्थ० आकाशके स्थानविषे हं बीजके सहित प्राणवायुका स्थापन करके तिसके ऊपर अँकारकी अर्द्धमात्रारूप आकाशकीन्याई व्यापक औ शुद्धस्फटिकके समान गौरवर्ण तथा मस्तकविषे वाटचंद्रमा औ पाँच मुख दश भुजा तथा एक एक मुखमें तीन तीन नेत्र औ हस्तोंमें खट्ट शूट पिनाक आदिक आयुध औ सर्व प्रकारके भूषणोंकरके विभूषित तथा अर्द्धांगमें पार्वतीकरके युक्त जो सर्वकारणोंकेभी कारण महादेव हं तिनका ध्यान करे इस प्रकार एक मुहूर्तभी धारणा करे तो सो पुरुष मुक्तस्वरूप होवे है औ आकाशतत्त्वका-

भी. जय होवेहै इति ॥ यह पांच महाभूतोंकी धारणाकी विधि है ॥ इस प्रकारसे धारणाद्वारा पांच महाभूतोंके जय होनेतें योगी अमरभावकूं प्राप्त होवेहै यह वार्ता शिवसंहितामें भी कथन करीहै

“मेधावी पंचभूतानां धारणां यः समभ्यसेत् ।

ब्रह्मशतगतेनापि मृत्युस्तस्य न विद्यते ॥”

अर्थ० जो मेधावी योगीपुरुष पूर्वोक्त प्रकारसे पांच महाभूतोंकी धारणाका अभ्यास करता है सो पांच महाभूतोंके जय होनेतें सो ब्रह्माके चले जानेसेभी तिसकी मृत्यु नहि होवेहै इति ॥ सो इन उक्त धारणाविषे सर्वतरफसे निग्रहपूर्वक स्थापनकरके मनकूं एकाग्र करना चाहिये ॥ किंच पतंजलिऋषिने योगसूत्रोंमें मनके निग्रह करनेके अर्थ अन्यभी उपाय कथन कियेहैं ॥ सोभी संक्षेपसे यहां दिखावेहैं

“विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी॥”

अर्थ० विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न भयीभी मनकी स्थिरतामें कारण होवेहै, तात्पर्य यह ॥ जिह्वाके अग्रभागविषे चित्तकी एकाग्र धारणा करनेसे अल्पकाठविषेहि साधक पुरुषकूं दिव्यरसकी उपलब्धि होवेहै औ जिह्वाके मध्यदेशविषे धारणा करनेसे दिव्यस्पर्शकी उपलब्धि होवेहै तथा जिह्वाके मूलदेशविषे धारणा करनेसे दिव्यशब्दकी उपलब्धि होवेहै औ



तालुविषे धारणा करणेंसे दिव्यरूपका अनुभव होवेहै तथा नासिकाके अग्रभागविषे धारणा करणेंसे दिव्यगंधकी उपलब्धि होवेहै ॥ इस प्रकारसे जिस कालविषे पांच दिव्यविषयोंका साक्षात्कार होवेहै तिसका नाम विषयवती प्रवृत्ति है ॥ सो इन विषयोंके साक्षात्कार होबेसे तिनमें आसक्त भया मन बाह्यमुखताका परित्याग करके तहांहि स्थिरभावकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ सो यद्यपि यह पतंजलिमहर्षिका कथन सत्यहि है काहेतें तिसकूं सवज्ञ औ सत्यवक्ता होनेतें तथापि जवपर्यंत उक्त पांच विषयोंमेंसे साधककूं एककाभी साक्षात्कार नहि होवेहै तवपर्यंत तिसका दृढ विश्वास नहि होवेहै ॥ औ जो एककाभी साक्षात्कार होवेहै तो यावत्पर्यंत ब्रह्ममाण अणिमादिक ऐश्वर्यमें लेकर कैवल्यमोक्षपर्यंत योगका फल है तिस सर्वमें दृढ विश्वास उत्पन्न होवेहै औ दृढ विश्वासके होनेतेंहि शीघ्र योगकी सिद्धि होवेहै यातें दृढ विश्वासकी उत्पत्तिके अर्थ साधक पुरुषकूं उक्त विषयोंमेंसे एक अथवा दोका अवश्यहि धारणाद्वारा साक्षात्कार करणा योग्य है इति ॥ अथवा “विशोका वा ज्योतिष्मती”

अर्थ०शोकमें रहित जो ज्योतिष्मती प्रवृत्ति है सोभी उत्पन्न भयो चित्तकी स्थिरताका हेतु होवेहै तात्पर्य ग्रह ॥ हृदयकमटमें कलोलमें रहित क्षीरसागरकी न्याईं चित्तसत्त्वकी

भावना करनेसे सूर्य चंद्रमा अथवा तारा वा मणिकी न्याईं हृदयदेशमें तेजःपुंजकी उपलब्धि होवेहै काहेतें चित्तसत्त्वकूं तेजोमय होनेतें ॥ यह वार्ता कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउप निपत्मेंभी कथन करीहै

“नीहारधूमाकान्तानिलानां  
खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम् ।  
एतानि रूपाणि पुरःसराणि  
ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥”

अर्थ० जिसकालविषे योगाभ्यास करनेमें नीहार, धूम, सूर्य, अग्नि, वायु, विद्युत्, खद्योत, स्फटिकमणि, चंद्रमा, इत्यादिकें रूपोंकी हृदयदेशविषे उपलब्धि होवेहै तो पश्चात् समाधिद्वारा शीघ्रहि ब्रह्मका साक्षात्कार होवेहै इति ॥ तथा योगवासिष्ठके उपशमप्रकरणविषे उद्दालकमुनिके आख्या-  
नमेंभी कथन कियाहै “तमस्युपरते स्वांते तेजःपुंजं दद-  
तां सः ।” अर्थ० धारणा करके तमके नष्ट होनेतें पश्चात्  
‘सो उद्दालकमुनि अपने हृदयमें तेजका पुंज देखता भया  
इति ॥ इस प्रकारसें जिस कालविषे योगीकूं हृदयदेशविषे  
तेजःपुंजका साक्षात्कार होवेहै तो किंचित्मात्रभी शोक  
नहि रहेहै यातें तिसका नाम विशोकं ज्योतिष्मतीप्रवृत्ति  
है इसके साक्षात्कार हुयेभी चित्तकी स्थिरता होवेहै इति ॥

इसीकूँ योगीलोक आत्मसाक्षात्कार कहतेहैं ॥ अथवा “स्व-  
मनिद्राज्ञानालंबनं वा” अथ० वेदांतशास्त्रके श्रवणपूर्वक  
सर्व जगत्त्रिपे स्वप्नकी न्याईं औ सुषुप्तिकी न्याईं ज्ञानका  
आलंबन करे अर्थात् इस सर्व जगत्कूँ स्वप्नके तुल्य अथवा  
सर्व तरफसे संसृत शून्यकी न्याईं देखे इति ॥ यह वार्ता  
योगवार्तिकमेंभी कथन करीहै

“दीर्घस्वप्नमिमं विद्धि दीर्घं वा चित्तविभ्रमम् ।

चराचरं तय इव प्रसुप्तमिह पश्यताम् ॥

अर्थ० इस चराचर सर्व जगत्कूँ दीर्घ काटका स्वप्न अ-  
थवा चित्तका विभ्रम जाने अथवा प्रलयकाटकी न्याईं सर्व  
तरफसे शून्यवत् प्रसुप्त भया देखे इति ॥ इस प्रकारकी धा-  
रणा करनेमेंभी चित्तकी स्थिरता होवेहै इति ॥ अथवा  
“यथाभिमतध्यानादा” अर्थ० विष्णु महादेवादिक जो  
ध्येय देयता हैं तिनमेंसे जो अपना इस देय होवे तिस-  
हीका ध्यान करे तिसकरकेभी मनकी स्थिरता होवेहै इति ॥  
तथा “इंश्वरप्रणिधानादा” अर्थ० सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् प्र-  
कृतिका नियंता अव्यक्त जो ईश्वर है तिसका ध्यानाधन क-  
रणेमेंभी चित्तकी स्थिरता होवेहै ॥ जो ईश्वरका उद्गमभी  
तहांहि पतंजलिने कथन कियाहै “कृतात्मविपाकाशयैरप-

रामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः” अर्थ० अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, यह जो पांच प्रकारके क्लेश हैं औ शुभाशुभ जो द्विविध कर्म हैं तथा तिन कर्मोंके जो सुखदुःखरूप फल हैं औ तिन सुखदुःखोंके जो संस्कार हैं तिन सर्वकरके वर्जित जो सर्वसं उत्कृष्ट पुरुष है तिसका नाम ईश्वर है इति, ॥ यद्यपि परमाथदृष्टिसें सर्व जीवोंका आत्माभी उक्त क्लेशकर्मादिकोंकरके वर्जित है तथापि, जैसे सेनाविषे वर्तमान जय पराजयका, राजामें आरोपण होवेहै तैसेहि अंतःकरणगत क्लेशकर्मादिकोंका आत्माविषे आरोपण होवेहै औ ईश्वरमें तो शुद्धसत्त्वमय उपाधि होनेतें क्लेश कर्मादिकोंका आरोपणभी नहि संभवेहै यातें ईश्वर सर्वसं उत्कृष्ट पुरुष है ॥ औ जो कोई कहे मुक्त पुरुषोंविषेभी क्लेश कर्मादिकोंके आरोपणका अभाव होनेतें सोभी ईश्वर होवेंगे यह बातभी संभवे नहि, काहेतें मुक्त पुरुषोंविषे भूत बंधकोटिका सद्भाव होवेहै औ नित्यमुक्त सर्वज्ञ ईश्वरमें तो भू-त भविष्यत् वर्तमान तीनों कालविषेभी बंधपणा संभवता नहि यातें . मुक्त पुरुषोंकूंभी ईश्वरता संभवे नहि ॥

१ अंतःकरण औ पुरुषके भिन्न अविधिकसें जो अहंकर्ता, अहंभोक्ता इसप्रकारकी वृत्तिविशेष है तिसका नाम अस्मिता है.

२ मृत्युका भय.

औ जो कथंचित् कोई दूसरा ईश्वर सिद्धभी करोगे तो जग-  
त्की व्यवस्था नहि संभवेगी काहेतें एक कालविपेहि एक ई-  
श्वरने इच्छा करी जो अग्नि उष्ण होवे औ दूसरेने करी  
अग्नि शीतल होवे तो जो दोनोंमेंसे एककी इच्छा पूर्ण होवे  
तो दूसरेकूं ईश्वरपणा संभवे नहि \*औ जो दोनोंकी इच्छा  
पूर्ण होवे तो उष्णत्व, शीतलत्व, धर्मोंकूं परस्पर विरुद्ध हो-  
नेतें अग्निकी स्वरूपसिद्धिहि नहि होवेगी इस प्रकार सर्व ज-  
गन्हि व्यवस्थासैं रहित भया नाशकूं प्राप्त होवेगा ॥ औ जो  
दोनोंकी मिलकरके एकहि इच्छा मानोगे तो अन्योन्याश्रय-  
दोषकी प्राप्ति, औ ईश्वरकी स्वतंत्रताका विघात होवेगा औ  
जब ईश्वरकी स्वतंत्रताका विघात हुया तो ईश्वरकों\* स्वतंत्र-  
ताकी प्रतिपादन करणेहारी जो अनेकहि श्रुतिस्मृतियां हैं .  
तिनकूं व्यर्थापत्ति होवेगी यातें ईश्वर एक, स्वतंत्र, सघंज्ञ,  
नित्यमुक्त है यह वार्ता सिद्ध भयी ॥ तथा कृष्णयजुर्वेदकी  
श्वेताश्वतरउपनिषद्मेंभी कहाहै

“तमीश्वराणां परमं महेश्वरं  
तं देवतानां परमं च दैवतम् ।  
पतिं पतीनां परमं परस्तात्  
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥  
न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके

न चेशर्ता नैव च तस्य लिङ्गम् ॥

सकारणं करणकाधिपाधिपो

न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥”

अर्थ० जो देव ईश्वर जो ब्रह्मादिक हैं तिनकाभी महान् ईश्वर है औ देवता जो इन्द्रादिक हैं तिनकाभी परम दैवत है तथा कश्यप, दक्ष आदिक जो मजापति हैं तिनकाभी पति है औ कार्य संपंचमें परे जो प्रकृति है तिसमेंभी परे है तिम देवकूं हम ऋषिलोक जानतेहैं” तथा इस जगत्विषे तिसका अन्य कोई पति औ प्रेरणा करणेद्वारा नहिहै तथा तिसकी कोई प्रत्यक्ष व्यक्तिभी नहिहै औ सोई सर्व जगत्का कारण है तथा चक्षुआदि करणोंका अधिपति जो जीवात्मा है तिसकाभी अधिपति है इसी कारणसे तिसका कोई अन्य जनक औ अधिपति नहि है इति ॥ सो तिस ईश्वरके आराधन करणेका विधानभी योगसूत्रोंमें कथन कियाहै “तस्य वाचकः प्रणवः” अर्थ० तिस ईश्वरका वाचक अर्थात् नाम प्रणव कहिये अँकार है औ ईश्वर तिसका वाच्य है ॥ यह वार्ता याज्ञवल्क्यनेंभी कथन करीहै

“अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः ।

तस्योँकारः स्मृतो नाम तेनाहूतः मसीदति ॥”

अर्थ० अदृष्टविग्रह औ मनोमय तथा भावकरके ग्राह्य

जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् ईश्वर है तिसका अँकार नाम है सो जैसे नामकरके घुटाया हुआ पुरुष समीप आवेहै तैसेहि अँकारके जप करणसे ईश्वरकी सन्निधि औ प्रसन्नता होवेहै इति सो यह ईश्वर औ प्रणवका वाच्यवाचकभावसंबंध अनादि है किसी करके नवीन नहि किया जावेहै किंतु संकेत करके तिसका प्रकाश होवेहै जैसे पितापुत्रका प्रथम विद्यमान संबंधका पश्चात् लोकोत्तरके यह, इसका पिता है यह पुत्र है इस प्रकारसे प्रकाश होवेहै ॥ “तज्जपस्तदर्थभावनम्” अर्थ० तिस प्रणवका विधिपूर्वक जो जप . औ, तिसके अर्थका चिंतन करणा है सो ईश्वरका परम आराधन है तिनमें जपकी विधि तो पूर्वहि निरूपण करि अर्थहै औ अँकारका अर्थ अनेक प्रकारसे श्रुतिस्मृतियोंविषे निरूपण कियाहै परंतु तिन सर्वमें अथर्ववेदकी मांडूक्यउपनिषत्में जो अर्थ कथन कियाहै सोई सर्व आचार्योंकूं संमत है सो संक्षेपसे यहां दिखावेहैं ॥ अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा, इस भेदसे अँकारकी चारि मात्रा हैं तिनमें जाग्रतअवस्था, विश्व, विराट, यह तीनों अकारका अर्थ है औ स्वप्नावस्था, तेजस हिरण्यगर्भ, यह तीनों उकारका अर्थ है तथा सुषुप्तिअवस्था, प्राज्ञ, ईश्वर यह तीनों मकारका अर्थ है औ तुरीयावस्था, साक्षी, ब्रह्म, यह तीनों अर्द्धमात्राका अर्थ है अर्धमात्रकूं

अमात्र अकारभी कहतेहैं ॥ इस प्रकारसे चारों मात्रोंका अर्थचिंतन करके पश्चात् अकारका उकारमें औ उकारका मकारविषे तथा मकारका अमात्र अकारमें लय चिंतन करे यह अकारके अर्थका विधान है औ जो इसका विशेषविधान है सो विचारमागर अथवा सुरेश्वराचार्यकृत पंचीकरणविषे देखलेना ॥ सो यद्यपि योगभाष्यकारने प्रणवका इस प्रकारसे अर्थ नहि कियाहै तथापि उक्तप्रकारसे अभेदचिंतन करणाहि ईश्वरका परम आराधन है काहेतें “द्वितीयादौ भयं भवति” इत्यादिक श्रुतियोंविषे भेददर्शी पुरुषक भय प्रतिपादन कियाहै ॥ सो यह प्रणवहि सर्व मंत्रोंमें श्रेष्ठ मंत्र है, यह वाता पराशरस्मृतिविषेभी कथन करीहै ॥

“सर्वेषां जपसूक्तानामृचां च यजुषां तथा ।

साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः ॥

तस्याश्चैव तु अकारो ब्राह्मणाय उपासतः ॥”

अर्थ० यावत्मात्र चारि वेदोंविषे जप, सूक्त, ऋचा, यजुः एकाक्षरादिकें साम हैं तिन सर्वविषे गायत्रीमंत्र उत्तम है पुना गायत्रीसेभी ब्राह्मणकरके उपासित किया हुआ

१. यहां ब्राह्मणशब्द वैदिकसंस्कारयुक्त क्षत्रिय औ वैश्यकाभी उपलक्षणजानना औ शूद्रकोतो मणवर्जाजत् शिवपंचाक्षर अथवा ना रायणाष्टाक्षर मंत्रकाहि जप करणा चाहिये क्युंकि शूद्रका मणवजपमें अधिकार नहिहै ॥



ॐकारमंत्र उत्तम है इति ॥ किंच ॐकारहि सर्व वेदोंका सार है, यह वांता सामवेदकी छांदोग्यउपनिषत्मेंभी कथन करीहै

“प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत् तेभ्योभितमेभ्यस्त्र-  
यीविद्यासंप्राप्तवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितमा-  
या एतान्यक्षराणि संप्राप्तवन्त भूर्भुवःस्वरिति  
तान्यभितपत्तेभ्योभितमेभ्य ॐकारः संप्रा-  
प्तवत्तद्यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि संतृणान्ये-  
वमोंकारेण सर्वा वाक् संतृणा ॐकार एवेदःसर्वम्”

अर्थ० प्रजाका पति जो ब्रह्मा है सो जगत्के आदिकाल-  
विषे तीनों लोकोंकूं उत्पन्न करके तिनकूं सारदृष्टिमें मंथन कर-  
ता भया तो तिनके मंथन करनेसे तिनमेंसे ऋग्वेद, यजुर्वेद,  
सामवेद, यह तीन वेद निकसे पुना तिन तीनों वेदोंकूं मंथन  
करता भया तिनके मंथन करनेसे भूः, भुवः, स्वः, यह तीन  
व्याहृतियां निकसी, पुना तिनकूंभी मंथन करता भया तिनके  
मंथन करनेसे ॐ यह एक अक्षर निकसा सो जैसे शंकुके  
रके सर्व घुँसोंके पत्र ओतप्रोत होतेहैं तैसेहि इस ॐकारकरके  
सर्व वाचा ओतप्रोत होय रही है औ वाचाविषे सर्व जगत्  
ओतप्रोत है काहेतें वाचाविना किसी पदार्थकीभी सिद्धि

नहि होवेहे यातें अँकारहि सर्व जगत् रूप है इति ॥ तथा  
इंसप्रकारसँ अँकारका जप औ अर्थचिंतन करणेका फलभी  
योगसूत्रोंमें हि कथन कियाहै

“ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यंतरायाभावश्च”

अर्थ० उक्तप्रकारसँ प्रणवका जप औ अर्थचिंतनकरणेसँ  
प्रत्यक्चेतन जो अंतरात्मा है तिसका साक्षात्कार होवेहै यह  
वार्ता योगवासिष्ठके उपशमप्रकरणविषेभी कथन करीहै “अँ  
कारोच्चारितो येन तेनार्थं परमं पदम्” अर्थ० जिस पुरुषने वि-  
धिवत् अँकारका उच्चारण कियाहै सोई परमपदकूँ प्राप्त होता  
भया है इति ॥ तथा अथर्ववेदकी मन्त्र उपनिषत्मेंभी कहाहै  
“एतद्दि सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोँकारस्तस्माद्विद्वाने-  
तेनेवायतनेनैकतरमन्वेति” अर्थ० हे सत्यकाम यह अँकारहि  
पर औ अपर ब्रह्मरूप है यातें उपासकपुरुष इसहिकरके  
पर अथवा अपर ब्रह्मकूँ प्राप्त होतेहैं तिनमें जो निष्काम  
होवैहैं सो तो ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा यहांहि मोक्षकूँ प्राप्त होतेहैं  
औ जो सकाम होवैहैं सो ब्रह्मलोकमें जायकर कल्पके अंतवि-  
षे ब्रह्माके साथ मोक्षकूँ प्राप्त होतेहैं इति ॥ तथा “अंतराया-  
भावः” कहिये अँकारके जप औ अर्थचिंतन करणेमें योगा-

भ्यासविषे जो विघ्न होवेहैं तिनकीभी निवृत्ति होवेहैं ॥ सो-  
 'तिन विघ्नोंके नामभी योगसूत्रोंमेंहि निरूपण कीयेहैं' . .

“व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादादस्यविरतिभ्रांतिदर्शना

लब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तंतरावाः”

अर्थ० व्याध, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अवि-  
 रति, भ्रांतिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व, इसभेद-  
 सँ चित्तके विक्षिप्तकरणेहारे नवप्रकारके विघ्न हैं ॥ तिनमें वा-  
 तपित्तादिक धातुवोंकी विषमताकरके जो शरीरविषे ज्वरा-  
 दिक रोग होवेहैं तिसका नाम व्याधिहै ॥ औ चित्तकी जो  
 अकम्प्यता कहिये योगाभ्यासरूप कर्मविषे अभवृत्ति है तिस-  
 का नाम स्त्यान है ॥ तथा योगाभ्यास करणाभ्योग्यहै अ-  
 थवा नहि इसप्रकारकी उभयकोटी आलंघन करणेहारी जो  
 चित्तकी वृत्ति है तिसका नाम संशय है ॥ औ समाधिके  
 साधनोंविषे जो उदासीनता है तिसकुं प्रमाद कहतेहैं ॥ तथा  
 योगाभ्यासविषे प्रवृत्तिके अभावका हेतु जो शरीर औ म-  
 नका गुरुत्व है सो आलस्य कहिये है ॥ औ चित्तविषे जो  
 स्त्रीआदिक विषयोंकी अभिलाषाहै तिसका नाम अविरति है  
 तथा योगके साधनविषे असाधनबुद्धि औ असाधनविषे जो  
 साधनबुद्धि है तिसका नाम भ्रांतिदर्शन है ॥ औ व्यवहार-  
 प्रसक्तिआदिक किसी निमित्तकरके जो योगभूमिकाकी अ-

प्राप्ति है तिसका नाम अलब्धभूमिकत्व है ॥ तथा योगभूमि-  
काकी प्राप्ति भयेत अनंतर जो तिसविषे चितकी 'अप्रतिष्ठा'  
है सो अनवस्थितत्व कहियेहै ॥ इसप्रकारसे यह सर्वहि वि-  
त्तकी एकाग्रताविषे विरोधि होनेतें विघ्नरूप हैं इति ॥ सो  
पूर्वोक्तप्रकारसे अँकारके उपद्वारा ईश्वरके आराधन करणेतें  
तित सबकी निवृत्ति होवेहै तो पश्चात् निराकुल भया चित  
धारणादेशविषे स्थिरभावकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ यातें योगी  
पुरुषकूं सर्वविघ्नोके नाशपूर्वक समाधिकी सिद्धिविषे हेतुभूत  
जो ईश्वरका आराधन है सो अवश्यहि करणा योग्य है का-  
हेतें ईश्वरके अनुग्रहकरकेहि यह 'पुरुष सिद्धिकूं प्राप्त होवेहै  
यह वार्ता श्रुतिमेंभी कथन करीहै "एष उद्येव साधु कर्म कारय-  
ति तं तमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीशते" अर्थ० यह ईश्वरहि जिस  
पुरुषकूं ऊर्ध्वलोकोविषे लेजानेकी इच्छा करताहै तिससे शु-  
भकमाचरण करावताहै इति ॥ तथा शारीरकसूत्रोंमें व्यासजी-  
नेभी कहाहै "परात् तच्छ्रुतेः" अर्थ० यह जीव ईश्वरके अ-  
धीन भयाहि शुभाशुभकर्मविषे प्रवृत्त होवेहै काहेतें इसयाता  
विषे उक्त श्रुतिके प्रमाण होनेतें इति ॥ तथा गीताके अष्टा-  
दशाध्यायविषे भगवान्नेभी कहाहै

“तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।

तत्प्रमादात्परां शान्तिं स्यान् प्राप्स्यसि शाश्वतम्”

अर्थ० हे अर्जुन, तू तिस एक ईश्वरकीहि शरणकूं प्राप्त-  
 होहु काहेतें तिस ईश्वरके अनुग्रहकरकेहि तू परम शांति औ  
 अचल स्थानकूं प्राप्त होवेगा इति ॥ शंका ॥ तुमने जो कहा  
 साधक पुरुषकूं ईश्वरका आराधन करण। चाहिये सो बातें  
 असंभव है काहेतें अनेक श्रुति स्मृतियोंविषे जीव औ ईश्वरकूं  
 एकरूपता कथन करीहै ॥ समाधान ॥ यद्यपि परमार्थदृष्टिसें  
 जीव ईश्वरसें अभिन्नहि है तथापि जीवकूं ईश्वरका अवश्य-  
 मेव आराधन करणा योग्य है, यह बातें पदपदीविषे  
 शंकराचार्यनेभी कथन करीहै

“सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।

सामुद्रो हि तरंगः कचन समुद्रो न तारंगः ॥”

अर्थ० हे सर्व जगत्के नाथ ईश्वर, यद्यपि तुमारे औ ह-  
 मारेमें जो भेद था सो तो ज्ञानकी प्राप्ति होनेतें नाशकूं प्राप्त  
 होगयाहै तथापि मैं तुमारा हूं तुम हमारे नहि-काहेतें जैसे  
 यद्यपि जलरूपसें समुद्र औ तरंग एकहि होतेहैं तथापि तिन-  
 में तरंगहि समुद्रका होवेहै समुद्र तरंगका कहींभी नहि होवेहै  
 इति याते ईश्वरका आराधन ज्ञानवानकाभी करणा उचित  
 है ॥ १८ ॥ इस प्रकारसें धारणाका लक्षण औ तिमका  
 उपयोगी ईश्वरका आराधन निरूपण करके अब योगका  
 मन्त्र अंग जो ध्यान है तिसका लक्षण वर्णन करेहैं ॥

॥ इन्द्रवंशा वृत्तम् ॥

वृत्त्येकतानत्वमखंडितं तु य-  
त्तन्नान्यसंकल्पविकल्पजालकैः ॥  
तैलस्य धारेव समाधिगोपुरं  
ध्यानं तदेवाद्दुरदीनचेतसः ॥ १८ ॥

वृत्त्येकतानत्वमिति ॥ तत्र कहिये तिसं पूर्वोक्त धारणादे शविपेहि नानाप्रकारके अन्य संकल्पविकल्पोकरके अखंडित जो चित्तवृत्तिका तैलधारकी न्याहं 'एकतानत्व' कहिये सदृशमेवाह है तिसकुं उदारचित्तवाले योगीजन समाधिका द्वारभूत ध्यान कहतेहैं ॥ इति तथा योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कहाहै "तत्र मत्तयैकतानता ध्यानम्" अर्थ० तिस धा- णादेशमेंहि अन्यवृत्तियोंकरके अनिश्रित जो चित्तवृत्तिका सदृश प्रवाह है तिसका नाम ध्यान है इति ॥ सो ध्यान स- गुण औ निगुण इस भेदसें दो प्रकारका है तिनमें पुना वि- ष्णुध्यान, अग्निध्यान, सूर्यध्यान, भूध्यान, पुरुषध्यान, इस भेदसें सगुणध्यान पांच प्रकारका है सो तिन सबके दक्षण

याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियेहैं सो यहाँ मसंगसे निरूपण  
करेहैं ॥ निम्नमें

“हृत्पद्मेऽटदलोपेते कन्दमध्यात्समुत्थिते ।  
द्वादशांगुलनालोस्मिंश्चनुरंगुलवन्मुखे ॥  
प्राणायामैर्विकसिते केशरान्वितकार्णिके ।  
वासुदेवं जगद्योनिं नारायणमजं विभुम् ॥  
चतुर्भुजमुदारांगं शंखचक्रगदाधरम् ।  
ह्रिरीदकेयूरधरं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥  
श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ।  
नीलोत्पटदटाभासं सुनसन्नं शुचिस्मितम् ॥  
शुद्धरुद्रिकसंकाशं पीतवामममच्युतम् ।  
पद्मस्यस्यपदद्वंदं परमात्मानमव्ययम् ॥  
मभाभिर्भास्यद्रूपं परितः पुरुषोत्तमम् ।  
मनसाढोक्य देवेशं सयंभूतहृदि स्थितम् ॥  
सोऽहमात्मेति विज्ञाने सुगुणं ध्यानमुच्यते ॥”

अर्थ कंदस्थानमें द्वादश अंगुलपरिमाण ऊर्ध्वं है जात  
जिसकी ओर प्यारि अंगुल मध्यमे पिस्तारयान तथा रेचक-  
माणायामके अथवासकके विकासक नाम भया जो अट द-  
टोंकके पुनः हृदयकमंड है निम्नलिखे रूप जगत्के कारण-  
भूत अजन्मा श्री व्यापक चतुर्भुजायान् उद्धार अंग तथा

शंख चक्र गदा पद्म हस्तोंविषे धारण किये हुये किरीटके-  
 युरादिक भूषणोंकरके शोभायमान औ नील धंकरके समान  
 श्यामवर्ण तथा प्रसन्न औ मंदमंदहास्यकरके युक्त है मुख  
 जिनका तथा शुद्धस्फटिक मणियोंके समान है प्रभा जि-  
 नकी औ पीत वर्णोंकरके युक्त तथा कमलके समान कोमल  
 हैं चरण जिनके औ अपणे तेजकी किरणोंकरके सर्व तरफसे  
 प्रकाशमान है स्वरूप जिनका ऐसे जो सर्वभूतोंके हृदयमें  
 स्थित लक्ष्मीके पति पुरुषोत्तम विष्णु भगवान् हैं सो मैंहि हूं  
 इस प्रकारसे जो एकाग्रचित्त होयकरके अभेद चिंतन करना  
 है सो सगुणध्यान कहियेहै इसहिका नाम विष्णुध्यान है इति  
 इसीप्रकार शैवलोकोको पूर्वोक्तपंचमहाभूतधारणा प्रसंगविषे  
 कथन विधिसे महादेवजीका ध्यान करना चाहिये ॥ तथा

“हृत्सरोरुहमध्येस्मिन् प्रकृत्यात्मककार्णिके ।  
 अटैश्वर्यदटोपेते विकारमयकेसरे ॥  
 ज्ञाननाले घृहत्कन्दे प्राणायामप्रबोधिते ॥  
 विश्वार्पणं महावाहिं ज्वलन्तं विश्वनोमुरम् ॥  
 वैश्वानरं जगद्योनिं शिरानां बीजमीश्वरम् ॥  
 तौपयंतं स्वयं देहमापादतमस्तनूम् ।  
 नियांतदीपवत्तन्मिन् दीपितं हृदयवाहनम् ॥  
 दृष्ट्वा तस्य शिरा मध्ये परमात्मानमक्षम् ॥



बोलतोयदमध्यस्थविद्युत्तेखेव राजितम् ॥

नीवारशूकवद्रूपं पीताम्नं सर्वकारणम् ।

ज्ञात्वा वैश्वानरं देवं सोहमात्मेति या मतिः ॥

स गुणेषूत्तमं ह्येतत् ध्यानं योगविदो विदुरिति ॥”

अर्थ० प्रकृतिरूप है कर्णिका जिसकी औ अणिमादिक अष्टसिद्धिरूप हैं अष्टपत्र जिसके तथा षोडशविकाररूप हैं केसर जिसमें औ ज्ञानरूप है नाड जिसकी तथा महत्तत्त्व-रूप है कंद जिसका औ रेखकप्राणायामके अभ्यासकरके विकसित है मुख जिसका ऐसा जो हृदयकमलहै तिसविषे अनेक किरणोंकरके युक्त औ च्यारितर्फसे प्रकाशमान तथा सर्वजगत्का कारणभूत औ शिखायोंका बीजभूत तथा पाद-तलसे लेकर मस्तकपर्यंत जो अपने शरीरकूं तपायमानकर रहाहै औ निर्वातदेशविषे स्थित दीपककी न्यांई अचलशि-खावान् ऐसा जो वैश्वानरनामा मशअग्नि है तिसकी शिखाके मध्यमें जैसे नीलमेघके बीच विद्युत्की रेखा होवेहै तैमेहि अक्षरपरमात्माकूं देखकरके नीवारके अग्रभागके समान पी-तवर्ण औ सर्वजगत्का कारणभूत जो अग्निहै तिसका सोमंहि हु इमप्रकारसे हृदयदेशमें जो अभेदचिन्तन करणा है. तिसकूं

सर्वं सगुणध्यानोमें उत्तम ध्यान योगीलोक जानतेहैं, यह, अंग्रिध्यान है इति ॥ तथा

“अथवा मंडलं पश्येदादित्यस्य महामनाः ।

आत्मानं सर्वजगतः पुरुषं हेमरूपिणम् ॥

हिरण्यश्मश्रुकेशं च हिरण्मयनखं हरिम् ।

पद्मासनं चतुर्वक्त्रं सृष्टिस्थित्यंतकारणम् ॥

ब्रह्मासनस्थितं सौम्यं प्रबुद्धकमलासनम् ।

भासयन्तं जगत्सर्वं दृष्ट्वा लोकैकसाक्षिणम् ।

• सोहमात्मेति या बुद्धिः सा च ध्यानेषु शस्यते ॥”

अर्थ० अथवा पूर्वोक्त लक्षण हृदयाकाशदिये सुवर्णमय श्मश्रु केश औ नखोंकरके शोभायमान तथा पद्मासनमें स्थित औ चतुर्मुख तथा सर्वजगत्की उत्पत्ति, स्थिति औ नाशका कारणभूत तथा विकसित भये कमलविषे ब्रह्मासन लगायकर विराजमान औ अतीव सौंदर्यकरके युक्त तथा सर्वजगत्के प्रकाशकरणेद्वारा औ सर्वलोकका साक्षीभूत ऐसा जो सर्व जगतका आत्मारूप सुवर्णमयपुरुष सूर्य भगवान् है निनका मंडलाकारमें सो मैंहि हूं इसप्रकारमें जो अभेदचितन करणा है निसका नाम सूर्यध्यान है यदि सूर्य ध्यानोमें प्रशस्त ध्यान है इति ॥ तथा

“भ्रुवोर्मध्येऽन्तरात्मानं भारूपं सर्वकारणम् ।  
 स्थाणुवन्मूर्ध्निपर्यंतं देहमध्यात्समुत्थितम् ॥  
 जगत्कारणमव्यक्तं ज्वलन्तममितौजसम् ।  
 मनसालोक्य सोहंस्यामित्येतद्ध्यानमुत्तमम् ॥”

अर्थ०- भ्रुवोके मध्यदेशविषे देहके मध्यभागसे लेकर म-  
 स्तकपर्यंत स्थाणुकी न्याई स्थित औ सर्वतरफसे प्रकाशमान  
 तथा सर्व जगत्का कारणभूत औ अमित प्रज्ञापवान् ऐसा  
 जो अंतरात्मा है तिसका तेजोविबस्वरूपसे एकाग्र मनकरके  
 सो मैंहि हुं इसप्रकारसे जो अभेद चिंतन करणा है तिम-  
 का नाम भूध्यान है यहि सर्व ध्यानोंमेंसे उत्तम ध्यान है  
 इति ॥ तथा

“उन्निद्रहृदयाभोजे सोममंडलमध्यमे ।  
 स्वात्मानं मंडलाकारं भोक्तरूपिणमक्षरम् ॥  
 सुधारसं विमुंचद्भिश्शशिरश्मिभिरावृतम् ।  
 सहस्रच्छदसंयुक्तान् शिरःपद्मादधोमुखात् ॥  
 निर्गतामृतधाराभिः सहस्राभिः समंततः ।  
 प्रावितं पुरुषं तत्र चिंतयेत्तु समाहितः ॥  
 तेनामृतरसेनैव सांगोपांगकटेवरम् ।  
 अहमेव परंब्रह्म सच्चिदानंदलक्षणम् ॥”

“एवं ध्यानामृतं कुर्वन् षण्मासान्मृत्युजिह्वेत् ।

वत्सरान्मुक्त एव स्याज्जीवन्नपि न संशयः ॥”

अर्थ० पूर्वोक्त लक्षण विकसित भये हृदयकमलमें चंद्र-  
मंडलके मध्यदेशविषे सहस्रदलोंकरके युक्त औ अधोमु-  
ख जो दशम द्वारमें पड़ा है तिसमें निकसकर नीचे पति-  
त भयी जो अनेकहि अमृतकी धारा तिनकरके घुलित औ  
सुधारसकूं सिंचन करतीहुयी चंद्रमाकी किरणोंकरके सर्व-  
तरफसे आवृत तथा अमृतके सिंचनसे सांगोपांग पुष्ट तेजोमय  
शरीरकरके युक्त ऐसा जो भोक्तारूप पुरुष है तिसका मंड-  
लाकारसें सो मैंहि सच्चिदानंद परब्रह्मरूप हूं इस प्रकारसें  
जो अभेदधितन करना है तिसका नाम पुरुषध्यान है ॥  
इस ध्यानके करणसें साधक पुरुष षट् मासके अनंतर मृत्यु-  
कूं जय करटेवेहै औ जो वर्षपर्यंत करे तो जीवताहि मुक्तस्व-  
रूप होवेहै इस बातमें संशय नहि इति ॥ यह पांच प्रकारके  
सगुण ध्यानके लक्षण हैं ॥ तथा निर्गुण ध्यान तो एकहि  
प्रकारका है तिसका लक्षणभी तहांहि कथन कियाहै ॥

“एकं ज्योतिर्मयं शुद्धं सर्वगं व्योमवद्दृढम् ।

अनंतमघटं नित्यमादिमध्यांतधर्जितम् ॥

• स्थूलं सूक्ष्ममनाकाशसमवर्णमचांशुप्रम् ।

न रसं न च गंधाख्यमग्रेयमनामयम् ॥

आनन्दमजरं नित्यं सदसत् सर्वकारणम् ।

सर्वाधारं जगद्रूपममूर्तमजमव्ययम् ॥

अदृश्यं दृश्यमन्तस्थं वहिःस्थं सर्वतोमुखम् ।

सर्वदृक् सर्वतः पादं सर्वस्पृक् सर्वतः करम् ॥

ब्रह्मब्रह्ममयोहं स्यामिति यदेदनं भवेत् ।

तदेतन्निर्गुणं ध्यानं ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः ॥”

अर्थ० एक, ज्योतिर्मय, शुद्ध, आकाशकी, न्याई सर्व-  
गत, दृढ, अनन्त, अचल, नित्य, आदिमध्यअन्तकरके वर्जित,  
स्थूल, सूक्ष्म, अनाकाश, अमृवर्ण, अरूप, अरस, अगंध,  
अप्रमेय, अनामय, आनन्दस्वरूप, अजर, नित्य, सत्अस-  
त्स्वरूप, सर्व जगत्का कारण, सर्वका अधिष्ठान, सर्वजगत्-  
रूप, अमूर्त, अजन्मा, अविनाशी, अज्ञानी जनोकरके अ-  
दृश्य, ज्ञानी जनोकरके दृश्य, सर्वके अन्तर औ वाहिर स्थित,  
सर्वतरफसें मुखवाला, सर्वतरफसें नेत्रवाला, सर्वतरफसें पा-  
दवाला, सर्वतरफसें त्वचावाला, सर्वतरफसें हस्तवाला, इन  
सर्वविशेषणोकरके उपलक्षित जो सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म है  
तिसका मैं ब्रह्मस्वरूपहि हूं, इस प्रकारसें जो एकाग्रचित्त  
होयकरके चिंतन करणा है तिसकुं प्रकृतिसंभो महत् जो ब्रह्म  
है तिसके जाननेहारे योगेश्वर लोक निर्गुणध्यान कहतेहैं  
इति ॥ तथा योगके ग्रंथोंमें अन्यभी अनेक प्रकारके ध्यान

कथन कियेहैं परंतु तिन सर्वमें यह उक्त पद ध्यान उत्तम है  
 यह वातांभी तहांहि याज्ञवल्क्यने कथन करीहै

“अन्यान्यपि बहून्वाहुर्ध्यानानि मुनिपुंगवाः ।

मुख्यान्येतानि धैतेभ्यो जवन्यानीतराणि तु ॥”

अर्थ० उक्त ध्यानोंसैं अन्यभी अनेक प्रकारके ध्यान मु-  
 निलोकोनें कथन कियेहैं परंतु तिन सर्वमें यह पद ध्यानहि  
 मुख्य हैं दूसरे सबहि इनसैं नीचे हैं इति ॥ सो इस ध्यान-  
 करकेहि भव पापोंका विनाश होवेहै, यह वातां अथर्ववेदकी  
 ध्यानविदुडपनिपनमेंभी कथन करीहै

“यदि शैटसमं पापं विस्तीर्णं योजनान् बहून् ।

मिथते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कथंचन ॥”

अर्थ० जो पर्वतके समान ऊंचे औ अनेक योजनपर्यंत  
 विस्तृतभी पाप होवें तो ध्यान करणेनें तिन सबका भेदन  
 होवेहै अन्य उपायकरके नहि डनि ॥ सब पापोंके क्षय हो-  
 नेनें अनंतर चित्तकी शुद्धि होवेहै अर्थात् मलविक्षेपका हेतु  
 जो ग्जो औ तमोगुण है तिनका निरोध होवेहै, यह वातां  
 पियेकचूडामणिप्रिये शंकराचार्यनेभी कथन करीहै

• “यथा सुवर्णं पटुपाकशोचिनं •

त्यक्त्वा मलं स्वान्मगुणं ममृच्छति । •

तथा मनः सत्त्वरजस्तमोमलं

ध्यानेन संत्यज्य समेति तत्त्वम् ॥”

अर्थ० जिस प्रकार क्षारादिक पाक करके शुद्ध किया हुआ सुवर्ण मलका परित्याग करके अपने उज्ज्वलत्व गुणकूँ प्राप्त होवेहै तैसेहि ध्यानकरके शुद्ध भया मन सत्त्वगुणके अभिभव करनेहारी जो रजोतमोगुणरूप मल है तिसका परित्याग करके तत्त्व जो अपना स्वरूप शुद्ध सद्गुण है तिसकूँ प्राप्त होवेहै इति ॥ किं च ध्यानकरकेहि आरमत्तश्रवका साक्षात्कार होवेहै, यह वार्ता ध्यानविंदु उपनिषद्मेंभी कथन करीहै

“स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ॥”

ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढवत् ॥”

अर्थ० शरीरकरके उपलक्षित अपने मनकूँ नीचेकी टकड़ी औ प्रणवकूँ ऊपरकी टकड़ी करके सो जैसे दो टकड़ीके मंथन करनेतें अग्निकी प्रकटता होवेहै तैसेहि ध्यानरूप मंथनके अभ्याससे परमात्मा देवका साक्षात्कार करणा योग्य है इति ॥ तथा अथर्ववेदकी मुंडकउपनिषद्मेंभी कहाहै

“ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः”

अर्थ० ध्यान करनेहारा पुरुषहि चित्तकी शुद्धिके अनंतर तिस निष्कलं परमात्माका साक्षात्कार करेहै इति ॥ तथा

ध्यानहि बंध औ मोक्षका हेतु है, यह वार्ता याज्ञवल्क्यनेभी कथन करीहै “ध्यानमेव हि जंतूनां कारणं बंधमोक्षयोः”

अर्थ० सर्व जंतुवोंकूं ध्यानहि बंध औ मोक्षका कारण होवेहै अर्थात् उपेक्षित किया हुआ बंधका कारण होवेहै औ सुत्कारपूर्वक सेवन किया हुआ मोक्षका कारण होवेहै इति ॥  
 यातें यह ध्यान सर्व जंतुवोंकूंहि करणा योग्यहैं यह वार्ता सामवेदकी छांदोग्य उपनिषत्में नारदजीकेप्रति सनत्कुमारजीनेभी कथन करीहै “ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीर्षांतरिक्षं ध्यायतीर्ष द्यौर्ध्यायतीर्षापो ध्यायतीर्ष पर्वता ध्यायतीर्ष देवमनुष्यास्तस्माद्यद्ग्रह मनुष्याणां महतां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादाश्चा इहैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलद्भिः पिशुना उपयादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादाश्चा इहैव ते भवन्ति ध्यानमुपासस्वेति”

अर्थ० पृथिवी ध्यान करतेकी न्याईं है औ अंतरिक्षभी ध्यान करतेकी न्याईं है तथा आकाशभी ध्यान करतेकी न्याईं है औ जलभी ध्यान करतेकी न्याईं हैं तथा पर्वतभी ध्यान करतेकी न्याईं हैं औ देवताभी ध्यान करतेकी न्याईं हैं तथा शमदमादिकें युक्त जो श्रेष्ठ मनुष्य हैं सोभी ध्यान करतेकी न्याईं हैं यातें इस लोकविषे जो जो पुरुष द्रव्य विद्या आदिकोंकरके महत्ताकूं प्राप्त होतेहैं सो सर्वध्यानके फलकी एक



अंश करकेहि होतेहैं औ जो क्षुद्र तथा . कलह करणेहारे  
 औ पराये दोषोंकूं परोक्ष कथन करणेहारे तथा सन्मुख निंदा  
 करणेहारे पुरुष हैं सो सर्वहि ध्यानके अभाव करकेहि होते  
 हैं औ जो इस लोकविषे प्रभुतावान् हैं सो सर्वहि ध्यानके  
 फलकी एक अंशकरकेहि होतेहैं यातें हे नारद तुं ध्यानकी  
 उपासना कर इति ॥ १९ ॥ इस प्रकारसे ध्यानका लक्षणी  
 निरूपण करके अब योगका अष्टम अंग जो समाधि है तिस-  
 का लक्षण वर्णन करेंहैं ॥

॥ इन्द्रवंशा वृत्तम् ॥

ध्येयस्वरूपोपगतं यदा मनो  
 विरम्य चात्मानमथावतिष्ठते ॥  
 संकल्पपूगापगतं तमन्तिमं  
 योगस्य सन्तोऽवयवं प्रचक्षते ॥२०॥

ध्येयेति ॥ जिस कालविषे ध्येय वस्तुके स्वरूपकूं प्राप्त भया-  
 मन अपने मननत्वस्वरूपका परित्याग करके औ सर्व प्रकार-  
 के संकल्पविकल्पोंसे रहित होयकर केवल ध्येय वस्तुके स्वरूप-  
 सेहि स्थित होवै तिसकूं महात्मा योगीलोक, योगका . अष्टम  
 अंगरूप समाधि कथन करतेहैं यह वार्ता योगसूत्रमें पतंजलि-

नेभी कथन करीहै “तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव स-  
माधिः” अर्थ० तिसहि ध्येयांतवनप्रत्ययकी अपणे ध्येयांत-  
वनस्वरूपका परित्याग करके ध्येय वस्तुके स्वरूपसेहि जो  
स्थिति है तिसका नाम समाधि है इति ॥ तथा अथर्ववे-  
दकी अमृतविंदु उपनिषत्मेंभी कहाहै “यं लब्ध्वाप्यवमन्येन  
समाधिः परिकीर्तितः” अर्थ० जिस कालविषे ध्येय पदार्थके  
स्वरूपकूं प्राप्त भया मन आपणा अवमान करेहै अर्थात् अपणे  
स्वरूपका परित्याग करके ध्येय पदार्थके आकारसेहि स्थिति  
होवेहै सो समाधि कहिहै इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी  
कहाहै

“अरितृपती निषिष्टां वृथाऽभिन्नं लयंस्त्वियात् ।

तथा भिन्नं मनस्तत्र समाधिं सममामुयात्”

अर्थ० जैसे समुद्रविषे प्रवेशकूं प्राप्त भया जलका विंदु स-  
मुद्रके साथ अभिन्न हुआ स्थित होवेहै तैसेहि जिस कालविषे  
ध्येय वस्तुमें प्रवेशकूं प्राप्त भया मन ध्येय वस्तुसें अभिन्न  
होयकर स्थित होवेहै तो समसमाधिकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा  
हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कहाहै

“मण्डिते संधवं यद्वत्साम्यं भजनि योगतः ।

तयात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥”

अर्थ० जैसे जलविषे स्थित भया लवण जलके संबंधसें

अपणे, स्वरूपका परित्याग करके जलरूपहि होय जावेहै तै-  
 सेहि आत्माविषे स्थित भया मन जिसकाठविषे अपणे मन-  
 नत्वस्वरूपका परित्याग करके आत्माके साथ एकताकूं प्राप्त  
 होवेहै तिसकूं समाधि कहतेहैं इति ॥ २० ॥ इस प्रकारसँ  
 समाधिका लक्षण निरूपण करके अब संयमका लक्षण औ  
 फल कथन करेहैं ॥

( इन्द्रवंशवृत्तम् )

एतच्चयं संयममाहुरुत्तमा ।

योगस्य मुख्यं करणं सुदुर्गमम् ॥

सिद्धयाऽस्य सिद्धयोधमिहाश्रुतेजसा ।

योगविशत्यप्यचिरं महाशयः ॥ २१ ॥

एतच्चयमिति ॥ पूर्व कथन किये जो धारणा ध्यान स-  
 माधि तिन तीनोंकूं योगशास्त्रके जाननेहारे उत्तम पुरुष संयम  
 कहतेहैं तात्पर्य यह ॥ जो यह तीनों न्यारे न्यारे विषयमें किये,  
 जावें तो इनका नाम धारणा ध्यान समाधि होवेहै औ जो  
 क्रमसँ तीनों एकहि विषयमें किये जावें तो तिनका नाम सं-  
 यम होवेहै यह बातों योगमूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करीहै  
 “त्रयमेकत्र संयमः” अर्थ० धारणा ध्यान समाधि यह

तीनों एक आलंबनमें किये हुये संयम संज्ञाकृं प्राप्त होवेहै इति ॥ सो यह संयमहि योगका मुख्य साधन है, यह वार्ता-भी तहांहि कथन करीहै “त्रयमंतरंगं पूर्वभ्यः” अर्थ० धारणा ध्यान समाधिरूप जो संयम है सो पूर्वोक्त यम नियमादिकोंसे संप्रज्ञात समाधिका अंतरंग कहिये मुख्य साधन है इति ॥ सो इस संयमकी प्राप्ति बहुत क्लेशकरके होवेहै काहेतें इसके अभ्यास करणेविषे विघ्नोंकी बहुलता होवेहै ॥ तथा अथर्ववेदकी तेजोविंदुउपनिषत्मेंभी कहाहै

“दुःसाध्यं च दुराराध्यं दुष्प्रेक्ष्यं च दुराश्रयम् ।

दुर्लक्ष्यं दुस्तरं ध्यानं मुनीनां च मनीषिणाम् ॥”

अर्थ० यह ध्यानोपलक्षित संयम महानुद्धिवाले मुनिकोंकरकेभी क्लेशसे सिद्ध होवेहै औ क्लेशकरकेहि इसका आवर्त्तन होवेहै तथा इसका यथार्थ ज्ञानभी क्लेशकरकेहि होवेहै औ इसका आश्रय जो हृदयादिक देश हैं सोभी दुर्विज्ञेय हैं तथा इसकी लक्ष्यविषे स्थिति होनीभी क्लेशकरकेहि होवेहै तथा इसकी सांगोपांग फटप्रातिपर्यंत निर्विघ्न परिसमाप्ति होनीभी बहुत कठिन है इति ॥ तथा योगशित्वाउपनिषत्में भी कहाहै -

“जन्मान्तरसहस्रेषु यदा नाशानि किल्विषम् ।

तदा पर्याप्ति योगेन संसारच्छेदनं परम् ॥”

अर्थ० अनेक जन्मांतरोंविषे अभ्यास करतेहुये जिस का-  
लमें किंचित्भी पाप नहि रहेहै तोभी यह साधक पुरुष संय-  
मरूप योगकी प्राप्तिद्वारा जन्ममरणरूप संसारके छेदन  
करणेहारे आत्मतत्त्वका निर्विकल्पसमाधिविषे साक्षात्कार  
करेहै इति ॥ सो जिस कालविषे जिस संयमकी सर्व विघ्ना-  
करके रहित सिद्धि होवेहै तो पश्चान् योगीपुरुष शीघ्रहि अ-  
णिमादिक सर्व सिद्धियोंके समूहकूं प्राप्त होवेहै ॥ यह वार्ता भा-  
गवतके एकादशे स्कंधविषे उद्धवकेप्रति कृष्णजीनेभी कथ-  
न करीहै

“जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।

मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः” ॥

अर्थ० हे उद्धव, जो पुरुष पूर्वोक्त मत्याहारकी विधिसें  
जितेन्द्रिय औ प्राणायामकी विधिसें जितश्वास है तथा धा-  
रणा ध्यान समाधिरूप संयम करके युक्त कहिये एकाग्र  
चित्त है औ मेरेविषे चित्तकूं धारण करेहै तिस योगीकूं सर्व  
सिद्धियां आयकर प्राप्त होवेहैं इति ॥ सो जिस जिस विष-  
यमें संयम करनेसें जिस जिस सिद्धिकी प्राप्ति होवेहै सो  
सर्व प्रकार योगशास्त्रके तीसरे पादविषे पतंजलिने विस्तारमें  
निरूपण कियाहै मो प्रमेगमें यहां दिसावेहै ॥ निम्ने “प-  
रिणामत्रयमयमौदतो नानागनज्ञानम्” अर्थ० तीनप्रकारके प-

रिणामोंविषे संयमकरणेसँ योगीकुं अतीत औ अनागत प-  
 दार्थोंका ज्ञान प्रादुर्भूत होवेहै, तात्पर्य यह थावन् भात्र त्रिगु-  
 णोंके कार्य पदार्थ हैं तिन सबके धर्मपरिणाम, लक्षणपरि-  
 णाम, अवस्थापरिणाम, इस भेदसँ तीन परिणाम होतेहैं ॥  
 तिनमें स्थित भये धर्मोंविषे पूर्व धर्मके तिरोभाव होनेतँ अन्य  
 धर्मका जो प्रादुर्भाव होनाहै तिसका नाम धर्मपरिणाम है सो  
 जैसे मृत्तिकारूप धर्मोंविषे पिंडरूप पूर्वधर्मके तिरोभाव होनेतँ  
 घटरूप अन्यधर्मका प्रादुर्भाव होवेहै ॥ तथा तिसहि घटके  
 अनागत, अध्वके तिरोभाव होनेतँ वर्तमान अध्वका जो प्रादु-  
 र्भाव होनाहै तिसका नाम लक्षणपरिणाम है ॥ तिसहि घ-  
 टकी नूतन अवस्थाके तिरोभाव होनेतँ जीर्ण अवस्थाका जो  
 प्रादुर्भाव होनाहै तिसका नाम अवस्थापरिणाम है ॥ ऐसे  
 धर्मोंका धर्मोंसँ औ धर्मोंका लक्षणोंसँ औ लक्षणोंका अव-  
 स्थाकरके परिणाम होवेहै इस प्रकार जितने त्रिगुणोंके कार्य  
 पदार्थ हैं सो सूर्यदाहि परिणामकू प्राप्त होते रहतेहैं ॥ सो इस  
 धर्मोंविषे यह धर्म औ यह लक्षण तथा यह अवस्था अनागत  
 अध्वका परित्याग करके औ वर्तमान अध्वके व्यापारकी  
 समाप्ति करके अतीत अध्वकू प्रवेश करेहै ॥ इस प्रकारसँ  
 जिस काष्ठविषे सब विक्षेपका परिहार करके योगी पुरुष  
 तिन तीनों परिणामोंविषे पूर्ण धारणा ध्यान समाधिरूप

संयम करेहै तो तिसकूं सर्व अतीत औ अनागत पदार्थोंका साक्षात्कार होवेहै इति ॥ तात्पर्य यह ॥ पांच महाभूतोंके सत्त्वगुणका कार्य होनेतें मन दर्पणकी न्याई अत्यंत स्वच्छ पदार्थ है सो जैसे जिस काठविषे दर्पणकी रज आदिक मटकरके स्वच्छना आवृत होवेहै तो तिस काठविषे पदार्थके प्रतिबिंबकूं सम्यक् प्रकारसे ग्रहण नहि करसकेहै तैसेहि रजोतमोजन्य विक्षेपरूप मटकरके आच्छादित भया मन, अतीतानागतादिक ज्ञानविषे समर्थ नहि होवेहै औ जिस काठविषे योगके अंगोंके अनुष्ठान करनेसे रजोतमोको निवृत्तिद्वारा सर्व विक्षेपोंकी निवृत्ति होवेहै तो अपने सत्त्वगुण स्वच्छरूपमें स्थित भया मन संयमद्वारा सर्व अतीतानागतादिक ज्ञानमें समर्थ होवेहै इति ॥ तथा

“शब्दाद्यप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्सं-

करस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतकृतज्ञानम् ॥”

अर्थ० शब्द, औ अर्थ, तथा प्रत्यय, इन तीनोंका एक दूसरेके साथ अध्यास होनेतें संकर है, तात्पर्य यह, पद औ वाक्यरूप जो शब्द है तथा जाति गुण क्रिया आदिक रूप जो अर्थ है औ विषयाकार बुद्धिकी वृत्तिरूप जो प्रत्यय है सो इन तीनोंका जो एकरूपमें ग्रहण है निमका नाम अध्यास है सो अध्यास करके निन तीनोंका परस्पर संकर-

णा है काहेतें जैसे किसी उत्तम पुरुषने मध्यम पुरुषके प्रति  
 कहाँ गामानय, अर्थात् तू गौकुं लेआव तोइस स्थलमें सी  
 मध्यमपुरुष गोत्वजाति अविच्छिन्न जो साक्षादिमत्पिंडरू-  
 प अर्थ है औ तिस अर्थका वाचक जो गौ यह शब्द है तथा  
 इस शब्दद्वारा तिस अर्थके ग्रहण करणेद्वारा जो बुद्धिकी सू-  
 त्तविशेषरूप ज्ञान है तिन तीनोंकुं अभिन्नहि निश्चय करेहै ॥  
 तथा यह अर्थ क्या है यह शब्द क्या है यह ज्ञान क्या है  
 ऐसे पूछा हुआ गौ है इस रीतिसँ अर्थ शब्द औ ज्ञानकुं  
 अभिन्नहि कथन करेहै इस प्रकार लौकिकव्यवहारसँ अर्थ  
 शब्द औ ज्ञानका संकर अर्थात् मिश्रीभाव है ॥ सो  
 जिस फालविषे योगी तिन तीनोंके विभागविषे संयम  
 करेहै अर्थात् गौ अर्थ भिन्न है औ शब्द भिन्न है  
 तथा गौ यह ज्ञान भिन्न है इस प्रकारसँ न्यारा न्यारा ज्ञा-  
 नकरके तिनमें पूर्वोक्तक्षण संयम करेहै तो मृग पक्षी सर्पा-  
 दिक सर्व प्राणियोंके शब्दका तिसकुं ज्ञान होवेहै अर्थात् सर्व  
 प्राणियोंकी भाषा समझ जावेहै इति ॥ तथा “संस्कार सा-  
 क्षात्करणत्पूर्वजातिज्ञानम्” अर्थ० संस्कारोंके साक्षात्कर-  
 णसँ पूर्वजन्मोका ज्ञान होवेहै तात्पर्य यह ॥ चित्तके वासना-  
 रूप जो संस्कार हैं सो दो प्रकारके हैं तिनमें केचित् तो  
 स्मृतिमात्र फलके जनक होवें औ केचित् जाति, आयुष



भोग, रूप फलके जनक होवेहैं तिन दिविष संस्कारोंमें जिस कालविषे योगी संयम करेहैं अर्थात् इस प्रकार मैंने अमुक अर्थ अनुभव कियाथा इस प्रकारसें अमुक क्रिया करीथी इस प्रकारसें पूर्ववृत्तांतका अनुसंधान करताहुया दृढभावना-  
 के वशतें सर्व अतीत वृत्तांतका स्मरण करके क्रमसें पूर्व जन्मोंके वृत्तांतकाभी साक्षात्कार करेहैं इति ॥ तथा “प्रत्यस्य परचित्तज्ञानम्” अर्थ० पराये प्रत्ययके संयम करनेसें परपुरुषके चित्तका ज्ञान होवेहे तात्पर्य यह ॥ किसी मुखप्रसक्तता आ-  
 दिक लिंगसें पराये चित्तकी वृत्तिकूं ग्रहण करके योश्री जिस कालविषे तिसमें संयम करेहे तो पराये चित्तमें रहनेहारी मर्त्य वार्ताकूं जान लेवेहैं इति ॥ तथा “कायरूपसंयमात् तैद्वाह्यश-  
 क्तिस्त्वं भवद्भुः प्रकाशासंयोगेन्तर्द्धानम्” अर्थ० शरीरके रू-  
 पविषे संयम करनेसें रूपकी चक्षुकरके ग्राह्यत्व जो शक्ति है।  
 तिमका स्तंभन होवेहैं पश्चात् टोकाँके नेत्राँकरके शरीरके रूपका अग्रहण होनेतें योगी अंतर्द्धान होवेहैं अर्थात् सो स-  
 र्वकूं देखेहैं औ निमकूं निसकी इच्छाके बिना कोईभी नहि देखमकेहे इति ॥ यहि न्याय योगीके शब्द स्पर्शादिकाँके अंतर्द्धानमेंभी जानटेना ॥ तथा “सोपक्रमं निरूपक्रमं च यमं तत् संयमादपरान्तज्ञानमरितेभ्यो वा”

अर्थ० शरीरका आरब्धक्रम सोपक्रम, निरूपक्रम, इस

भेदसें द्विप्रकारका है तिनमें जो शीघ्रहि फल देनेमें सम्मुख होवेहै सो सोपक्रम कहियेहै जैसे 'आर्द्र' वस्त्र धूपमें प्रसारण किया हुआ शीघ्रहि शुष्क होवेहै ॥ औ जो चिरकाठसें फटका जनक होवेहै सो निरुपक्रम कहियेहै जैसे सोई आर्द्रवस्त्र संकुचित भया छायाविषे चिरकाठसें शुष्क होवे है ॥ तिस दोप्रकारके कर्मोंविषे जिसकालमें योगी कौनसा मेरा कर्म शीघ्र फलदायक है औ कौनसा विलंबसें फलदायक है इसप्रकारसें संयम करे है तो दृढभावनाके वशतें तिसकूं अपने मृत्युकालका ज्ञान होवेहै अर्थात् अमुकदेश औ अमुककाल तथा अमुकनिमित्तसें मेरा शरीर पतित होवेगा वह सर्व याता जानलेवेहै ॥ अथवा अरिष्टोंसेंभी योगीकूं अपने मृत्युकालका ज्ञान होवेहै सो अरिष्ट आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक इसभेदसें तीनप्रकारके हैं । तिनमें कानके घंदकरणसें शब्दका नहि श्रवण होना औ पराये नेत्रकी पुतलीविषे अपने मस्तकका नहि देखना तथा नासाका अग्रभाग औ जिह्वाके अग्रभागका नहि देखना तथा अंधकारमें नेत्रोंके भ्रमण करनेमें ज्योतिका नहि देखना इत्यादिक आध्यात्मिक अरिष्ट हैं ॥ औ अचानकहि यमराजके दूतोंकूं देखना औ अपने मरेहुये बांधवोंकूं देखना इत्यादिक आधिभौतिक अरिष्ट हैं ॥ तथा अकस्मात् सिद्धोंका

औ स्वर्गका देखना तथा सूर्यमंडलमें छिद्र देखना औ अरु-  
 धतिताराका नहि देखना इत्यादिक आधिदैविक अरिष्ट हैं ॥  
 इन अरिष्टोंसेंभी योगीकूं अपने मृत्युकालका ज्ञान होवेहे ॥  
 यद्यपि अयोगी पुरुषोंकूंभी उक्त अरिष्टोंसें मृत्युकालका ज्ञान  
 होवे है तथापि सो ज्ञान तिनविषे कदाचित् व्यभिचारीभी  
 होवे है औ योगीविषे तो सर्वदा अव्यभिचारीहि होवेहे इति,  
 तथा “मैत्र्यादिषु वृत्तानि” अर्थ० मैत्री, करुणा, मुदिता,  
 उपेक्षा, यह च्यारिमकारकी भावना हैं तिनमें अपने समान  
 ऐश्वर्यवान् पुरुषके साथ जो मित्रता करणी है तिसका नाम  
 मैत्रि है औ दुःखी जनोंपर जो कृपा करणी है तिसकूं  
 करुणा कहते हैं ॥ तथा अपनेसें अधिक ऐश्वर्यवान् पुरुषकूं  
 देखकर जो प्रसन्न होना है तिसका नाम मुदिता है ॥ औ  
 दुष्टपुरुषोंके साथ भाषणादिक सर्वव्यवहारका जो वर्जन क-  
 रणा है तिसका नाम उपेक्षा है ॥ सो इन च्यारिमकारकी  
 भावनाविषे जिसकालमें योगी संयम करेहे तो तिनके बटकूं  
 प्राप्त होवे है अर्थात् सर्व समानऐश्वर्यवाले पुरुष तिसके साथ  
 मित्रता करते हैं औ सर्व दुःखीपुरुष तिसपर करुणा करते हैं  
 अर्थात् मन, वाणी शरीरकरके तिसका भटा इच्छते हैं ॥  
 तथा सर्व महान् पुरुष तिसकूं देखकर प्रसन्न होते हैं औ सर्व  
 दुष्ट पुरुष तिसकी उपेक्षा करते हैं इति ॥ तथा “वटेपु

हस्तिवलादीनि” अर्थ० जिसकालविषे योगी हस्ति, सिंह, वयु, गरुड, हनुमानादिकोंके वलविषे संयम करेहैं तो तिसके शरीरविषे तिसतिसका बल प्रादुर्भूत होवेहै इति ॥

तथा “प्रवृत्त्या लोकन्यासान् सूक्ष्म व्यवहितविप्रकृष्टार्थज्ञानम्” अर्थ० पूर्व धारणा प्रसंगविषे कथनकरी जो ज्योतिष्मती प्रवृत्ति है तिसके प्रकाशकूं जिसजिस परमाणु आदिक सूक्ष्म अथवा पृथिवीके तले पातालादिक व्यवहित अथवा सुमेरु आदिक विप्रकृष्ट पदार्थमें जिस कालविषे योगी प्रक्षेपण करेहै तो संयमसे विनाहि तिसतिस पदार्थका साक्षात्कार होवेहै इति

तथा “भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्” अर्थ० जिसकालविषे योगी दृढभाषनाकरके सूर्यमंडलविषे संयम करे है तो भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तप, सत्य, यह जो सप्तभुवन हैं तथा तिनमें स्थित जो नानाप्रकारकी रचनाविशेषहैं तिन सर्वका योगीकूं साक्षात्कार होवेहै ॥ तात्पर्य यह ॥ धारणादिक अभ्यासकरके स्फटिकमणिकी न्यांई निर्मल भया योगीका मन जिस पदार्थविषे जुडताहै तो तिसहिका स्वरूप होयजावे है तो पश्चात् तिस पदार्थके जो गुण होवेंहैं सो सर्वहि योगीके मनमें आयजाते हैं ॥ यह वातांभी पतंजलिनेहि कथन करीहै

“क्षीणयूत्तरभिजातस्येव मणेरहीतुग्रहणग्राह्येषु तत्स्थितदंजन-

तासमापत्तिः” अर्थ० जिसकालविषे अभ्यासकी पाटवतासे चित्त स्फटिकमणिकी न्याईं निर्मल होवे है तो जैसे तिसतिस उपाधिके वशसे स्फटिकमणि तिसतिस आकारसे प्रतीत होवेहै तैसेहि निर्मल भया मन ग्राह्य जो आकाशादिक पाँच महाभूतहैं औ ग्रहण जो चक्षुआदिक इन्द्रिय हैं तथा गृहीता जो प्रमाता पुरुष है तिनके विषे योजना, किया-हुया तिनमें एकाग्रता औ तिनके साथ एकभावकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा विवेकचूडामणिमें शंकराचार्यनेभी कहाहै

“क्रियान्तरासक्तिप्रपास्य कीटको

ध्यायन्नलित्वं ह्यलिभावमुच्छति ॥

तथैव योगी परमात्मतत्त्वं

ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठताम् ॥”

अर्थ० जिस प्रकार कीट जंतुविशेष सर्व अन्य क्रियाकी आसक्तिका परित्याग करके भ्रमरका ध्यान करताहुया भ्रमरके स्वरूपकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि योगीका मनभी परमात्म-तत्त्वका ध्यान करनेसे एकनिष्ठता कहिये ध्यान करके परमात्मस्वरूपकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा पंचदशीमेंभी कहाहै

“मूपासिकं यथा ताम्रं तन्निभं जायते तथा ।

रूपादीन्व्यामुवचिंतं तच्चिभं दृश्यते ध्रुवम् ॥”

अर्थ० जिसनकार पियलाहुया ताम्र संचारिषे डालनेमें

तिसके आकारकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि रूपादिक विषयोंकूं व्याप्त करताहुया चित्त तिस तिसके आकारसँहि देखनेमें आवेहै इति ॥ यातें सूर्यादिक पदार्थोंमें संयम करनेसें भुवनज्ञानादिकं सिद्धियोंकी प्राप्ति योगी पुरुषकूं संभवेहै इति ॥ तथा

“चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्” अर्थ० जिस कालविषे योगी चंद्रमंडलविषे संयम करेहै तो यावत् मात्र तारागणोंकी व्यवस्था है तिस सर्वका साक्षात्कार होवेहै अर्थात् इस तारेका यहाँ स्थान है इस प्रकारकी इसकी रचना है सो सर्वहि जान लेवेहै इति ॥ सूर्यके प्रकाशकरके क्षीण तेज भये तारोंका सूर्यमंडलमें संयम करनेसें साक्षात्कार नहि होवेहै यातें तिनके साक्षात्कार करनेके अर्थ यह चन्द्रमंडलका न्यारा संयम कथन कियाहै इति ॥ तथा “ध्रुवे तद्वृत्तिज्ञानम्” अर्थ० सर्व ताराचक्रका स्तंभभूत जो उत्तरदिशामें स्थित ध्रुव नामा स्थिर नक्षत्र है तिसविषे संयम करनेसें योगीकूं सर्व तारोंकी गतिका ज्ञान होवेहै अर्थात् यह तारा यह ग्रह अमुकराशीकूं भान भया है औ यह ग्रह इतने कालमें अमुक राशी तथा अमुक नक्षत्रकूं प्राप्त होवेगा इस प्रकारसें ज्योतिषशास्त्रोक्त सर्व काळ ज्ञानरी प्राप्ति योगीकूं होवेहै इति ॥ तथा “नाभिचक्रे वायव्यूहज्ञानम्” अर्थ० मणिपूरक नामा नाभिचक्रविषे संयम करनेमें वायव्यूहका ज्ञान होवेहै, तात्पर्य यह ॥ शरीरविषे

वात, पित्त, श्लेष्म, यह तीन दोष हैं औ त्वचा, रुधिर, मांस, नाडी, अस्थि, मज्जा, शुक्र, यह सप्त धातु हैं इनमें पूर्व पूर्व शरीरके बाह्य हैं औ उत्तर उत्तर अन्तर्गत हैं सो नाभिचक्रकं सर्व शरीरका मध्यदेश औ सर्व तरफ प्रसारी हुयी नाडी आदिक धातुवोंका मूलभूत होनेतें तिसमें संयम करनेसें सर्व शरीरकी रचनाका अंतरसें योगीकं साक्षात्कार होवेहै, जैसे दीपकसें गृहकी सर्व रचनाका साक्षात्कार होवेहै इति ॥ तथा “कंठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः” अर्थ० कंठमें जो गर्ताकार प्रदेशहै तिसका नाम कंठकूप है, तिसके साथ प्राण औ अपानके स्पर्श होनेतेंहि क्षुधापिपासाकी अधिकता होवेहै सो जिस कालविषे योगी तिस कंठकूपविषे संयम करेहै तो क्षुधापिपासाकी निवृत्ति होवेहै इति ॥ यह बातें शिवसंहितामेंभी कहीहै

“योगी पद्मासने तिष्ठेत् कंठकूपे यदा स्मरन् ।

जिह्वां कृत्वा तातु मूढे क्षुत्पिपासा निवर्तते ॥”

अर्थ० हे पार्वति जिस कालविषे पद्मासनसें स्थित भया योगी अपणी जिह्वाकं तातुके मूढमें टगायकरके कंठकूपविषे धितकं धारण करेहै तो तिसकी क्षुधापिपासा निवृत्त होय जावेहै इति तथा “कुंभनाड्यां स्थैर्यम्” अर्थ० कंठकूपके अधोभागविषे हृदयदेशके समीप एक कुंभाकार नाडीहै तिममें

संयम करनेसे योगीका चित्त औ शरीर स्थिरभावकूं प्राप्त होवेहै अर्थात् कोईभी तिसकूं ध्यानसे चलायमान नहि कर सकैहै इति ॥ यह वार्ताभी शिवसंहितामें कथन करीहै

“कंठकूपादयः स्थाने कूर्मनाड्यस्ति शोभना ।

तस्मिन् योगी मनो दत्त्वा चित्तस्थैर्यं लभेत् भृशम् ॥”

अर्थ० कंठकूपसे नीचे एक कूर्माकार सुंदर नाडी है तिस विषे मनकूं धारण करनेसे योगी अत्यंत चित्तकी स्थिरताकूं प्राप्त होवेहै इति तथा “मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्” अर्थ० मूर्धस्थान ब्रह्मरंध्रमें सर्व शरीरके तेजका एकीभाव है सो जैसे एक स्थलविषे स्थित भया दीपक सर्व गृहकूं प्रकाशेहै तैसेहि ब्रह्मरंध्रमें स्थित भया तेज सर्व शरीरकूं प्रकाशताहै जितनी शरीरमें उष्णता है सो सर्व तिस तेजके प्रतापसेहि है जिस कालविषे योगी तिस तेजविषे संयम करेहै तो जितने पृथिवी औ अंतरिक्षविषे विचरणेहारे सिद्धलोक हैं निम सर्वका दर्शन होवेहै औ तिनके साथ वार्तालापादिक व्यवहारभी होवेहै इति ॥ तथा “प्रातिभादासर्वम्”

अर्थ० जैसे सूर्यके उदयकालमें प्रथम पूर्वदिशाविषे प्रकाश होवेहै तैसेहि यक्ष्यमाण विवेकज ज्ञानके उदयकालमें प्रथम योगीके मनविषे सर्व पदार्थकूं विषय करणेहारा प्रातिभनाम ज्ञान उत्पन्न होवेहै निम ज्ञान करके तन् तन् संयममें



विनाहि योगीकूं सर्व व्यवहित विपकृष्टादिक अज्ञात पदा-  
 'थोंकां साक्षात्कार होवेहे इति' ॥ तथा "हृदये चित्तसंक्लि-"  
 अर्थ० वामस्तनके समीप एक कदलीपुष्पकी न्यांई अधोमुख  
 औ अष्टदलोंकरके युक्त हृदयनामा प्रदेश है, तिसके मध्यदे-  
 शमें चित्तका निवासस्थान है, यद्यपि शरीरविषे नखसें लेकर  
 शिखापर्यंत चित्तका निवास है तथापि विशेष करके चित्तका  
 हृदयपद्महि निवासस्थान है, यह वार्ता अथर्ववेदकी योग-  
 शिखाउपनिषत्मेंभी कथन करी है

“हृदि स्थाने स्थितं पद्मं तच्च पद्ममधोमुखम् ।

ऊर्ध्वनालमधो विन्दु तस्य मध्ये स्थितं मनः ॥”

अर्थ० हृदयस्थानविषे एक अष्टदलोंकरके युक्त पद्म है ति-  
 सकी नाल ऊर्ध्व औ पत्र नीचेकूं हैं तिस पद्मके मध्यदेश-  
 विषे मनकी स्थिति है इति ॥ तिस चित्तके स्थान हृदयमें  
 संयम करणेसें योगीकूं चित्तका साक्षात्कार होवेहे अर्थात्  
 स्वचित्तगत यावत्मात्र अनेक जन्मांतरोंकी वासना होवेहे  
 तिन सर्वका साक्षात्कार होवेहे इति ॥ तथा

“सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो ।

भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ॥”

अर्थ० प्रकृतिका कार्य जो बुद्धि है औ तिसका अधिष्ठाता  
 जो पुरुष है सो विचारदृष्टिसें जडत्व, चेतत्व, भोग्यत्व, भो-

कृत्व आदिक विरुद्ध धर्मोंकरके युक्त होनेतें परस्पर अत्यंत भिन्न हैं तिन दोनोंके भिन्न भिन्नका जो अविवेक है सोई सुखदुःखके अनुभवरूप भोगका हेतु है औ तिस भोगका भोक्ता पुरुष है काहेतें बुद्धिकीतो, पुरुषके भोगके निमित्तहि प्रवृत्ति होवेहै यातें सो भोग परार्थ कहियेहै औ जिसकाल विषे स्वार्थ कहिये सर्व अहंकारके परित्याग होनेसँ बुद्धिवृत्तिविषे पुरुषकी छाया प्रतिबिंबित होवेहै तिसमें संयम करनेसँ योगीकूं बुद्धिसँ भिन्न पुरुषविषयक ज्ञान उत्पन्न होवेहै अर्थात् उक्त प्रकारके अपणकूं आलंबन करणेहारे बुद्धिनिष्ठ ज्ञानकूं पुरुष प्रकाशहै काहेतें पुरुषकूं स्वयंप्रकाश होनेतें ज्ञानकी विषयता संभवे नहि तथा बृहदारण्यक उपनिषत्मेंभी कहाहै “विज्ञातारमरे केन विजानीयात्” अर्थ० अरे मैत्रेयि, सर्वका ज्ञाता जो आत्मा है तिसकूं किस साधनकरके कौन जाने इति ॥

“ततः प्रातिभश्चावणवेदनादशांस्वादवातां जायंते ॥”

अर्थ० इस उक्त प्रकारसँ पुरुषविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति होनेतें योगीकूं व्युत्थानकाटमेंभी पूर्वोक्त प्रातिभज्ञानसँ सर्व सूक्ष्मादिक पदार्थोंका साक्षात्कार होवेहै औ दिव्य शब्दज्ञान, दिव्य स्पर्शज्ञान, दिव्य रूपज्ञान, दिव्य रसज्ञा-

न, दिव्य गंधज्ञान, यह पांच ज्ञानइन्द्रियोंके पांच दिव्य  
'विषयोंकाभी सवक्षात्कार होवेहै' इति तथा

“बन्धकारणशैथिल्यान् प्रचारसं-

वेदना चित्तस्य परशरीरावेशः ॥”

अर्थ० व्यापकचित्त औ पुरुषकी संकोचद्वारा शरीरविषे  
स्थितिका हेतु जो पूर्वकृत प्रारब्धकर्म है सो बंधका कारण  
कहिषेहै अर्थात् सोई चित्त औ पुरुषकूं एक शरीरविषे बांधेहै  
सो योगाभ्यासके बलसँ तिस कर्मके शिथिल होनेतँ औ हृदयदे-  
शमें चक्षु आदिक इन्द्रियद्वारा जो चित्तका बाह्यविषयोंविषे  
तथा शरीरके अंतर मनोवहां नाडियोंविषे जो संचार होवेहै  
तिसके योगबलसँ सम्यक् प्रकार जाननेसँ योगीके चित्तका  
पराये शरीरविषे प्रवेश होवेहै चित्तके प्रवेश हुये पश्चात् प्राण  
औ इन्द्रियोंकाभी प्रवेश होवेहै ॥ जैसे जहाँ मधुकरराजा  
जावेहै तहांहि अन्य सर्व मक्षिकाभी जाती हैं ॥ तात्पर्य यह  
॥ जिस काठविषे योगी प्राणकटाकरके रहित भये अन्यके  
शरीरविषे अपने चित्तकी योजना करेहै तो अभ्यासके बलसँ  
एकाग्र भये चित्तकि तहांहि स्थिति होय जावेहै तो पश्चात्  
निराश्रय भये प्राणादिकभी मनके पीछे तिस शरीरमें प्रवेश  
करजातेहैं काहेतँ मनकूं एक शरीरविषे बंधन करणेद्वारा जो  
कर्म था तिसकि तो अभ्यासके बलसँ प्रथमहि शिथिलता होय

जावेह शिथिल होनेतें पुना सो कर्म मनकूं बंधन करणें  
सुमद नहि होवेह यातें निर्विघ्नहि योगीका परशरीरमें प्रवेश  
होवेह इति ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणविषे परशरी-  
रमें प्रवेश करणेका अन्यभी प्रकार कथन कियाहै

“मुखादहिर्दादशांते रेचकाभ्यासयुक्तिः ।

प्राणे चिरं स्थितिं नीते प्रविशत्यपरां पुरीम् ॥”

अर्थ० पूर्वोक्त रेचक प्राणप्रयामके अभ्यासकी युक्तिकरके  
नासिकाके बाह्य द्वादश अंगुलपर्यंत चिरकाल प्राणके कुंभक  
करणेसँ योगी दूसरेके शरीरमें प्रवेश करेहै अर्थात् मन औ  
प्राणकूं एकस्वरूप होनेतें प्राणके बाह्य स्थित होनेतें मनकीभी  
बाह्यस्थिति होवेहै तो पश्चात् योगीका परके शरीरविषे प्रवेश  
होवेहै इति यह हठयोगकि रीतिसे प्रवेश जानना ॥ किंच  
जीवते हुये पर शरीरमेंभी भूतादिकोंकी न्यांई योगीका  
प्रवेश होवेहै सो जैसे जीवके शरीरविषे भूत प्रवेश करके निसकी  
पुण्ड्रकाकूं अवरोधन करके निस शरीरसँ आपहि सर्व भो-  
गोंका अनुभव करेहै तैसेहि योगीभी करेहै औ जहां यो-  
गीके शरीरविषे अन्य योगीका प्रवेश होवेहै तो तहां  
निमकूं भोगकी प्राप्ति नहि होवेहै किंनु परस्पर तिनका वि-  
वाद होवेहै जैसे जनक सुदमा आदिकोंका हुयाहै इति ॥  
तथा “उद्गानजयान्तपंककंटकादिष्वमंग उत्क्रान्तिश्च” अर्थ०

शरीरविषे प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, इस भेदसे प्राण पांच प्रकारके हैं ॥ तिनमें हृदयदेशसे लेकर नासिकाके बाहिर द्वादश अंगुलपर्यंत जो गमन करेहै तिसका नाम प्राण है औ नाभिसे लेकर पादके अंगुष्ठपर्यंत जिसकी गति है तिसका नाम अपान है तथा शरीरकी सर्व नाडियों-विषे जो संचार करेहै सो व्यान कहिये है औ नाभिदेशकू पं-रिवेटन करके स्थितभया भुक्त अन्नकू जो समभाग करेहै तिसका नाम समान है तथा कंठदेशसे लेकर शिखापर्यंत जिसका संचार है तिसका नाम उदान है ॥ तिनमे सर्व प्राणोंका मूलभूत जो उदान है तिसके संयमद्वारा जय करणसे शरीरकी पृथि-वीसे किंचित् ऊर्ध्व स्थिति होवेहै तो महानदी आदिक जलविषे औ गहरे कीचडमेंभी योगीका शरीर डूबता नहि तथा तीक्ष्ण कंटकोंके ऊपर चठनेसेभी पादादिक अवय-वोंका वेधन नहि होवेहै अर्थात् अपनी इच्छासे जलादिकों-विषे डूबभी जावेहै औ ऊपरभी आय जावेहै इति ॥ तथा “समानजयाज्ज्वलनम्” अर्थ० नाभिके समीप जठराग्निका स्थान है औ तहांहि तिस अग्निकू वेटन करके समान वायु स्थितहै तो संयमद्वारा तिस समानवायुके जय करणसे अग्निकी ज्वाला निरावरण होनेतें अत्यंत वृद्धिकू प्राप्त होवेहै तो तिस करके योगीका शरीर अत्यंत तेजस्वी होनेतें ज्वलते हुयेकी

न्याई प्रतीत होवेहै अथवा तिसकी इच्छा होवे तो दग्धभी ह्येय जावेहै जैसे दक्षप्रजापतिके यज्ञविषे तार्वतीने अपने शरीरकूं योगाग्निसें दग्ध करदियाथा इति ॥ तथा

“श्रोत्राकाशयोः संबन्धसंयमादिव्यश्रोत्रम्”

अर्थ० श्रोत्रइन्द्रिय औ आकाशका जो परस्पर देशदेशि-  
भावसंबंध है तिसमें संयम करनेसं योगीकूं दिव्यश्रोत्रकी  
प्राप्ति होवेहै अथान् यावत् मग्न सूक्ष्म व्यवहित विभक्त आ-  
काशमंडलविषे शब्द होतेहैं तिन सर्वकूंहि योगी श्रवण करैहै  
इति ॥ तथा “कायाकाशयोः संबन्धसंयमाद्युत्तुलसमापत्ते-  
श्चाकाशगमनम्” अर्थ० जहां जहां इस शरीरकी स्थिति  
होवेहै तहां तहांहि आकाश तिसकूं अवकाश देवेहै यातें श-  
रीर औ आकाशका परस्पर संबंध है तिस संबंधविषे संयम  
करनेसं औ तूठ आदिक अति लघु पदार्थविषे समापत्ति अ-  
र्थान् तन्मयीभावना करनेसं योगी लघुभावकूं प्राप्त होवेहै प-  
श्चात् अपनी रुचिसें जठ अथवा मकड़ोके जाठ अथवा सू-  
यंकी रस्मियोंविषे विहार करता हुया यथेष्ट आकाशविषे ग-  
मनागमन करैहै इति ॥ तथा “वहिरकल्पितावृत्तिर्महाविदेहा  
ततः प्रकाशप्रवरणक्षयः” अर्थ० मनकी वृत्ति कल्पिता औ  
अकल्पिता इस भेदसं द्विप्रकारकी होवेहै तिनमें चन्द्रमा,  
तारा, मणि आदिक बाह्यपदार्थोंमें चित्तकी धारणा करने-

सं किंचित् शरीर औ किंचित् बाह्यपदार्थमें जो मनकी स्थिति है तिसका नाम कल्पितावृत्ति है औ जो दीर्घकालके अभ्यासके पाटवसे शरीरका परित्याग करके केवल बाह्यपदार्थविषेहि मनकी स्थिति होनीहै तिसका नाम अकल्पितावृत्ति है इसीके सिद्ध होनेतें योगीका परशरीरमें प्रवेश होवेहै सो इस प्रकार जिस कालविषे शरीरका अभिमान त्याग करके मनकी शरीरसे बाह्यस्थिति होवेहै तो सर्वज्ञताका प्रतिबंधक जो रजोतमोजन्य आवरण है तिसका क्षय होवेहै इति तथा “स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्यसंयमाद्भूतजुयः”

अर्थ० आकाशादिक जो पांच महाभूत हैं तिनकी स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, अर्थवत्त्व, इस भेदतें पांच अवस्था हैं तिनमें यह जो दृश्यमान भूतोंके आकार हैं सो स्थूल अवस्था कहियेहै औ तिनमें कार्यरूपसे स्थित जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पांच विषय हैं सो स्वरूप अवस्था कहियेहै तथा तिनमें कारणरूपसे स्थित जो शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, गंधतन्मात्रा, यह जो पांच तन्मात्रा हैं सो भूतोंकी सूक्ष्म अवस्था हैं औ तिनविषे सत्त्व, रजो, तमो, इन तीन गुणोंका जो व्यापकपणा है तिसका नाम अन्वयअवस्था है तथा तिनमें स्थित जो पुरुषके भोग औ मोक्ष संपादन करनेकी शक्ति है तिसका नाम अ-

र्थवत्त्वअवस्था है सो तिन पांच महाभूतोंकी अवस्थाविषे  
 अनुक्रमसे संयम करनेसे योगीकूं पांच महाभूतोंके स्वरूपका  
 दर्शन औ तिनका जय होवेहै अर्थात् जैसे गौ वत्साके अनु-  
 सारी होवेहै तैसेहि पांच महाभूत तिस योगीके अनुसारी होय  
 जातेहैं तिस काठविषे यद्यपि सो योगी अग्निहूँ शीतल औ ज-  
 लकूं उष्ण करसकैहै तथापि ईश्वरकी इच्छा प्रबल होनेतेँ उक्त  
 वातामें तिसकी प्रवृत्तिहि नहि होवेहै इति ॥ “ततोऽणिमादि-  
 प्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च” अर्थ० इस उक्त प्रकार-  
 र पांच महाभूतोंके जय होनेतेँ अनंतर योगी पुरुषकूं “अणि-  
 मादिप्रादुर्भावः” कहिये अणिमादिक सिद्धियोंकी प्राप्ति  
 होवेहै ॥ यो. सिद्धियां अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा,  
 प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व, इस भेदसेँ अष्ट प्रकारका हैं ॥  
 तिनमें अणुके समान सूक्ष्म होजानेका नाम अणिमासि-  
 द्धि है औ विराटके समान स्थूल होजानेका नाम महिमासि-  
 द्धि है तथा तूटपिंडके समान लघु होजानेका नाम लघि-  
 मासिद्धि है औ पर्वतके समान गुरु होजानेका नाम ग-  
 रिमासिद्धि है तथा अंगुलीके अग्रभागसेँ चंद्रमा तारा  
 आदिकोंके स्पर्श करनेकी शक्तिका नाम प्राप्तिसिद्धि है  
 औ सर्प कामनाकी प्राप्ति अर्थान् सत्यसंकल्पताका नाम  
 प्राकाम्यसिद्धि है तथा पराये शरीर औ अंतःकरणके प्रे-



रण करनेको शक्तिका नाम ईशत्वसिद्धि है औ सर्व प्राणियोंके वशीभूत करनेकी शक्तिका नाम वशित्वसिद्धि है इस प्रकारसे यह अष्ट महासिद्धियां हैं औ भागवतादिकोंमें जो अष्टादश औ कहीं पंचविंशति सिद्धियां कथन करी हैं तिन सर्वका इन अष्टकेविषेहि अंतर्भाव जानलेना ॥ तथा ( कायसंपत् ) कहिये रूप, लक्षण्य, बल, वज्रकी न्याई कठिनता, यह जो शरीरकी संपत् है तिनकीभी योगीकूं प्राप्ति होवे है तथा तिन संपदोंका 'अनभिघातः' कहिये किसी काल-विषेभी विघात नहि होवे है अर्थात् जल तिसके शरीरकूं गि-लाता नहि अग्नि दहन नहि करे है, वायु शोषण नहि करे है, पृथिवी जीर्ण नहि करे है इति ॥ तथा "ग्रहणस्वरूपास्मिता-  
न्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः" अर्थ० श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकी ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय, अर्थवत्त्व, इस भे-दसे पांच अवस्था हैं तिनमें शब्दादिक विषयोंके सम्मुख जो इन्द्रियोंकी वृत्ति है तिसका नाम ग्रहणअवस्था है औ घटपटा-दिक पदार्थोंका सामान्यसे जो प्रकाश करणा है तिसका नाम स्वरूप अवस्था है तथा सर्व इन्द्रियोंका अहंकारके अनु-सार जो वर्तना है तिसका नाम अस्मिता अवस्था है, औ ति-नमें साय रजो तमो इन तीनों गुणोंका जो अन्ययपणा है सो अन्वय अवस्था कहिये है तथा तिनमें पुरुषके भोग औ

मोक्ष संपादन करनेकी जो शक्ति है सो अर्थवत्त्व अवस्था कहिये है ॥ सो तिन पांच इन्द्रियोंकी पांच अवस्थाविषे अनुक्रमसँ संयम करनेसँ योगीकूँ इन्द्रियोंके स्वरूपका दर्शन औ तिनका जय होवेहै अर्थात् सर्व इन्द्रिय तिसके वशीभूत होवेहै इति ॥ “ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च” अर्थ० उक्त प्रकारसँ इन्द्रियोंके जय होनेतँ अनंतर “मनोजवित्वं” कहिये योगीके शरीरकी मनके समान गति होवेहै अर्थात् जैसे मन संकल्पद्वारा एक क्षणमें लक्षों योजनोंपर गमन करेहै तैसेहि योगीका शरीर गमन करेहै तथा ‘विकरणभावः’ कहिये शरीरसँ विनाहि देश, काल, विषयोंविषे इन्द्रियोंकी वृत्तिका लाभ होना अर्थात् गोलकोंकी अपेक्षासँ विनाहि योगीके अभिमत देशकालविषे स्वस्वकार्य करनेविषे इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति होवेहै ॥ तथा ‘प्रधानजयः’ कहिये सर्व कार्यप्रपंचके सहित प्रकृतिकाभी जय होवेहै इति ॥ इन तीन सिद्धियाँका नाम योगशास्त्रमें मधुप्रतीक कहतेहैं कारेतँ जैसे मधुके एक देशसँभी स्वादकी प्राप्ति होवेहै तैसेहि इन एकएकसिद्धिमेंभी योगीकूँ स्वाद अर्थात् स्वतंत्रताजन्य परमानंदकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ तथा “सत्यपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सत्यज्ञातृत्वं च” अर्थ० रजोतमोरूप मलकरके रहित शुद्ध सत्य-

मय जो बुद्धिका परिणामविशेष है तिसमें संयम करनेसे योगीकुं सत्त्व औ पुरुषकी अन्यताख्याति अर्थात् त्रिगुणस्वरूप बुद्धि अन्य है औ तिसका अधिष्ठाता गुणातीत पुरुष भिन्न है इस प्रकारका साक्षात्कार होवेहै तो पश्चात् गुणोंके कर्तृत्व भावके शिथिल होनेतें तहांहि संयममें स्थित भये योगीकुं सर्व त्रिगुणात्मक प्रपञ्चका अधिष्ठातापणा औ सर्वज्ञतापणा होवेहै अर्थात् सर्व पदार्थोंके आक्रमण करनेविषे स्वामीकी न्याई सामर्थ्य होवेहै औ शांत उदित व्यपदेश्य धर्मोंकरके स्थित जो तीत गुण हैं तिसका यथार्थ ज्ञान होवेहै इसका नाम योगशास्त्रमें विशोका सिद्धि है अर्थात् इस सिद्धि की प्राप्तिसे सर्वज्ञ भया योगी सर्व शोकांकरके वाञ्छित होवेहै इति ॥ तथा “स्थान्युपनिमंत्रणे संगमयाकरणं पुनरनिष्ट-प्रसंगात्” अर्थ० प्रवृत्तज्योतिः, ऋतंभरमज्ञः, भूतेन्द्रियजयी अतिक्रांतभावनोयः, इस भेदसे च्यारि प्रकारके योगी हो-वेहैं ॥ तिनमें जो प्रथमहि अभ्यासमें प्रवृत्त भया पूर्वोक्त ज्योतिका हृदयविषे अवलोकन करेहै सो प्रवृत्त ज्योति कं-दियेहै औ जिसकुं अभ्यासकी बहुलतासे ऋतंभरा नामा प्र-

१ जिस प्रज्ञाकरके सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृत सर्व पदार्थोंका एक कालविषोद योगीकुं स्फुट साक्षात्कार होवेहै तिसका नाम ऋतम-रा है.

ज्ञाकी प्राप्ति होवेहै सो ऋतुभरमज्ञ कहियेहै तथा जिसके पांच भूत औ पांच इन्द्रिय वशीभूत होवेहै तिसका नाम भूतेन्द्रियजयी है औ जो विशोका नाम सिद्धिकुं प्राप्त भया कृतकृत्य होयकर स्थित होवेहै सो अतिक्रान्त भावनीय कहियेहै ॥ सो तिनमें चतुर्थ योगीकी सप्त प्रकारकी प्रांत-भूमिका होवेहै तिनमें अंतकी मधुमती नाम भूमिकाके साक्षात्करण कालमें योगीकुं देवता निमंत्रण करतेहै अर्थात् दिव्य अप्सरा, विमान, वस्त्र, अमृतादिक पदार्थोंके सहित आयकर योगीकुं कहतेहैं हे महाराज, इस विमानपर आरोहण करो इस सुंदर अप्सराकेसाथ नंदनवनादिकोंमें विहार क्रीडा करो इस शरीरके अजर अमर पुष्ट करनेहारे अमृतका पान करो इस सर्व रोगोंके विनाश करनेहारी दिव्य औषधिका भक्षण करो इत्यादिक प्रार्थना करके योगीकुं चलायमान करतेहैं ॥ यह बातें योगवासिष्ठके उपशम प्रकरणमें उद्घाटकमुनिके आख्यानविषेभी लिखीहै ।

आरुह्येदं विमानं त्वमेहि त्रैविष्टपं पुरम् ।

स्वर्गं एव हि सीमान्तो जगत्संभोगसंपदाम् ॥

आकल्पमुचितान् भुंक्व भोगानभिमतान्विभो ।

स्वर्गादिफलभोगार्थमेवाशेषतपःक्रियाः ॥

हारचामरधारिण्यो विद्याधरवराभनाः ।

पश्येमीस्त्वामुपासीनाः करिण्यः करिणं यथेति ॥१७

अर्थ० जिस कालविषे विंध्याचलकी गुहार्में उद्दालकमुनि समाधिमें स्थित होता भयात्तो आकाशविषे सहित अप्सरा आदिक स्वर्गकी विभूतिके देवता आयकर कहने लगे हे उद्दालक तू इस दिव्य विमानपर आरूढ होयकरके हमारे स्वर्गमें आव काहेतैं स्वर्गहि सर्व जगत्की संपदोंका सोमांत है औ हे विभो कल्पपर्यंत अपनी इच्छाके अनुसार अभिमत भोगोंकूं तूं भोग काहेतैं स्वर्गादिक सुखकी प्राप्तिके अर्थहि सर्व जप तपादिक क्रियाका अनुष्ठान होवेहैं तथा हे उद्दालक जैसे हस्तीकी हस्तियां मिलकरके चारि तरफसे उपासना करतीहैं तैसेहि मंदार, पारिजातके पुष्पांकरके गुंफित कियेहुये हार औ चंद्रविंवकी न्याई उज्ज्वल चामरोंकूं कोमल हस्तोंविषे धारण करके सेवा करणमें उद्यत तेरे अग्रभागविषे स्थित जो विद्याधरोंकी सुन्दर ललना हैं तिनकूं तूं देख औ तिनकी नमस्कार तो अंगोकार कर इस प्रकारसे देवतोंकरके वारंवार प्रार्थना कियाहुयाभी सो उद्दालक मुनि तिनकी तरफ नहि देखता भया इति ॥ सो इस प्रकार उद्दालकमुनिकी न्याई योगी पुरुषकूं देवतोंकेसाथ संग कहिये प्रीति नहि करणी चाहिये किंतु तिनकी उपेक्षाहि क-

रणी योग्य है काहेतें जो तिसके साथ संग करेगा तो अग्नः रा आदिक अल्पफलविषे लोभायमान भया कैवल्य मोक्षरूप महाफलसँ भ्रष्ट होवेगा ॥ इस प्रकार संग नहि करके स्मय कहिये मेरी देवताभी प्रार्थना करतेहै इस प्रकारका चित्तमें अभिमानभी नहि करणा चाहिये, काहेतें अभिमान करनेसँ अपणोकूँ कृतकृत्य मानेहै तो समाधिविषे प्रमाद होनेतें तिसका अधोपतन होवेहै, यह वार्ता विवेकचूडामणिविषे शंकराचार्यनेभी कथन करोहै

“लक्ष्यच्युतं चेद्यदि चित्तमीष-

दहिर्मुखं सन्निपतेद्यतस्ततः ॥

असादतः प्रच्युतकेलिकंदुकः

सोपानर्पकौ पतितो यथा तथा ॥”

अर्थ० प्रमादकरके समाधिके लक्ष्यसँ किंचिन्मात्रभी जो स्वलित भया चित्त बहिर्मुख होयकर जहां तहां घाघन करेहै तो जैसे क्रीडाका कंदुक पर्यंतकी सीढीकी पंक्तिविषे पतित भया नीचेतें नीचे भूमिविषे पतित होवेहै तैसेहि समाधिसँ भ्रष्ट भया योगीका चित्त नीचेसँ नीचे भोगवासनारूप भूमिविषे पतित होवेहै इति ॥ यातें देवतांकी प्रार्थनासँ योगीकूँ अभिमानभी नहि करणा चाहिये इति ॥ यहि न्याय इस लोकके राजा आदिक धनी पुरुषोंके संगमेंभी जानलेंना ॥ तथा

“क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकज्ञानम्”

अर्थ० संवत्सर, ऋतु, मास, दिवस, प्रहरादिकरूप जो काठ है तिसकी अंतिम अवस्थाका नाम क्षण है सो क्षण औ तिसके क्रमविषे अर्थात् यह इससे पूर्व क्षण है यह इससे उत्तर क्षण है इस प्रकार जिस काठविषे योगी संयम करेहै तो तिसकुं विवेकजन्य ज्ञानको प्राप्ति होवेहै जिसकी प्रथम अवस्था प्रातिभनामज्ञान पूर्व कथन कियाहै सो इस विवेक-जन्य ज्ञानसेहि जाति, लक्षण, देश, करके मिश्रित परमाणु आदिक अत्यंत सूक्ष्म पदार्थोंकाभी भेदसे ज्ञान होवेहै औ महत्त्वादिक सर्व सूक्ष्म पदार्थोंका साक्षात्कार होवेहै इति ॥

“तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकज्ञानम्”

अर्थ० पूर्वोक्त संयमके बलसे अंतकी भूमिकामें योगीकुं जो ज्ञान होवेहै तिसका नाम विवेकज्ञान है सो ‘तारकं’ कहिये अगाध संसाररूप समुद्रसे योगीकुं तारण करेहै औ ‘सर्वविषयं’ कहिये महत्त्वादिक जितने स्थूलसूक्ष्मादिक पदार्थ हैं सो सर्वहि तिस ज्ञानके अपरोक्षविषय होत्रेहैं तथा ‘सर्वथाविषयं’ कहिये स्थूलसूक्ष्मादिक भेदकरके तिस तिस परिणामसे सर्वप्रकारसे स्थित जो तत्त्व हैं तिन सर्वकुं सो ज्ञान विषय करेहै औ ‘अक्रमं’ कहिये एकवारहि करतटविषे

विल्वफलकी न्याईं स्फुट सर्व पदार्थोंकू विषय करेहै इति ॥  
 इस ज्ञानकी प्राप्ति होनेतें योगी ईश्वरके समान सर्वज्ञ औ  
 स्वतंत्र होवेहै इति ॥ तथा “योगं विशत्यप्यविरं महारायः”  
 कहिये पूर्वोक्त संयमके सिद्ध होनेतें संप्रज्ञात औ असंप्रज्ञात  
 समाधिरूप जो योग है तिसमेंभी योगी पुरुषका शीघ्रहि प्र-  
 वेष्ट होवेहै इति ॥ २१ ॥ इस प्रकारसँ संयमके लक्षण औ  
 फलका निरूपण करके अब पूर्वोक्त यमनियमादिक अष्ट अं-  
 गोंका अंगीभूत जो समाधि है तिसका लक्षण कथन करेहैं  
 सो समाधि संप्रज्ञात औ असंप्रज्ञात इस भेदसँ द्विप्रकारका है  
 तिनमें प्रथम संप्रज्ञात समाधिका लक्षण वर्णन करेहैं ॥

• • ( इन्द्रवंशा वृत्तम् )

वैराग्यमाश्रित्य परं तथेश्वरा

ध्यानेन विघ्नानखिलाञ्जयेद्यमी ॥

संक्षिप्य चेतःपरमात्मसद्गति

संचिन्तयेदेकमथोत्तमाक्षरम् ॥ २२ ॥

वैराग्यमिति ॥ पूर्व निरूपण करी जो अनेक प्रकारकी सि-  
 द्वियां सौ मोक्ष उपयोगी समाधिविधि विघ्नरूप हैं यह धार्ता  
 योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करीहै “ते समाधायुपसर्गा-



व्युत्थाने सिद्धयः” अर्थ० पूर्वोक्त जो परकल्पप्रवेशनादिक व्युत्थानकांठकी सिद्धियां हैं सो मोक्षउपयोगी समाधिविषे उपसर्ग कहिये विघ्नरूप हैं इति ॥ तथा भागवतके एकादशस्कंधमें भगवान् ने उद्धवके प्रतिभी कथन करीहै

“अंतरायान्वदत्येता युंजतो योगमुत्तमम् ।

मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥”

अर्थ० हे उद्धव यह जो पूर्वोक्त अणिमादिक सिद्धियां हैं सो उत्तम योग अर्थात् निर्विकल्पसमाधिद्वारा मेरेकूं प्राप्त होनेकी बांछावान् योगीके कालक्षपण करनेहारे अंतराय कहिये विघ्नरूप हैं इति ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमें भी कहाहै

“द्रव्यमंत्रक्रियाकालशक्तयः साधुसिद्धिदाः ।

परमात्मपदमाप्तौ नोपकुर्वति काश्चन ॥”

अर्थ० हे रामचंद्र, द्रव्य, मंत्र, क्रिया, कालजन्य जो साधककूं फल देनेहारी अणिमादिक सिद्धियां हैं सो परमात्मपद कहिये कैवल्यमोक्षकी प्राप्तिविषे तिनमेंसे कोईभी उपकार अर्थात् सहायता नहि करेहैं किंतु उलटा परमात्मपदकी प्राप्तिमें विघ्नकारक होयेंहैं इति ॥ सो इस प्रकार मयें सिद्धिबोंकूं संसारबंधनकी मुक्तिविषे विघ्नरूप जानकर मुमुक्षु योगी पुरुषकूं परम धैर्यात्मका आश्रय करके आ मोक्ष-

पदकी निर्विघ्न प्राप्ति करनेहारे सर्वशक्तिमान् ईश्वरके आराधनसें तिन सर्व विघ्नोंका जय करणा योग्य है, काहेतें परवैराग्यपूर्वक ईश्वरकी आराधनासेंहि निर्विघ्न समाधिद्वारा मोक्षपदकी प्राप्ति होवेहे, यह वार्ता आत्मपुराणके एकादशाध्यायमेंभी कथन करीहै

“ॐकारोत्र रथः स्वस्य परमात्माथ सारथिः ।

विष्णुस्तेन गंतव्यो ब्रह्मलोकः परोथवा ॥”

अर्थ० ॐकार अर्थात् ॐकारकी उपासनारूप समाधि तो जीयका रथ है औ विष्णुपरमात्मा अर्थात् ईश्वररूप रथके चढानेहारा सारथि है सो जैसे द्रव्यमदानादिकोंसें प्रसन्न भया सारथि रथीपुरुषकूं अभिमतदेशविषे निर्विघ्न प्राप्त करेहे तैसेहि आराधनकरके प्रसन्न भया ईश्वररूप सारथि जीयरूप रथीकूं समाधिरूप रथद्वारा क्रममोक्ष अथवा सद्योमोक्षरूप अभिमतदेशविषे निर्विघ्न प्राप्त करेहे इति ॥ इस प्रकार परवैराग्य औ ईश्वरके ध्यानसें सर्व विघ्नोंकूं जय करके पश्चात् ‘परमात्मसन्ननि’ कहिये परमात्माका स्थानभूत जो हृदयपद्म है तिसमें अपने चित्तकूं स्थापन करे ॥ यद्यपि परमात्मा भयंघ्र व्यापक है तथापि विशेषकरके तिसकी उपलब्धि हृदयपद्ममेंहि होयेहे काहेतें हृदयमें चित्तका स्थान है औ चित्तविषेहि परमात्माका प्रतिबिम्ब होयेहे ॥ इस प्रकार

सर्व तरफसे निरोधपूर्वक चित्तकं हृदयपद्ममें स्थापन करके सर्व अक्षरोंमें उत्तम अक्षर जो एक अकार है तिसका अर्थात् प्रणवका वाच्य जो परमात्मा है तिसका वितन करे अर्थात् तिसमेंहि चित्तकं एकाग्र करे ॥ इसका नाम संप्रज्ञात समाधि है ॥ सो इस समाधिके भेद योगसूत्रोंमें पतंजलिने निरूपण कियेहैं “वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् संप्रज्ञातः” अर्थ० वितर्कानुगत विचारानुगत आनंदानुगत अस्मितानुगत, इस भेदसे संप्रज्ञातसमाधि चारि प्रकारका है तिनमें वितर्कानुगत पुना सवितर्क निर्वितर्क इस भेदसे दो प्रकारका है तिनमें जिस काठविषे स्थूल पांचमहाभूत औ पांच ज्ञानेन्द्रियरूप आलंबनमें पूर्वापरके अनुसंधानपूर्वक शब्द, अर्थ, ज्ञानकी विभाग करके प्रतीतिके होते जो समाधि होवेहै तिसका नाम सवितर्कसमाधि है औ तिसहि आलंबनविषे पूर्वापरके अनुसंधानक अभावपूर्वक शब्द, अर्थ, ज्ञानकी विभाग करके अप्रतीतिके होते जो समाधि होवेहै तिसका नाम निर्वितर्कसमाधि है ॥ तथा विचारानुगतभी सविचार, निर्विचार, इस भेदसे दो प्रकारका है ॥ तिनमें सूक्ष्मपंचभूततन्मात्रा औ अंतःकरणरूप आलंबनविषे जिस काठमें पूर्वापरके अनुसंधानपूर्वक देश, काठ, धर्मके विभागकी प्रतीतिके होते जो समाधि होवेहै तिसका नाम सविचारसमा-

धि है ॥ औ तिसहि आलंबनविषे पूर्वापरके अनुसंधानके अभांवपूर्वक देश काल धर्मादिकोंकी विभागसे अंप्रतीतिके होते जो समाधि होवेहै तिसका नाम निर्विचारसमाधि है ॥ यह च्यारि प्रकारका ग्रहणविषयक समाधि कहियेहै ॥ तथा आनंदानुगत औ अस्मितानुगत तो एक एक प्रकारकाहि है तिनमें जिस कालविषे रजोतमोंकी लेश करके अनुविद्ध अंतःकरण सत्त्वरूप आलंबनविषे समाधि होवेहै तो तिस कालमें चितिशक्तिके गौणभाव होनेतें औ सुख तथा प्रकाशस्वरूप अंतःकरणसत्त्वकी प्रधानता होनेतें योगीकूं जो परमानंदकी प्राप्ति होवेहै तिसका नाम आनंदानुगत समाधि है ॥ जो योगी तिसहि आनंदविषे कृतकृत्यता मानकरके तिसतें परे प्रधान औ पुरुषकूं नहि देखतेहैं तिनकी योगशास्त्रमें विदेहसंज्ञा होवेहै यह ग्रहणविषयक समाधि कहियेहै ॥ तथा जिस कालमें रजोतमोंकी लेशकरके अननुविद्ध अंतःकरणके शुद्ध सत्त्वरूप आलंबनविषे समाधि होवेहै तिसकालविषे ग्रहणस्वरूप अंतःकरणसत्त्वके गौणभाव होनेतें चितिशक्तिकी प्रधानता होवेहै इस प्रकार सत्तामात्र अवशेषविषयके जो समाधि होवेहै तिसका नाम अस्मितानुगतसमाधि है ॥ जो योगी इस सत्तामात्रविषेहि कृतकृत्यता मानकर तिसतें परे शुद्ध पुरुषकूं नहि देखतेहैं तिनकी प्रकृति लयसंज्ञा

होवेहै ॥ औ जो योगी अंतःकरणसत्त्वसें परे परमपुरुषकूं  
 'जानकरके तिरुहि आलवनमें समाधि करतेहैं सोई विवेक-  
 रूपातिकी प्राप्तिद्वारा कैवल्यमोक्षपदके भागी होतेहैं ॥ औ  
 तिनकी विमुक्तसंज्ञा होवेहै ॥ यह जो पुरुषविषयक समाधि  
 है सो ग्रहीतृविषयक कहियेहै इति ॥ यह चारि प्रकारके  
 संज्ञातसमाधिके लक्षण हैं ॥ औ इन समाधियोंके जो भू-  
 तजय, इन्द्रियजय, आदिक फलविशेष हैं सो तो पूर्वहि सं-  
 यमके फलनिरूपणविषे कथन करि आयेहैं काहेतें संयम औ  
 संज्ञानसमाधिविषे विशेष अंतराय नहिहै किंतु संयमकूं  
 धितारूप होनेतें तिसमें ध्येयवस्तुका स्फुटज्ञान नहि होवेहै  
 औ संज्ञातसमाधिविषे तो साक्षात्कारके उदय होनेतें ध्ये-  
 यवस्तुके स्वरूपका स्फुटज्ञान होवेहै इतनाहि संयम औ सं-  
 ज्ञातका भेद है इति ॥ २२ ॥ इस प्रकारसें संज्ञातसमा-  
 धिका लक्षण औ तिसके अर्वांतर भेदोंका निरूपण करके  
 अब सर्व साधनोंका फलभूत जो असंज्ञातसमाधि है ति-  
 सका लक्षण वर्णन करेहैं ॥

॥ इन्द्रवंशां वृत्तम् ॥

संविश्य योगं परमं तु धीरधी-  
 रेकत्वमानीय तथात्मचेतसोः ॥

## प्रात्सार्य संकल्पविकल्पसंचयं

किञ्चित्स्मरेन्नैव ततस्त्वतन्द्रितः ॥२३॥

संविश्येति ॥ इस प्रकार संप्रज्ञातसमाधिकी सिद्धिभयेतं अनंतर परमयोग जो निर्विकल्पसमाधि है तिसमें चित्तका प्रवेश करके अर्थात् नेति नेति इस प्रकारकी भावनासे सर्व आलंबनोंका परित्याग करके चित्तकू निरालंबस्थित करे इस प्रकार वृत्तिसें रहित भये चित्तकी आत्माके साथ एकता अर्थात् आत्माविषे चित्तका विटय करे सो मनके विटय करणेकी रीति यजुर्वेदकी कठउपनिषत्में कथन करी है

“यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ।”

अर्थ० बुद्धिमान् जो योगी पुरुष है सो वाचाइन्द्रियकू प्रत्याहारकी विधिसें मनविषे विटय करे अर्थात् भाषण जपादिकोंका परित्याग करके केवल मनके व्यापारसें मूक पुरुषकी न्याई स्थित होवे पश्चात् मनकू ‘ज्ञानआत्मनि’ कहिये विशेषाहंकारविषे विटय करे अर्थात् मनके संकल्पविकल्परूप व्यापारका परित्याग करके केवल अहंभावमात्रसें

१ यहाँ वाचा श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकाभी उपलक्षण जानना.  
२ ध्येतिपरिच्छिन्न अहंकार.

स्थित होवे ॥ पुनः अहंभावकू “महति आत्मनि” कहिये सामान्याहंकारविषे विलय करे अर्थात् शरीरादिकोंका अभिमान परित्याग करके तंद्रावान् पुरुषकी न्याई सामान्याहंकारमें स्थित होवे ॥ पुनः सामान्याहंकारकू ‘शांत आत्मनि’ कहिये सर्व विकल्पोंकरके शुन्य जो साक्षी आत्मा है तिस-विषे विलय करे अर्थात् सामान्याहंकारका परित्याग करके केवल आत्मस्वरूपसँहि स्थित होवे इति ॥ तथा विवेकचूडामणिमें शंकराचार्यनेभी कहाहै ॥

“वाचं नियच्छात्मनि तं नियच्छ  
 मृद्धौ धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि ।  
 तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे  
 विलाप्य शान्तिं परमां भजस्य ॥”

अर्प० हे शिष्य वाचाकू मनमें मनकू बुद्धिमें बुद्धिकू साक्षीआत्माविषे साक्षी आत्माकू पूर्ण औ सर्व कटनासँ रहित परमात्माविषे विलय करके निर्विकल्पसमाधिरूप परम शान्तिकू प्राप्त होहु इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यनेभी कहाहै

“आत्ममध्ये मनः कुर्यादात्मानं परमात्मनि ।  
 परमात्मा स्वयं भूत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्”

अर्थ० निर्विकल्पसमाविषे स्थित होनेकी वांछावान् योगी मनकूं साक्षीआत्माविषे विलय करे औ साक्षीकूं परमात्माविषे विलय करे पश्चात् स्वयमेव परमात्मस्वरूप होयकर सर्व धिताका परित्याग करके स्थित होवे इति ॥ इस प्रकार क्रमसें शनै शनै सर्व संकल्पविकल्पके, संवयका मूलसें उत्पादन करके किंचित्भी स्मरण नहि करे यह वार्ता गीताके पष्ठाध्यायविषे भगवान् नेभी कथन करीहै

“संकल्पप्रभवान् कामास्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।

अतसेवेन्द्रियमध्यामं विनियम्य समंततः ॥

शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।

आर्त्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥”

अर्थ० हे अर्जुन, विवेकयुक्त मनसें सर्व इन्द्रियोंकूं वशीभूत करके औ संकल्पसें उत्पन्न होनेहारी सर्व कामनाके सर्व तरफसें परित्यागपूर्वक धैर्ययुक्त बुद्धिसें मनकूं आत्माविषे स्थित करके पश्चात् किंचित्मात्रभी चिंतन नहि करे इति ॥ तथा ‘अतन्द्रितः’ कहिये अग्रमत्त होयकर मनका विलय करे चाहेंत निर्विकल्पसमाधिकाविवेक कदाचित् विसृष्ट मुपनिगी न्याई तमोगुणकरके आगुत भया लीन होवेहै तो तिस्रूं सूक्ष्मबुद्धिसें जानकर तयसें भवोघ करणा चाहिये,



यह वार्ता मांडूक्य उपनिषद्की कारिकाविषे गौडपादाचार्य-  
नेभी कथन करीहै

“उये संबोधयेचित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः ।

सकपायं विजानीयात् समप्राप्तं न चालयेत्”

अर्थ० उक्त लयअवस्थाविषे प्राप्त भये चित्तकूं ‘संबोधये-  
त्’ कहिये तिस अवस्थासँ प्रयत्नकरके बोधन करे औ जो  
व्युत्थानकालके संस्कारोंसँ कदाचित् चित्त विक्षिप्त होवे तो  
‘शमयेत्’ कहिये तिसकूं तहांहि आत्मतत्त्वविषे विलय करे  
औ जो कदाचित् कषाययुक्त होवे तो तिसकूं सूक्ष्मबुद्धिसँ  
जानकर प्रयत्नसँ कषायसँ निवृत्त करे इस प्रकार लय, विक्षेप,  
कषाय, इन तीनोंकरके रहित भया चित्त जिस कालविषे  
‘समप्राप्तं’ कहिये आत्मपदविषे स्थितिकूं प्राप्त होवे तो पुनः  
तहांसँ चालन नहि करे अर्थात् किंचित्भी संकल्पविकल्प  
नहि करे इति ॥ इस प्रकार किंचित्भी संकल्पविकल्पके नहि  
करणेसँ चित्त स्वयमेवहि आत्मतत्त्वविषे लीन होय जावे है  
यह वार्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है

“यथा निरिन्धनो वह्निः स्वममेवोपशाम्यति” ॥

तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोनावुपशाम्यति”

अर्थ० जिस प्रकार इन्धनसँ रहित भया अग्नि स्वयमेव

शांत होय जावेहै तैसेहि संकल्पविकल्पांसँ रहित भया, चित्त स्वयमेवहि अपणे अधिष्ठानरूप आत्माविषे विलय होवेहै इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकामेंभी कहाहै

“कर्पूरमनलेयद्वत्सैन्धवं सलिले यथा ।

तथा संधीयमानं च मनस्तत्त्वे विलीयते”

अर्थ० जैसे अग्निविषे कर्पूर औ जलविषे लवण क्षेपण किया हुया विलयकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि आत्माविषे संयोजन किया हुया चित्त विलयकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ इस प्रकार जिस काष्ठविषे विलयकूं प्राप्त होयकह मन केवल संप्रज्ञात-समाधिके संस्कारोंकरके युक्त भया स्थित होवेहै तिसका नाम असंप्रज्ञातसमाधि है ॥ यह वातां योगसूत्रोंमें पतंजलि-नेभी कथन करीहै “विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽयः” अर्थ० नेति नेति इस प्रकारका सर्व आलंबनोंसँ उपरामताका कारण जो प्रत्यय अर्थान् चित्तकी वृत्तिविशेष है तिसके अभ्यास कहिये पुना पुना आवृत्तिपूर्वक औ संप्रज्ञातसमाधिके संस्कारोंकरके युक्त जो चित्तकी निरुद्धावस्था है तिसका नाम असंप्रज्ञात समाधि है इसीकूं निर्विकल्पममाधिभी कहतेहैं इति ॥ सो इस अवस्थाविषे स्थित भया योगी शून्यके समान होवेहै, यह वातां हठयोगप्रदीपिकाविषेभी निरूपण करीहै

“अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यः कुंभ इवावेर !

अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णः कुंभ इवार्णवे ॥”

अर्थ० जैसे आकाशविषे स्थित भया घट अंतर औ बाहिरसँभी शून्य होवेहै तैसेहि निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भया योगी सर्व संकल्पविकल्पोंके विलय होनेतँ अंतर औ बाह्यसँभी शून्य होवेहै तथा जैसे समुद्रविषे निमग्न भया घट अंतर औ बाह्यसँभी पूर्ण होवेहै तैसेहि चित्तके विलय होनेतँ योगी आत्मस्वरूपकरके अंतर औ बाह्यसँभी पूर्ण होवेहै इति ॥ इस प्रकारकी जो मनकी स्थिति है सोई परमपद है, यह वार्ता अथर्ववेदकी ब्रह्मविन्दुउपनिषत्मेंभी कथन करीहै

“निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि॥

यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥”

अर्थ० सर्व विषयाकारताका परित्याग करके हृदयपंकजमें संनिरुद्ध भया चित्त जिस काठविषे उन्मनीभाव अर्थात् वि-  
लयभावकू प्राप्त होवेहै तिस कालकी जो स्थिति है सोई पर-  
मपद है इति ॥ २३ ॥ इस प्रकार असंमज्ञातसमाधिका लक्षण  
निरूपण करके अब तिसके फलकू वर्णन करेहै ॥

॥ इन्द्रवंशा वृक्षम् ॥

इत्थं परानन्दपदार्पिताशयो

योगी विलूनाखिलकर्मबन्धनः ॥

स्वैरश्विरं संविचरत्युदारधी-

रत्रैव वाऽमुत्र विमुच्यतेऽथवा ॥ २४ ॥

इत्थमिति ॥ इत्थं कहिये पूर्वोक्त प्रकारसें निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भया योगी परमानंदका अनुभव करेहै यद्यपि परमानंदके अनुभव करणेहारी मनकी सर्व वृत्तियांका तिस कालविषे विलय होवेहै तथापि जैसे, सुषुप्ति अवस्थाविषे मनके विलय होनेतेंभी अविद्याकी सूक्ष्मवृत्तियोंकरके आनंदका अनुभव होवेहै तैसेहि समाधिविषेभी चित्तकी सूक्ष्म अवस्थाकरके समाधिकालीन सुखका अनुभव संभवेहै ॥ औ जो असंप्रज्ञातसमाधिविषे आनंदका अनुभव नहि मानें तो समाधिसें व्युत्थित भये योगीकूं तिस आनंदकी स्मृति नहि होनी चाहिये औ स्मृति तो होवेहै ॥ किं च जैसे सुषुप्तिविषे चित्तका अत्यंत विलय होवेहै तैसे असंप्रज्ञातसमाधिविषे नहि होवेहै, यह याता गौडपादाचार्यनेभी कथन करीहै

“लीयते हि सुषुप्ती तन्निगूहीतं न लीयते”

अर्थ० जैसे सुषुप्तिअवस्थाविषे मनका अत्यंत विलय होवेहै तैसे निर्विकल्पसमाधिविषे निरोध किये हुये चित्तका विलय नहि होवेहै काहेतें कायंका स्वकारणविषेहि अत्यंत विलय होवेहै यातें सुषुप्तिविषे अज्ञानरूप स्वकारणविषे

मनका अत्यंत विलय संभवेहै, औ समाधिविषे तो अज्ञानरूप स्वकारणके अभाव होनेतें चित्तका अत्यंत विलय नहि होवेहै किंतु सूक्ष्म अवस्थासे चित्तकी स्थिति होवेहै तिसकरकेहि असंप्रज्ञातसमाधिजन्य परमानंदका योगीकूं अनुभव संभवेहै ॥ तथा श्रुतिविषेभी यह वार्ता कथन करीहै

• “समाधिनिर्धूतमलस्य, चेतसो  
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् । •  
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा  
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥”

अर्थ ० निर्विकल्पसमाधिकरके लयविक्षेपरूप, मलसैं रहित भये चित्तकूं आत्माकेसाथ एकीभाव करनेतें जो आनंद होवेहै सो तिस कालविषे वाचाकरके कथन नहि किया जायेहै किंतु योगीलोक अपने अंतःकरणकरकेहि तिस परमानंदका अनुभव करतेहैं इति ॥ तथा विवेकचूडामणिविषेभी कहाहै

“बुद्धिर्विनष्टा गळिता प्रवृत्तिर्वह्लात्मनोरेकतयाधिगत्या । •  
इदं न जानेप्यनिदं न जाने किंवा कियदा सुखमस्त्यपारम् ॥”

अर्थ ० कोई एक शिष्य निर्विकल्पसमाधिसैं व्युत्थानकूं प्राप्त होयकर अपने गुरुके पास जायकरके कहने “लग्ना हे गुरु निर्विकल्पसमाधिविषे ब्रह्मात्माका एकत्वभाव होनेतें

मेरी बुद्धि विलयकूं प्राप्त होगई औ सर्व भवृत्ति अर्थात् सं-  
कल्पविकल्पभी नष्ट होगये तथा यह है यह नहि इस प्रकार  
मैं किंचिन् मात्रभी नहि जानता भया किंतु कुछक औ कि-  
तनोंके अर्थात् वाचाकरके अवाच्य अपार सुखका मैं अनु-  
भव करता भया हूं इति ॥ तथा गीताके षष्ठाध्यायविषे  
भगवान् नेभी कहा है ॥

“सुखमात्यंतिकं यच्चदुःखिग्राह्यमतोन्द्रियम् ।  
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तरवतः ॥  
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।  
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥”

अर्थ० निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भया योगी इन्द्रियोंके  
अंगोघर अर्थात् केवल सूक्ष्म बुद्धिकरके ग्राह्य आत्यं-  
तिक सुखका अनुभव करेहै तिम सुखविषे स्थित भया  
योगी मकरंदका भ्रान करतेहुये भृंगकी न्यांई समाधिसँ च-  
टायमान नहि होवेहै औ जिस परमानंदकूं प्राप्त होयकर  
योगी पुनः तिसँ परे अधिक लाभ कुछ नहि मानेहै तिसँ  
सुखविषे निमग्न भया योगी बडे बडे शीत, घात, वर्षा, आ-  
तप, आदिक उपद्रव औ सिंहादिक घनचरोंके भयानक श-  
ब्दोंकेभी चलायमान नहि होवेहै इति ॥ यह वार्ता योग-

वासिष्ठके निर्वाणप्रकरणविषे राजा शिखिध्वजके आख्या-  
नमें भी निरूपण करी है

“निर्विकल्पसमाधिस्थं तत्रापश्यन्महीपतिम् ॥

राजानं तावदेतस्मादोधयामि परात्पदान् ॥

इति संचित्य चूडाळा सिंहनादं चकार सा ॥

भूयो भूयः प्रभोरग्रे वनेचरभयप्रदम् ॥

न च्छाल तदा राम यदा नादेन तेन सः ॥

भूयो भूयः कृतेनापि तदा सान्तं व्यचालयत् ॥

चालितः पातितोऽप्येव तदा नो ब्रुवुधे ब्रुधः—

अर्थ० एक समये चूडाळा नाम राणी अपने पति शि-  
खिध्वज नाम राजाकूं वनमें निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भ-  
येकूं देखकर ऐसा विचार करती भयी इस राजाकूं इस प-  
रम समाधिसे परीक्षाके अर्थ में जगावों इस प्रकार धितन-  
करके सो चूडाळा योगसिद्धिके बलसे राजाके अग्रभागविषे  
बारंवार मृगादिक वनचरोंकूं भय देनेहारे सिंहकी न्याई भ-  
यानक शब्दकूं करती भयी तो ओ राजा निर्विकल्पसमाधि-  
के आनंदविषे निमग्न भया चलायमान नहि होतर भया इस  
प्रकार जब बारंवार महान् शब्द करनेसे भी राजा नहि च-  
लायमान भया तो पश्चात् तिसकी श्रीवाके समीप देशकूं ह-  
स्तोंसे पकडकर इधर उधर आकर्षण करती भयी परंतु इस

प्रकार चलायमान किया सौ पृथिवीपर क्षेपण कियाहुयाभी  
 'सो शिखिध्वजराजा परमानन्दविषे निमग्न भया प्रबोधकूँ नहि  
 प्राप्त होता भया इति ॥ तथा "योगी विलूनाखिलकर्मब-  
 ंधनः" कहिये इस प्रकार निर्विकल्पसमाधिके आनन्दकूँ  
 प्राप्त भये योगीके सर्वहि जन्मजन्मांतरोंविषे अनुष्ठित किये  
 हुये शुभाशुभ कर्मरूप बंधनोंका मूलसँहि छेदन होवेहे यह  
 वार्ता कूर्मपुराणमें महादेवजीनेभी कथन करीहै "योगाग्निर्द-  
 हति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्" अर्थ० हे पार्वति योगरूप अग्नि  
 सर्व-जन्मसमूहका दहन करेहे इति ॥ शंका ॥ तुमने कहा नि-  
 र्विकल्प समाधिकी प्राप्ति भयेतें योगीके सर्व-कर्मोंका मूलसँ  
 छेदन होवेहे सो घाता असंभव है काहेतें

“क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥”

इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतियोंविषे ज्ञानरूप अग्निकरकेहि  
 सर्व कर्मोंका नाश कथन कियाहै ॥ समाधान ॥ यद्यपि  
 अनेक श्रुतिस्मृतियोंविषे ज्ञानसँहि कर्मोंका विनाश कथन  
 कियाहै तथापि जैसे जानसँ कर्मोंका विनाश होवेहे तैसेहि  
 निर्विकल्पसमाधिसेभी होवेहे काहेतें समाधिकूँ, ज्ञानसेभी प्र-  
 यत् होनेतें यह घाता पूर्वहि पछे श्लोककी व्याख्याविषे नि-



क्षण करि आये हैं तथा गीताविषे भगवान् ने भी कहा है  
 “ज्ञानाद्भयानि विशिष्यते”

“तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्योपि मतोधिकः॥”

अर्थ० हे अर्जुन, ज्ञानसेंभी ध्यान अर्थात् योग विशेष है  
 तथा अति उग्र तप करणेहारोंसें औ ज्ञानियोंसेंभी योगी  
 अधिक माना है इति ॥ किंच निर्विकल्पसमाधिविषे चित्तके  
 अत्यंत शुद्ध होनेतें आत्मतत्त्वका करामलकवत् स्फुट साक्षा-  
 त्कार होवे है यातें योगीके सर्व कर्मोंका नाश संभवे है ॥ तथा  
 विषे कछूडामणिविषे शंकराचार्यने भी कहा है

“समाधिनानेन समस्तवासना-

ग्रंथेर्विमोक्षोऽखिलकर्मनाशः ।

अंतर्बहिः सर्वत एव सर्वदा

स्वरूपविस्फूर्तिरयत्नतः स्यात् ॥”

अर्थ० इसपूर्वोक्त निर्विकल्पसमाधिकरके समस्त वासना-  
 रूप ग्रंथियोंका भेदन होवे है औ सर्वशुभाशुभ कर्मोंका भी वि-  
 नाश होवे है तथा अंतःकरणके अत्यंत स्वच्छ होनेतें यत्नसें  
 विनाहि आत्मस्वरूपका अंतरवाहिर विस्फुरण होवे है इति ॥  
 तथा योगसूत्रमें पतंजलिने भी कहा है “ततः क्लेशकर्मनि-  
 वृत्तिः” अर्थ०, निर्विकल्पसमाधिविषे आत्मतत्त्वके स्फुट

अवबोध होनेतें योगीके अविद्या आदिक क्लेश औ शुभाशुभ कर्मोंकी निवृत्ति होवेहै इति ॥ तथा महाभरतके 'मोक्षपर्वविषे भीष्मपितामहनेभी कहाहै

“स शीघ्रमचलप्रख्यं दृग्ध्वा कर्मं शुभाशुभम् ।

उत्तमं योगन्तस्थाय यदीच्छति विमुच्यते ॥”

अर्थ० हे युधिष्ठिर, सो योगी उत्तम योगरूप निर्विकल्प समाधिविषे स्थित होयकर शीघ्रहि पर्वतके समान अनेक जन्मांतरोंविषे संचय किये हुये शुभाशुभ कर्मोंकूं योगाग्निसैं दग्ध करके अपनी इच्छाके अनुसार कैवल्यमोक्षपदकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा पंचदशीमेंभी कहाहै

“अनादाविह संसारे संचिताः कर्मकोटयः ।

अनेन विटयं यान्ति शुद्धो धर्मो विवर्धते ॥

अमुना वासनाजाले निःशेषं प्रविलापिते ।

ममूलोन्मूलते पुण्यपापख्ये कर्मसंचये ॥”

अर्थ० इस निर्विकल्पसमाधिकरके अनादिकाटसैं अनेक जन्मांतरोंविषे जो कोटियां शुभाशुभ कर्मसंचय किये होवेंहैं सो सर्वहि विनाकूं प्राप्त होय जावेंहैं औ जितनी तिन कर्मोंकी शुभाशुभ वासना होवेंहैं तिन सर्वकाभी क्षय होवेहैं तथा जो पुण्यपापरूप कर्मोंके संचय होवेहैं सोभी सहित मूलके विनाशकूं प्राप्त होवेहैं इति ॥ इस प्रकार सर्व बंधनों

रहित भये योगीकी जो तिस कालविषे, विदेहमुक्त होनेकी ईच्छा नहि होवे तो “स्वैरश्चिरं संविचरत्युदारधीः” कहिये उदारबुद्धिमान् सो योगी व्युत्थानकालविषे संयमद्वारा सब चराचरजगत्विषे स्वतंत्र होयकर विचरता है अर्थान् नारदादिकोंकी न्याइं स्वर्ग पाताल अंतरिक्षादिक लोकोंविषे तिसका कोईभी निरोध नहि कर सकैहै, यह वार्ता पुराणादिकोंविषे तहां तहां योगियोंके प्रसंगोंविषे प्रसिद्धहीहै ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमें चूडाका आस्थानविषेभी कथन कियाहै

श्रीवसिष्ठ उवाच.

“अणिमादिगुणैश्वर्ययुक्ता सा नृपभामिनी ।  
 एवं बभूव चूडाका घनाभ्यासवती सती ॥  
 जगामाकाशमार्गेण विवेशांबुधिकोटरम् ।  
 ध्वजार वसुधापीठं गंगेवामटशीतला ॥  
 आकाशगामिनी श्यामा विद्युत्प्रारंभभूषणा ।  
 वध्राम मेघमाटेव गिरिमाळा महीतले ॥  
 काष्ठं तृणोपलं भूतं स्रं वातमनलं जलम् ॥  
 निर्विघ्नमविशत्सर्वं तंतुमुंकाफलं यथा ॥  
 मेरोरुपरि शृंगाणि लोकपाटपुराणि च ॥  
 दिग्बल्योमोदस्सन्धाणि विजहार ययासुखम् ॥

तिर्यग्भूतपिशाचाद्यैः सहनागमरासुरैः ॥

विद्याधराप्सरःसिद्धैर्व्यवहारं चकाम सा ॥”

अर्थ० हे रामचंद्र, इस प्रकार चिरकालके अभ्यास करनेमें शिविध्वज राजाकी भायाँ बूडाला अणिमादिक सर्व सीद्धियोंके ऐश्वर्यकरके संपन्न होयकर आकाशविषे विचरकरके समुद्रके कोटर अर्थात् मध्यदेशविषे प्रवेश करती भयी पुना तहांसे निकसकर जैसे गंगा पृथिवीविषे निर्मल भयी गमन करेहै तैसेहि रागद्वेषरूप मलसे रहित भयी सो बूडाला पृथिवीमंडलविषे विचरती भयी पुना श्यामसुंदररूप औ विजुलीके चमत्कारके समान उज्ज्वल आभूषणोंकरके लसती हुयी मेघमालाकी न्याईं आकाशविषे औ पर्वतोंके समूहकी न्याईं पृथिवीविषे भ्रमण करती भयी ॥ पुना काष्ठ तृण शिला, भूत, आकाश, वायु, अग्नि, जल, इन सर्वकेविषे जैसे मुक्ताफलमें सूक्ष्म तंतु प्रवेश करेहै तैसेहि निर्विघ्न प्रवेश करजाती भयी ॥ पुना सुमेरुपर्वके शृंगोंपर औ इन्द्रादिक लोकपालोंकी पुरियांविषे तथा दशों दिशा औ आकाशके छिद्रोंमेंभी सुखपूर्वक विचरती भयी ॥ पुना तिर्यक्, भूत, पिशाच, नाग, देवता, दैत्य, विद्याधर, अप्सरा, सिद्धादिकोंके साथभी नानाप्रकारके व्यवहार करती भयी इति ॥

१ इन्द्रकरके पक्ष छेदन करणके मथम पर्वतभी घलने औ उड़तेये.

न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति

विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥”

अर्थ० हे राजन् प्राणोंके जय करके पवनप्रधान सूक्ष्म शरीरसें विचरणेहारे योगीश्वरोंका त्रैलोक्य अर्थात् ब्रह्मांडके अंतर औ बाह्यभी गमन होवेहै यह जो उपासना औ तप करके युक्त समाधिके अभ्यासवाले योगीपुरुषोंकी गति है तिसकी यज्ञादिक कर्मोंकरके प्राप्ति नहि होवेहै इति ॥ किंच इस प्रकार स्वतंत्र विचरणेहारे योगीकूं सर्व चराचर जगत्के भक्षण करणेहारे कालभगवान्काभी वास नहि होवेहै, यह वार्ता महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कथन करीहै

“तृयमो नान्तकः क्रुद्धो न मृत्युर्भीमिविक्रमः ।

इश ते नृपते सर्वं योगस्यामिततेजसः ॥”

अर्थ० हे राजन् अमित प्रभाववान् योगीकूं यमराज औ क्रोधकूं प्राप्त भया कालभगवान् तथा भयानक विक्रमवाला मृत्युभी वशीभूत करणेमें समर्थ नहि होवेहै इति ॥ जिस प्रकारसें योगीकूं कालभी वशीभूत नहि करसकैहै सो प्रकार

१ यमराजका नाम यम है। २ औ वर्ष मासादिकोंकरके आयुषके क्षण करणेहारी जो देवताविशेष है तिसका नाम काल है। ३ औ शरीरसें प्राणोंके वियोग करणेहारी देवतार्का नाम मृत्यु है यह यम काल औ मृत्युका भेद है-

खेचरीपटलविषे महादेवजीने पार्वतीके प्रति कथन किया है सो भसंगसें यहां दिखावे हैं ॥

“यदि वंचितुमुद्युक्तः कालं कालविभागवित् ।”

कालस्तु यावद्भूजति तावच्च सुखं वसेत् ॥

ब्रह्मद्वारार्गलस्याधो देहं कालप्रयोजनम् ॥

तस्मादूर्ध्वपदं देहं नहि कालप्रयोजनम् ।

यदा देव्यात्मनः कालमतिक्रान्तं प्रपश्यति ॥

तदा ब्रह्मार्गलं भित्वा शक्तिं मूलपदं नयेत् ।

शक्तिदेहप्रसूतं तु स्वजीवं चेन्द्रियैः सह ॥

तत्तत्र कर्मणि संयोज्य स्वस्थदेहः सुखंचरेत् ।

अनेन देवि योगेन वंचयेत्कालमागतम्” ॥

अर्थ० शरीरसें भाणोंके वियोग करनेहारे कालके आग-  
मन समयकूं संयमद्वारा जानकरके योगी जो कालकूं वंचन  
करणा चाहे तो पूर्वोक्त भाणके प्रत्याहारकी रीतिसें मूला-  
धारचक्रसें कूंडलिनी शक्तिके सहित अपने भाण औ मनकूं  
पदचक्रभेदन करके ब्रह्मरंध्रविषे लावे पश्चात् जवपर्यंत सो  
काल आयकर पीछे लोट नहि जावे तवपर्यंत तहां ब्रह्मरंध्रमेंहि  
सुखपूर्वक निवास करे तो काल आयकर पीछे लोट जावेहै  
काहेतें ब्रह्मरंध्रसें नीचे स्थित भये जीवकूंहीं काल अपने वशी-  
भूत करनेमें समर्थ होवेहै औ देहके ऊर्ध्व अर्थात् ब्रह्मरंध्रविषे

स्थित भये जीवकूं काल वशीभूत नहि करसकैहै यह आदिसैंहि  
 दैवकी नेत है इस प्रकार ब्रह्मरंध्रमें स्थित गया योगी जिस  
 कालविषे कुंडलिनी शक्तिके प्रतापसैं अपने कालकूं पीछे लोट  
 गया देखे तो ब्रह्मरंध्रकूं भेदन करके अर्थात् परित्याग क-  
 रके प्राणोंकेसहित कुंडलिनी शक्तिकूं नीचे क्रमसैं मूलाधार-  
 विषे लायकर स्थित करे पुना अपने प्राण औ जीवसहित  
 इन्द्रियोंकूं शक्तिके शरीरसैं सिन्न करके तिनकूं स्वस्थस्थान-  
 विषे स्थापन करे पश्चात् स्वस्थदेह कहिये चिरंजीवी होयक-  
 रके स्वतंत्र भया विचरण करे हे पार्वति इस प्रकारके योग-  
 करके आये हुये कालकूं योगी रचन करे इति ॥ इसप्रकार  
 कालादिकोंके भयसैं रहित होयकर चिरकापर्यंत स्वतंत्र वि-  
 चरता भया योगी जिस कालविषे सर्व व्यवहारोंसैं उपरा-  
 मताकूं प्राप्त भया विदेहमुक्त होनेकी इच्छा करेहै तो यहांहि  
 ब्रह्मरंध्रविषे प्राणोंके निरोधपूर्वक परमपदकूं प्राप्त होवेहै ॥  
 सो जिस प्रकार योगी विदेहमुक्त होवेहै सो प्रकारभी खे-  
 चरीपटलविषेहि महादेवजीने कथन कियाहै ॥

“यदा तु योगिनो बुद्धिस्त्यक्तं देहमिमं भवेत् ।”

तदा स्थिरासनो भूत्वा मूलाच्छक्तिं समुज्ज्वलाम् ॥

सूर्यकोटिप्रतीकाशां भावयेच्चिरमात्मनि ।

आपादतलपर्यंत प्रसृतं जीवमात्मनः ॥

संहृत्य क्रमयोगेन मूलाधारपदं नयेद् ॥  
 तत्र कुंडलिनीं शक्तिं संवर्त्तानलसन्निभाम् ॥  
 जीवं निजं चेन्द्रियाणि ग्रसन्तीं चिन्तयेद्द्विधा  
 संप्राप्य कुंभकावस्थां तडिज्ज्वलनभासुराम् ॥  
 मूलाधाराद्यतिर्देवि स्वाधिष्ठानपदं नयेत् ॥  
 तत्रस्थं जीवमखिलं ग्रसन्तीं चिन्तयेद्द्विती ॥  
 तडित्कोटिप्रतीकाशां तस्मादुन्नीय सत्वरम् ।  
 मणिपूरपदं प्राप्य तत्र पूर्ववदाचरेत् ॥  
 तत्र स्थित्वा क्षणं देवि पूर्ववद्योगमार्गं चिन्तयेत् ।  
 अनाहतं नयेद्योगी तत्र पूर्ववदाचरेत् ॥  
 उन्नीय तु पुनः पद्मे षोडशारे निवेशयेत् ।  
 तत्रापि चिन्तयेद्देवि पूर्ववद्योगमार्गं चिन्तयेत् ॥  
 उन्नीय तस्माद् भ्रूमध्ये नीरक्षीरं ग्रसेत् पुनः ।  
 मनसा सह वागीश्या भित्त्वा ब्रह्मार्गलं क्षणात् ॥  
 परामृतमहोम्नो धौ विश्रान्तिं तत्र कारयेत् ।  
 तत्रस्थं परमं देवं शिवं परमकारणम् ॥  
 शक्त्या सह समायोज्य तयोरेक्यं विभावयेत् ।  
 एवं तत्त्वे परे शान्तः शिवे लीनः शिवायते ॥”

अर्थ० हे देवि जिस काटविषे योगीको इस पांचभीतिक  
 देहकं परित्याग करके विदेहभुक्त होनेकी इच्छा होवे तो एक-



तद्देशविषे सिद्धासनकं स्थिरं लगायकरं मूलाधारचक्रविषे कोटिसूर्यके समान प्रभाकरके ज्वलती भयी पूर्वोक्त कुंडलिनी शक्तिका चिरकालपर्यंत मनकरके चिंतन करे, पुना मूलाधारसे लेकर पादतलपर्यंत प्रसरा हुआ जो आपणा जीवात्मा है तिसकूं पोटिशमें श्लोककी टीकाविषे निरूपण किये प्राणोंके प्रत्याहारकी रीतिसँ सहित प्राणोंके आकर्षण करके मूलाधारचक्रविषे लावे पश्चात् तहीं स्थित जो मलयकालकी अग्निके समान प्रकाशकरके युक्त कुंडलिनी शक्ति तिसकूं प्राण और इन्द्रियोंके सहित अपने जीवकूं ग्रसन करती हुयी चिंतन करे अर्थात् पादतलसे प्राणोंके सहित जीवात्माकूं आकर्षण करके मूलाधारविषे स्थित भयी उक्त कुंडलिनीके साथ एकीभूत करे ॥ इस प्रकार तहां किंचित् विश्राम करके पुना तहांसे तडित्के समान तेजयुक्त कुंडलिनी शक्तिकूं ग्रस किये हुये प्राण और जीवात्माके सहित ऊपर स्वाधिष्ठानचक्रविषे लायकर मूलाधारसे लेकर स्वाधिष्ठानपर्यंत प्रसरे हुये जीवकूं सहित प्राणोंके ग्रसन करती हुयी चिंतन करे ॥ तहां किंचित् विश्राम करके पुना कोटिविद्युत्के समान प्रकाशयुक्त कुंडलिनीकूं ग्रस किये हुये प्राण और जीवात्माके सहित शीघ्रहि मणिपूरचक्रविषे लायकर मणिपूरसे लेकर स्वाधिष्ठानपर्यंत प्रसरे हुये जीवात्माका सहित प्राणोंके

ग्रसन करती हुयी चिंतन करे ॥ तहां किंचित् विश्राम  
 करके पुना तिसरें ऊपर ग्रास किये प्राण औ जीवा-  
 त्माके सहित प्रकाशमान शक्तिकूं अनाहत चक्रविषे लायकर  
 अनाहतचक्रसँ लेकर मणिपूरपर्यंत प्रसरे हुये जीवात्माका  
 सहित प्राणोंके ग्रसन करती हुयी चिंतन करे ॥ तहां  
 किंचित् विश्रामकरके पुना तिसरें ऊपर ग्रास किये हुये  
 जीव औ प्राणोंके सहित शक्तिकूं षोडश अरोंकरके युक्त  
 विशुद्धचक्रविषे लायकर विशुद्धचक्रसँ लेकर अनाहतचक्रप-  
 र्यंत प्रसरे हुये जीवात्माकूं सहित प्राणोंके ग्रास करती हुयी  
 चिंतन करे ॥ तहां किंचित् विश्राम करके पुना तिसरें ऊपर  
 ग्रास किये हुये जीव औ प्राणोंके सहित शक्तिकूं भ्रुवों-  
 केमध्ये आज्ञाचक्रविषे लायकर "नोरक्षीरं ग्रसेत्" कहिये  
 जैसे हंसपक्षी नीरसे क्षीरकूं पृथक् करके प्रक्षण करेहै तैसेहि  
 शरीररूप नीरसँ जीवात्मारूप क्षीरकूं पृथक् करके ग्रसन क-  
 रती हुयी चिंतन करे ॥ तहां किंचित् विश्राम करके पुना  
 तिसरें ऊपर ग्रास किये हुये जीव औ प्राणोंके सहित कुंड-  
 लिनीकूं ब्रह्मरंध्रका द्वार भेदन करके परमानंदरूप अमृतके  
 समुद्र सहस्रदलपंकजमें लायकर विश्रांतिकूं प्राप्त करे पश्चात्  
 तिस ब्रह्मरंध्रमें पुण्यष्टकाविषे अधिष्ठानरूपसँ स्थित जो सर्व ज-  
 गत्का हेतुभूत परम शिवस्वरूप साक्षी आत्मा है तिसक्रेसाथ

' प्रास किये हुये चिदाभासरूप जीवात्मा औ प्राणोंके सहित कुं-  
 डलिनीशक्तिकी एकता चिंतन करे अर्थात् पुर्यष्टकाके सहित  
 चिदाभासकूं साक्षी आत्माविषे विलय करे तात्पर्य यह कुंड-  
 लिनी शक्ति औ जीवात्मा तथा पुर्यष्टकाकूं साक्षीरूप अविष्ठा-  
 नविषे कल्पित जानकर तिनविषे अहंमत्त्यका परित्याग कर-  
 के साक्षीविषे अहंमत्त्य करे पुना साक्षी आत्माकूं परिपूर्ण  
 नित्यशुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप परब्रह्मविषे विलय करे अर्थात् सर्व  
 वासनाओंसे रहित भया पुर्यष्टकावच्छिन्न भावका परित्याग  
 करके सर्वगत नित्यशुद्ध सामान्य संवित् स्वरूपसे स्थित होवे ॥  
 इस प्रकारसे सर्वगत शिवस्वरूप परमतत्त्व सामान्यसंवित् विषे  
 एकीभावकूं प्राप्त भया योगी शिवस्वरूपहि होय जावेहे  
 तात्पर्य यह उक्त प्रकारसे स्थूल सूक्ष्म शरीरके अभिमानका  
 परित्याग करके ब्रह्मभावसे स्थित भये योगीकी पुना व्यु-  
 त्थानके अभाव होनेसे जैसे तंतुके टूटनेसे सर्व मणियां नि-  
 राधार भयी बिखर जावेहे तैसेह वासनारूप तंतुके टूटनेसे  
 निराधार भयी योगीकी पुर्यष्टका ब्रह्मरंध्रविषेहि बिखर जा-  
 वेहे अर्थात् स्थूल सूक्ष्म शरीरकी अंतःकरणादिक सर्व सा-  
 मग्री स्वस्वकारणविषे एकीभावकूं प्राप्त होवेहे । यह सर्व याता  
 योगवासिष्ठविषे उदात्तकवीतहव्यादिकोंके इतिहासोंविषेभी

प्रसिद्ध है ॥ तथा अथर्ववेदकी मुंडकउपनिषत्मेंभी कथन किया है

“गताः कलाः पंचदशप्रतिष्ठा

देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ॥

कर्माणि विज्ञानमयश्चात्मा

परेऽव्यये सर्वे एकीभवन्ति ॥”

अर्थ० जिस कालविषे ज्ञानयुक्त योगी विदेहमोक्षकं प्राप्त होवेहै तो प्राणादिक जो पंचदश कला हैं सो प्रतिष्ठा कहिये स्वस्वकारणविषे दीन होय जावेहैं औ चक्षुआदिक गोलकों स्थित जो देवता अर्थात् इन्द्रिय हैं सोभी स्वस्व-अधिष्ठानभूत सूर्यादिक देवताविषे एकीभावरूप प्राप्त होवेहैं तथा शुभाशुभ कर्म औ जीवात्माका निर्विकार जो परब्रह्म है तिसकेसाथ एकीभाव होवेहै इति ॥ औ जो योगकलासँ रहित केवल ज्ञानीकी विदेहमोक्ष होवेहै तो तिसकी पुर्यष्टकाकाभी उक्त प्रकारसँहि भेदन होवेहै परंतु तिनमें इतनी विशेषता है केवल ज्ञानीकी प्रारब्धकर्मके भोगकरके क्षीण भयेतँ अनंतर हृदयदेशविषेहि पुर्यष्टकाका भेदन होवेहै औ योगयुक्त ज्ञानीकी तो प्रारब्धकर्मके क्षयकी अपेक्षासँ विनाहि इच्छाके अनुसार स्वतंत्र ब्रह्मरंध्रविषे पुर्यष्टकाका भेदन होवेहै ॥ तथा

१ वेदांतमतके अनुसारसँ यह कथन जानना.

“अमुत्र विमुच्यतेथर्वा” कहिये, जो योगीकी यहां विदेहमुक्त होनेकी इच्छा नहि होवे किंतु ब्रह्मलोकविषे गमन करनेकी इच्छा होवे तो तहांहि जायकर कल्पपर्यंत ब्रह्मलोकके दिव्य भोगकूं भोगकरके ब्रह्माकेसाथहि विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवेहै ॥ सो योगीके ब्रह्मलोकविषे गमन करनेका प्रकार भागवतके द्वितीय स्कंधविषे शुकदेवजीने राजापरिक्षिते कियाहै

“यदि प्रयासन्नृप पारमेष्ठ्यं  
 वैहायसानामृत यद्विहारम् ।  
 सृष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये  
 सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥”

. अर्थ० हे नृप पूर्वोक्त प्रकारसैं पदचक्रोंकूं भेदन करके ब्रह्मरंध्रविषे स्थित भये योगीकी जो ब्रह्मलोक अथवा अष्ट-सिद्धियोंके ऐश्वर्यकरके युक्त स्वर्गलोकविषे अथवा ब्रह्मांडके अंतर अथवा बाह्य अन्य किसीलोकविषे गमन करनेकी इच्छा होवे तो पुण्यटकाके अभिमानका परित्याग नहि करे किंतु प्राणोंके ऊर्ध्व आकर्षणद्वारा ब्रह्मरंध्रका भेदन करके पुण्यटकाके सहितहि गमन करे इति ॥ इस प्रकारसैं ब्रह्मरंध्रकूं भेदन करके ब्रह्मलोकविषे प्राप्त भये योगीकी पुना इस

जन्ममरणरूप घोर संसारचक्रविषे आधृति नहि होवेहै यह वार्ता अथर्ववेदकी अमृतविंदुउपनिषत्मेंभी कथन करीहै

“यस्यैष मंडलं भित्वा मारुतो याति मूर्धंतः ।

यत्र कुत्र प्रियेद्वापि न स भूयोभिजायते”

अर्थ० जिसका प्राणवायु ब्रह्मरंध्रमंडलकूं भेदन करके मूर्धासैं ऊर्ध्व गमन करेहै सो पुरुष जिस तिस देशविषेभी मृत्युकूं प्राप्त भया पुना इस संसारविषे जन्मकं नहि प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा अथर्ववेदकी संन्यासउपनिषत्मेंभी कहाहै

“अथायं मूर्धानमस्य देहपागतिगंतिमतां ये प्राप्य

परमां गतिं भूयस्तेन निवर्त्तते परात्परमवस्थानात्” ,

अर्थ० जिस कालविषे यह प्राणवायु मूर्धाकूं ‘अस्ये’ कहिये क्षेपण अर्थात् भेदन करके ‘देहे’ कहिये समष्टि वायुके-साथ एकीभाव होनेतें उपचयकूं प्राप्त भया ब्रह्मलोकविषे गमन करेहै सोई गतिवाले योगी पुरुषोंको परम गति है सो जो पुरुष इस परम गतिकूं प्राप्त होयकर ब्रह्मलोक-विषे गमन करतेहैं सो पुना, निम परमस्थानसैं नियततें नहि इति ॥ तथा यजुर्वेदकी कठउपनिषत्मेंभी कहाहै “तनोर्ध्व-मायन्नमृतत्यमेति” अर्थ० सुषुप्ता नाडोदारा ब्रह्मरंध्रविषे प्राणोंकूं टायकर जो पुरुष ऊर्ध्वकूं प्राणोंका परित्याग करेहै

सो ब्रह्मलोकविषे जायकर मोक्षपदकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा अथर्ववेदकी क्षुरिका उपनिषत्मेंभी कहाहै

“पाशं छित्वा यथा हंसो निर्विशंकः स्वमुत्क्रमेन् ।

छिन्नपाशस्तथा जीवः संसारं तरते तदा ॥”

अर्थ० जैसे बलवान् हंसपक्षी जालकूं भेदन करके आकाशविषे निराशंक होयकर विचरेहै तैसेहि योगरूप बलकरके योगी पुरुष शरीररूप जालकूं ब्रह्मरंध्रद्वारा भेदन करके जन्ममरणरूप संसारसमुद्रकूं तरजावेहै इति ॥ तथा शारीरकसूत्रोंमें व्यासजीनेभी कहाहै “अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्” अर्थ० उक्त श्रुतियोंके प्रमाण होनेतें ब्रह्मलोकविषे गये हुये योगीकी पुनः इस संसारमें आवृत्ति नहि होवेहै किंतु कल्पके अंतमें तिस योगीका ब्रह्माके साथहि कैवल्यमोक्ष होवेहै इति ॥ यह वार्ता अथर्ववेदकी मुंडकउपनिषत्विषेभी कथन करीहै “ते ब्रह्मलोकेषु परांतकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे” अर्थ० जो योगीलोक ब्रह्मलोकविषे जातेहैं सो सर्वहि कल्पके अंतमें परब्रह्मस्वरूप हुये ब्रह्माके साथहि कैवल्यमोक्षकूं प्राप्त होवेहैं इति ॥ तथा शारीरकसूत्रोंमें व्यासजीनेभी कहाहै “कार्यात्यते तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात्” अर्थ० ब्रह्मलोकविषे प्राप्त भये योगीका कल्पके अंतविषे ब्रह्मलोकके विनाश होनेतें तिसके अधिपति ब्रह्माके

साथ कैवल्य मोक्ष होवेहै काहेतें यह उक्त वार्ता “एतस्मात्-  
जीवधनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते ” इत्यादिक श्रुत्रियों-  
विषे अभिधान करणेतें इति ॥ तथा स्मृतिमेंभी कहाहै

“ब्रह्मणा सह ते सर्वे संभाते प्रतिसंचरे ।

परस्यांते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ॥”

अर्थ० इस स्मृतिका अर्थ उक्त श्रुति औ सूत्रके अंतर्भू-  
तहि है इति ॥ किंच तिस० योगीके माता पिताभी कृतार्थ  
होय जावेहैं यह वार्ता ब्रह्मवचनपुराणमेंभी कथन करीहै

“कृतार्था पितरौ तेन धन्यो देशः कुलं च तत् ।

ज्ञायते योगमान् यत्र दत्तमक्षयतां व्रजेत् ॥”

अर्थ० जिनके गृहविषे योगीपुरुषका जन्म होवेहैं तिन  
मातापिताकाभी उद्धार होवेहैं औ जिस कुलविषे होवेहैं सो  
कुलभी पावन होय जावेहैं तथा जिस देशविषे होवेहैं सो दे-  
शभी धन्यवादके योग्य होवेहैं औ जो जो वस्तु तिस योगी  
के प्रति श्रद्धालुभक्तलोक समर्पण करेहैं सो सो अक्षय फलके  
बेनेहारी होवेहैं इति ॥ तथा तिमकी अन्नवस्त्रादिकुंसे भेवा

१ ब्रह्मलोकविषे प्राप्त भया पुरुष स्थूलसूक्ष्ममें परे जो जीवधन  
कहिंय हिरण्यगर्भ है निसनै परे शरीररूप पुरविषे भयन करणेहारा  
जो परमात्मा है तिसकुं देवेहैं अर्थात् ब्रह्मज्ञानद्वारा कैवल्यमो-  
क्षकृं प्राप्त होवेहैं इति यह इस श्रुतिका अर्थ है ॥



करणेहारे पुरुषोंकोभी कल्याण होवेहै यह वार्ता दक्षसंहितामेंभी कथन करीहै

“योगारंभपरिश्रांतं यस्तु भोजयते यति ।

निखिलं भोजितं तेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥”

अर्थ० योगके अभ्यास करके परिश्रमकूं प्राप्तभवे योगीकूं जो पुरुष भोजन करावेहै तो मानो तिसने सचराचर तीनलोकोंकोहि भोजन कराया दिया इति ॥ तथा अमनस्कखंडविषे महादेवजीनेभी धामदेवकेप्रति कहाहै

“दर्शनादर्चनादस्य त्रिसप्तकुलसंयुताः ।

अज्ञा मुक्तिपदं यान्ति किं पुनस्तत्परायणः ॥”

अर्थ० हे धामदेव तिस योगीके दर्शन औ श्रद्धापूर्वक पूजन करणेहारे अज्ञानीभी अंतकरणकी शुद्धिद्वारा एकविंशति कुलोंके सहित मोक्ष पदकूं प्राप्त होवेहैं तो जो पुरुष सर्वदाहि योगाभ्यासमें तत्पर रहताहै तिसकी तो क्याहि वार्ता कथन करणी है इति ॥ किंच सो योगी सर्वकरके वंदना करने योग्य होवेहै, यह वार्ताभी तहांहि महादेवजीने कथन करीहै

“अंतर्यामिं महिर्यामं यो विजानाति तत्त्वतः ।

त्यया मयाप्यसौ वंद्यः शेषैर्व्यस्तु किं पुनः ॥”

अर्थ० हे वामदेव जो पुरुष सम्यक् प्रकारसे अंतर योग जो राजयोग है वाङ्म योग जो हठ योग है तिसकुं जानता है, अर्थात् तिसका अनुष्ठान करता है सो तेरे औ मेरे करके भी वंदना करणे योग्य है तो अन्य पुरुषों करके वंदना करणे योग्य है इसमें क्या वार्ता कथन करणी है इति ॥ इस प्रकारसे महत्पदकी प्राप्तिके हेतुभूत योगाभ्यासका परित्याग करके जो पुरुष अन्य कार्योंविषे आसक्त भये सर्व आयुषकुं वृथाहि क्षपण करते हैं तिनमें परे दूसरा कौन अभागो है इति ॥ २४ ॥ इसप्रकारसे योगकुं सांगोपांग निरूपण करके अब ग्रंथका उपसंहार करते हुये इस ग्रंथके अध्ययनका फल निरूपण करें हैं ॥

( द्रुतविठंबितं वृत्तम् )

परमयोगरहस्यमितीरितं

परमहंसजनेन समासतः ॥

पठति यश्च समाचरतीह वै

पतति जातु स नोऽग्रभवार्णवे ॥ २५ ॥

परमेति ॥ यह जो पंचविंशति श्लोकात्मक परमयोग-रहस्यका घोषक “योगकल्पद्रुम” नामक ग्रंथ है सो सहित

टीकाके परमहंस , स्वामी ब्रह्मानंदजीने कथन किया है सो जो अधिकारी पुरुष इस ग्रंथकूं आदितें लेकर अंतपर्यंत अध्ययन करेगा तथा ग्रंथोक्त योगरहस्यका विधिपूर्वक क्रमसे अनुष्ठान करेगा सो पुरुष कदाचित्भी इस जन्म-मरणरूप घोर संसारसमुद्रवृष्ये नहि पतित होवेगा अर्थात् निर्विकल्पसमाधिकी प्राप्तिद्वारा कैवल्यमोक्षपदकूं प्राप्त होवेगा इति ॥

जलजबन्धुसुतारिजयावहं  
 पवनजानुजतातमदापहम् ॥  
 रविसुतात्मजसोदरसोदरी  
 सुपुलिने किल कैलिरतं भजे ॥

“समाप्तिमगदमयं ग्रंथः”

इति श्रीमत्परमहंसस्यामिब्रह्मानन्दविरचितो योगकल्पद्रुमः

संपूर्णः ॥

## लावणी.

करोहरिकांभजनेजन्मयहवारवारफिरनहिआता  
 दिनदिनपलपल, क्षणक्षणनटिनीदलजललवचंचलजाता ॥ टेक  
 बाल्यपणेकेलिरसरसयोयौवनललनारसराता  
 पृथ्वयो, चित्तानलजलयोपलयोदलयोसवगाता ॥  
 मालालेकरचलेभजनकोजलेभवनजलखोदाता  
 मणिकांफेरे, मनचहुंफेरेहेरेमर्वटफेआता ॥ १ ॥ दिनदिन०  
 कोटिपापकरकरघनसंघयडरमरणेकाविसराता  
 जिनकेकारण, करतदुरितनरसंगतेरेकोईनहिआता ॥  
 यहसयपांथसप्तागमजानोआततातकांतामाता  
 जगमेंजीवन, जानसुजानसमानपाणिजलचलजाता ॥ २ ॥ दिन०  
 पुनरपिमरणपुनरपिजननंपुनरपिजननीजठराता  
 बिनाहरोके, भजनकुजननरकानलजलबिनजलजाता ॥  
 गेररत्नबहुकामतमामनिकामकाचपरललधाता  
 गयादावनहि, आवपुननरमरकरमूरखपलनाता ॥ ३ ॥ दिन०  
 गभंवासकाकाटसंभाटहयाटयाटुक्युंसिराता  
 भोगधोगकी, आशापाशमायाकेमूरखफमजाता ॥  
 ध्यानन्दकेजारुमनारूपटाकजयीदितमेंलाता  
 पारामायाकी, तोरमरोरसजोरगगननलपलजाता ॥ ४ ॥ दिन०

( २ )

गजल.

विनाहरिकेभजनमुफतजन्मगँवाया दुनियांकीभीजमेंफिरेसदा  
हिभुलाया ॥ टेक ॥

यहवारवारदेहमनुजकानमिलेगा डालीसेंटूटागुलनगुलिस्तामें  
खिलेगा ॥

दिनचारपांचकेलियेक्याढंगजमाया विनाहरिके० ॥ १ ॥  
जिनकोतुंमानताहैमेरेहैंयहपियारे बहुछोडकरनुझेजंगलमेंघरको-  
सिधारे

परलोकमेंनतेरेकोईहोतसहाया विनाहरिके० ॥ २ ॥

मोहकीमदिराकोपीकेमरणभूलया घुसचूसविषयसकूंफिरत-  
फूटया

जयतकनचूहेकोथलीनेमुखमेंठठाया विनाहरिके० ॥ ३ ॥

कहतेहैंब्रह्मानंदब्रह्मानंदलीजिये सदाहरिकाभजनदिलोजांसं-  
कीजिये

करणेमेंजिसकेफिरनकोईटोटकेआया विनाहरिके० ॥ ४ ॥

गजल.

मानमात्मानकह्यामानतेमेरा जानजानजानरूपजानतेतेरा०  
॥ टेक ॥

जानेविनास्वरूपकेमिटनेगमकवी कहतेहैंवेदवारवारयातयह-  
मयी ॥

हुशियारहोनिहारयारहारमेंमेरा मानमानमान० ॥ १ ॥

जाता है देखने जिसे काशी दुवार का मुकाबल है वदन में तेरे उसाहया-  
रका •

लेकन विना विचार के किसी ने न हेरा मान मान मान • ॥ २ ॥

जो नैन का भी नैन नैन का भी नैन है जिसके विना शरीर में न पल ज्वै-  
न है ॥

पिछान लेख सुख सो स्वरूप है तेरा मान मान मान • ॥ ३ ॥

कहे ते हैं ब्रह्मानंद ब्रह्मानंद तुं सही वात यह पुराण वेद ग्रंथ में कही  
विचार देख निटे जन्म मरण का फेरा मान मान मान • ॥ ४ ॥

गजल.

गाफिल तुं जाग देख क्या तेरा स्वरूप है किस वास ते पडा जन्म मरण-  
के रूप है ॥ टेक ॥

यह देह गेह नाशवान है न हितेरा वृथा भिमान जात में फिरे कहां घेरा  
तुं तो सदा विनाश से परे अनूप है गाफिल तु • ॥ १ ॥

भेद दृष्टि को न जवी दीन हो गया स्वभाव आपने से आप ही न होगया  
विचार देख एक तुं भूषण का भूप है गाफिल तु • ॥ २ ॥

तेरे प्रकाश से शरीर चित्त चेतता तुं देह तो न देख कुं सदा है देखता ,

द्रष्टान हि होता है कवी दृश्य रूप है गाफिल तु • ॥ ३ ॥

कहे ते हैं ब्रह्मानंद ब्रह्मानंद पाईये इस बात को विचार सदा दित में  
ठाईये

जिसे पडे फेर जन्म मरण रूप है गाफिल तु • ॥ ४ ॥

श्री ।

## ॥ चतुःश्लोकीभागवतप्रारंभः ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ ज्ञानं पर-  
मगुह्यं मे यदि ज्ञानसमन्वितम् ॥ सरहस्यं तदंगं च गृहाण गर्हितं,  
मया ॥ १ ॥ यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ॥ तथैव  
तत्त्वविज्ञानमस्मृते मदनुग्रहात् ॥ २ ॥ अहमेवासमेवाद्ये 'ना-  
न्यद्यत्सदसत्परं ॥ पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥  
॥ ३ ॥ ऋते र्थवत्प्रतीयेत न प्रतीयेत्चात्मनि ॥ तद्विद्यादात्म-  
ज्ञो मार्या यथाभासो यथात्मः ॥ ४ ॥ यथामहांति भूतानि भूतेषु  
चावधेष्वाहुः ॥ प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा ते पुनर्न तेऽप्यहम् ॥ ५ ॥  
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ॥ अन्वयव्यतिरेका-  
भ्यां यः स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥ ६ ॥ एतन्मतं समातिष्ठ परमेण स-  
माधिना ॥ त्रयान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ७ ॥  
इति श्रीभगवते महापुराणेऽष्टादशासाहस्र्यां संहितायां वैद्या-  
सिक्त्या द्वितीयस्कंधे भगवद्ब्रह्मसंवादे चतुःश्लोकीभागवतं समा-  
प्तम् ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥ श्रीरस्तु ॥ ॥ ॥

॥ इति चतुःश्लोकीभागवतं समाप्तम् ॥

# ॥ अथ श्रीमदानन्दगिर्यष्टकम् ॥

( वंशस्थवृत्तम् )

यदंघ्रिमूलं भजतानिरंतरं । नृणां जराजन्मभवं महाभयम् ॥  
 विलीयते भानुकैस्तमो यथा । सदा तमानन्दगिरिं नमाम्यहम् ॥ १ ॥  
 वचोमृतैर्यस्य जनस्य सत्त्वरं । प्रयाति तापत्रयमेव संक्षयम् ॥  
 परोपकारैकपरायणं मुदा । सदा तमानन्दगिरिं ॥ २ ॥  
 विराजते यस्य गले क्षमालिका । विभाति भूतिर्विमला चमस्तके ॥  
 करेषु पानीययुतः कमण्डलुः । सदा तमानन्दगिरिं ॥ ३ ॥  
 समस्तशास्त्रार्थविचारपारंगं । परात्मबोधेन निरस्तसंशयम् ॥  
 मुमुक्षुपूगार्चितपादपंकजं । सदा तमानन्दगिरिं ॥ ४ ॥  
 शिशौ च वृद्धे च तथैव पण्डिते । निरक्षरे मित्रजने च वैरिणि ॥  
 समाधितिर्यस्य महात्मनो निशं । सदा तमानन्दगिरिं ॥ ५ ॥  
 यमादियोगांगरतं तताशयं । यतीन्द्रयोगीन्द्रनरेन्द्रवेदितम् ॥  
 विमुक्तकामादिविकारसंचयं । सदा तमानन्दगिरिं ॥ ६ ॥  
 जितासनाहारमपारबोधकं । समस्तसंसारविहारवर्जितम् ॥  
 स्वरूपनिष्ठापरितुष्टमानसं । सदा तमानन्दगिरिं ॥ ७ ॥  
 निराशिषं निर्विषयं निरामयं । निरंतरं स्तोत्रजपादितत्परम् ॥  
 भवाद्धिमज्जजनपारतारकं । सदा तमानन्दगिरिं नमाम्यहम् ॥ ८ ॥  
 इदं सदानन्दगिरेर्महात्मनः । पठेन्नरो यस्तु पवित्रगृष्टकम् ॥  
 विधुय पापोपचर्य चिरंतनं । चिरं विदानंदपदे महीयते ॥ ९ ॥  
 इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीमदानन्दगिर्यष्टकं  
 ॥ संपूर्णम् ॥



## (अथशुद्धिपत्रम्)



पृष्ठम्	पेक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१	१७	करेहै	करेहै
७	२१	पड्मि	पड्मि
११	२०	होनाहै	होनाहै
१२	९	विषयं	विषये
१४	३	कहाहै	कहाहै
१७	२०	होवेहै	होवेहै
१८	१७	ग्रहत्रये	ग्रहत्रये
२१	४	धूमामोदादि	धूमामोदादि
२३	१३	साधनपुरुषकृ	साधकपुरुषकृ
२३	१९	धैर्यता	धैर्यता
३७	१८	विषयेगा	विषयेग
३६	१०	होवेहै	होवेहै
४२	१३	संशयावरः	संशयावहः
४३	१६	होवेहै	होवेहै
४४	७	निराचटन	निराचटन
४४	११	शुश्रादिभि	शुश्रादिभि
४५	९	भयसामोता	भयकमोता
५५	१७	आशरोंसं	आशरोंसं
६३	९	प्रोक्तमहिमात्मेन	प्रोक्तमहिमात्मेन
६४	१२	करना	करना

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६८	१७	सकेहैं	सकेहै
६९	१६	होवेहैं	होवेहै
७१	११	है	हैं
७३	१	हीनोनः	हीनोयः
७७	१६	तोयेनैकं	तोयेनैकं
८१	१	पर	परं
८२	४	सूर्याशुः	सूर्याशु
८५	१४	विन्दते	विन्दते
९५	५	कियेहै	कियेहैं
९९	११	सो	सो
१०१	१५	रूप	रूप
१०३	१८	द्विमतहै	द्वतहैं
१०६	४	कमहैं	कमलहै
११८	६	जोपुरुष	सोपुरुष
११९	५	जावेहै	जावेहैं
१२०	११	सं बोधः	संबोधः
१२०	१४	कथाओंका	कथंताका
१२६	६	दृढम्	दृढम्
१२९	१७	फिरनेसेह	फिरनेसेहि
१२९	१७	विशेषि	विशेष
१३१	६	विधृत	विधृत
१३२	१३	योगीराज	योगिराज
१३४	५	अभ्यसेत्	मभ्यसेत्

## ( अथशुद्धिपत्रम् )



पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१	१७	करेहै	करेहैं
७	२१	पडिम	पड्मि
११	२०	होनाहै	होनाहै
१२	९	विषयं	विषये
१४	३	कहाहै	कहाहै
१५	२०	होयेहैं	होयेहै
१८	१७	ग्रहविषे	ग्रहविषे
२१	४	धूमामोदादि	धूपामोदादि
२३	१३	साधनपुरुषकुं	साधकपुरुषकुं
२३	१९	धैर्यका	धैर्यका
३७	१८	विषवेगा	विषवेग
३६	१०	होयेहै	होयेहैं
४२	१३	संशयावरः	संशयावहः
४३	१६	होयेहै	होयेहै
४४	७	निराचटन	निराचटन
४४	११	शुक्लादिभि	शुक्लादिभि
४७	९	मर्कटमोका	मर्कटमोका
५७	१७	आकरोसं	आकरोसं
६३	९	मोक्षनहिमात्येन	मोक्षमहिमात्येन
६४	१२	करना	करना

पृष्ठम	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१७३	१७	कूर्म	कूर्मः
१७६	१२	योगपुरुष	योगिपुरुष
१८४	१२	जिह्वोपस्थादि	औपस्थ्यजैः
१८९	९	वाक्यो	वाक्योक्ते
१९६	६	ब्रह्मशत	शतब्रह्मा
२०२	२	करणका	करगा
२०७	१	होवेद्दे	होवेद्दे
२०७	५	श्रियाध	श्रियाधि
२०८	१२	तमेभ्यो	यमेभ्यो
२०९	१७	ज्ञानवानका	ज्ञानवानको
२१०	१२	अभिभित	अभिभित
२१४	१६	जगत्	जगत्
२१७	३	मंस्य	मंस्य
२१८	४	चैतेभ्यो	चैतेभ्यो
२२०	७	सामवेदको	सामवेदकी
२२०	१०	महतां	महतां
२२२	१४	आपणा	अपणा
२३१	१	अरुधती	अरुधती
२३२	२०	पृष्ठ १८६ पंक्ति ३	पृष्ठ १८७ पंक्ति १७
२३७	२०	चेतस्व	चेतनस्व
२३९	४	वेदनायिनस्य	वेदनायितस्य
२३९	१७	चित्तकि	चित्तकी
२३२	२०	निसकि	निसकी

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१३६	१७	असर	बाधा
१३८	१२	प्रकारकेहै	प्रकारकेहै
१३९	११	मात्राके	मात्राकरके
१४०	१०	अष्टमहरा	अष्टप्रहर
१४१	१०	सर्वकाल	सर्वकला
१४६	२	परमशक्ति	परमभक्ति
१४८	१७	आचार्याध्यैव	आचार्याध्यैव
१४९	१८	योग्यहैइति	योग्यहै
१५२	६	गिलजाये	गिलजावे
१५२	१२	काजल	जलका
१६१	१७	देमहध्या	देहमध्या
१६२	१३	आवेहै	आवेहै
१६३	२	काल	कला
१६३	१९	वेदकी	अपर्ववेदकी
१६४	६	संवर्तसंहिता	संवर्तसंहिता
१६६	१९	पंथोमें	पंथोंमें
१७०	२	धारणहै	धारणहै
१७२	१	रुटिकरके	रुटिके
१७३	३	दीपकविषे भया	दीपकविषे पतित भया
१७३	९	होवेहै	होवेहै
१७४	३	भयेहै	भोगहै
१७४	१७	अनिचंचल	औ अनिचंचल
१७५	६	में कहाहै	मेंभी कहाहै

पृष्ठम	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१७३	१७	कूर्म	कूर्मः
१७६	१२	योगपुरुष	योगिपुरुष
१८४	१२	जिह्वोपस्थादि	औपस्थ्यजैः
१८९	९	वाक्यो	वाक्योक्ते
१९६	६	ब्रह्मशत	शनब्रह्मा
२०२	२	करणका	करणा
२०७	१	होवेहै	होवेहै
२०७	५	ध्याध	ध्याधि
२०८	१२	तमेभ्यो	यमेभ्यो
२०९	१७	ज्ञानवानका	ज्ञानवानको
२१०	१२	अनिश्रित	अमिश्रित
२१४	१६	जगत्	जगत्
२१७	३	मंस्य	मंस्य
२१८	४	चैतेभ्यो	चैतेभ्यो
२२०	७	सामवेदको	सामवेदको
२२०	१०	महतां	महतां
२२२	७	आपणा	अपणा
२३१	१	अरुधती	अरुधनी
२३२	२०	पृष्ठ १८६ पंक्ति ३	पृष्ठ १८७ पंक्ति १७
२३७	२०	चेतत्त्व	चेतनत्त्व
२३९	४	वेदनायिनस्य	वेदनायिनस्य
२३९	१७	चितकि	चितकी
२३९	२०	तिसकि	तिसकी

शुद्धम्	पंक्ति	अशुद्धपाठ	शुद्धपाठ
२५०	१२	हठयोगकि	हठयोगकी •
२५३	३	शरीका	शरीरका
२५७	९	तीतगुण	तीनगुण
२५९	११	हस्तिया	• हस्तिनिया
२५९	१०	करतीहै	करतीहै
२६०	४	करतेहै	करतेहै
२६३	४	करीहै	• कियाहै
२६५	१४	अनुसधानक	अनुसधानके
२६१	१७	स्वयमे	स्वयमे
२६२	१९	प्रदापिका	• प्रदीपिका
२७०	१७	विनाकु	विनाशकु
२७०	१६	होयहै	होयहै
२८१	१०	गालकों	गालकोंमें
२८०	१४	भोगकुं	भोगोंकुं
२८५	१०	योगमान्	योगवान्
२८८	०	प्रथकु	प्रथकु



# गीतगोविन्द-सटीक-भाषा टीका



• सर्व सज्जनोंको विदित होकर यह गीतगोविन्द संस्करण टीका और भाषाटीका सहित उपवायके तैयार किया है। विशेष उत्तमता यह है कि ऐसी भाषाटीका अवतक इसकी कहीं नहीं बनी थी। क्योंकि इसके मूलपर अन्वयके अंक लगाके फिर वेही अंक भाषाटीकामें भी लगादिये हैं कि जिससे विद्यार्थी लोगोंको और साहित्यके रसिकोंको देखनेसे और टीका मूलके अंक मिलानेसे भलीभांति न्यारा २ शब्दार्थ मालूम होगा। विशेष प्रसंशा कहांतक लिखें क्योंकि यह “गीतगोविन्द” रसिकशिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके रास-विलासका रहस्य और गायन शिरोमणि है। सो महात्मा सारग्राही पुरुषोंसे यही मार्थना है कि एकवार भंगाके देखें जब मालूम होगा। की० १ रु. ८० ४ आ०